

विद्रोही सुभाष

कुशवाहा कांत

C. K. Kushwaha
R. P. Kushwaha

कुशवाहा कान्त




विद्रोही सुभाष

Kavita
Saurabh
G an

सन् १८५७ के प्रबल विद्रोह के चालीस-बयालीस साल बाद।

उस समय भारत महान गदर की करुण कहानी भूल चुका था। पाशविक अत्याचारों की गाथा केवल गाथा रह गई थी। गोरी चमड़ी वाले नर-पशुओं ने अभागे भारत पर जो जुल्म ढाया था.... विद्रोह का दमन करने के लिए जो अमानुषिक नरमेध हुआ था, उसकी स्मृति भारतीय जनता के मस्तिष्क से विलीन हो चुकी थी।

इसी समय। २३ जनवरी सन् १८९७ ई०। स्वच्छाकाश पर सफेद बादल के कई टुकड़े तैर रहे थे। हवा में एक सिहरनकारी मृदुलता आ गई थी। कटक प्रदेश का स्निग्ध वातावरण एक नवजात शिशु का स्वागत करने के लिए पूर्णतया प्रस्तुत था।

रायबहादुर जानकीनाथ बोस व्यग्रतापूर्वक दरवाजे पर टहल रहे थे। घर भर में डाक्टरों तथा नर्सों की भीड़ उमड़ चुकी थी। रायबहादुर जानकीनाथ बोस कटक में सरकारी वकील थे, प्रभावती देवी उनकी सहधर्मिणी थीं, जो आज प्रसव-पीड़ा से व्याकुल होकर प्रसूतिका-गृह में क्रन्दन कर रही थीं। पत्नि का क्रन्दन रह-रहकर हवा पर तिरता रायबहादुर के कानों तक आ पहुँचता और कोमल हृदय रायबहादुर अपनी पत्नी की पीड़ा की अनुभूति कर बेचैन हो उठते थे। टहलते-टहलते रुक गये रायबहादुर, व्यस्त भाव से जाती हुई एक नर्स की ओर देखा उन्होंने, उत्कण्ठापूर्ण भंगिमा से।

परन्तु नर्स ने उनकी ओर देखा नहीं—वह आगे बढ़ती गई।

"नर्स !" पुकारा रायबहादुर ने।

नर्स रुक गई। घूमकर उनके सामने आ खड़ी हुई वह।

रायबहादुर ने देखा, नर्स अत्यन्त गम्भीर थी।

उसकी गम्भीर भंगिमा देखकर वे शङ्कित ही उठे।

"क्या है सर!" नर्स ने नम्रतापूर्ण वाणी में पूछा।

"नर्स...." कहते-कहते रायबहादुर का गला अवरुद्ध हो गया। उनके मुख से स्वर ही न निकल सका।

"आप घबरायें नहीं...." नर्स ने कहा—"हम लोग पूरी कोशिश कर रहे हैं। आगे भगवान की इच्छा।"

"हालत क्या बहुत खतरनाक है नर्स?" रायबहादुर ने अपना हृदय संयत करके पूछा।

"अभी कुछ कहा नहीं जा सकता..." नर्स बोली—"आप धैर्य रखें....मैं आपरेशन का सामान लेने डिस्पेंसरी जाती हूँ...."

कहकर चली गई नर्स और रायबहादुर पुनः दरवाजे पर व्यग्रतापूर्वक टहलने लगे। देर तक टहलते रहे वे। एकाएक रुक गये, प्रसूतिका-गृह से प्रभावती देवी के क्रन्दन का स्वर द्विगुणित हो उठा था। हाथ मलने लगे रायबहादुर जानकीनाथ बोस।

उसी समय एक नवजात शिशु का रुदन-स्वर हवा पर सवार होकर वायुमंडल पर नृत्य कर उठा। चौंक पड़े रायबहादुर—शिशु का रुदन-स्वर उनके अन्तराल में प्रवेश कर हर्षोल्लास की सृष्टि करने लगा। वृक्षों की टहनियाँ मस्ती से झूम उठीं।

वायु हहर कर बहने लगा। चिड़ियाँ चहचहाने लगीं।

विस्मरण-सा छा गया रायबहादुर पर। उनके कानों में किसी का गायन मधुर सन्देश देता हुआ प्रवेश कर गया—

मसलहत का है तकाजा, वक्त की आवाज है।
राहे आजादी में मरने का यही अन्दाज है॥
ए अजीजाने वतन, तू असल में जाने वतन।
शान है तेरी वतन से, और तू शाने वतन॥

स्वतन्त्रता की यह रागिनी! आजादी का यह दिव्य सन्देश। दुनिया का पहला स्वर, जो उस नवजात शिशु के कानों में पड़ा।

रायबहादुर ने देखा—एक बुड्ढे फकीर को गाते हुए।

"कुछ इमदाद दे दो अनाबे आला !...." फकीर बोला—"हुजूर के घर बेटे ने जन्म लिया है। खुदा बच्चे को तन्दुरुस्ती बख्शे और उसको दिलेरी की कहानियाँ मानिन्द आफताब हों...."

वह एक बुजुर्ग का आशीर्वाद था। नवजात शिशु के विषय में भविष्योक्ति थी वह। रायबहादुर ने प्रसन्नतापूर्वक एक रुपया निकाल कर उस फकीर के आगे फेंक दिया। फकीर चला गया।

उसी समय हँसती हुई एक नर्स प्रसूतिका-गृह से निकली।

"मुबारक हो हजूर !...." कहा उसने—"बेटा हुआ है...."

"मगर...."

"आपरेशन की जरूरत नहीं पड़ी...." नर्स ने कहा—"बच्चा बहुत ही तन्दुरुस्त है। देवीजी की हालत अब एकदम ठीक है।"

रायबहादुर की प्रफुल्लता द्विगुणित हो उठी। पत्नी के सकुशल प्रसव करने का समाचार सुनकर।

उसी दिन द्वार पर शहनाइयाँ बजीं। मित्रों ने रायबहादुर को पुत्र-प्राप्ति के उपलक्ष में बधाइयाँ दीं और उपहार भेजे।

× × ×

दिन बीतते गये। बसन्त ऋतु का पीलापन, पतझड़ के झंझा-वात में विलीन हो गया। नवजात शिशु चाँद-सा निखरता गया।

समीरण ने उसे मधुर थपकियाँ दे-देकर सुलाया, हर्षोन्मत्त पक्षियों ने उसे अपना मुग्धकारी कलरव सुनाया, भारतमाता की ममतामयी धूल ने उसे वात्सल्य प्रदान किया, प्रभावती देवी ने अपने दुग्ध से उसका पोषण किया—और वह शिशु महीने पर महीने पार करता रहा। ग्रीष्म की सन्ध्या ने उसे दुलराया-चमकाया, वर्षा की बूंदों ने उसके स्वस्थ शरीर पर फुहारें डालीं—शिशिर ने उसे लिहाफ में दुबकाकर सुलाया—और देखते-देखते वह पूर्णमासी का चाँद, वह सलोना शिशु साल भर का हो गया।

और तब—उसका नामकरण हुआ—सुभाष !

दिन बीतते देर नहीं लगती—ग्रीष्म, वर्षा और शिशिर का

क्रम पूर्ववत् चलता रहा—और वह शिशु जो एक दिन क्रन्दन करता हुआ इस संसार में आया था, सात वर्ष का हो गया।

शिक्षा आरम्भ हो चुकी थी। अपनी प्रखर बुद्धि द्वारा सुभाष ने अपने माता-पिता तथा शिक्षकों को भी चकित कर दिया था।

माता-पिता को उनकी गम्भीरता देख शंका होने लगी थी।

सुभाष में चंचलता नाममात्र को भी नहीं थी। वे सदैव अत्यन्त गम्भीर रहा करते थे। अन्य बालकों की तरह खेल-कूद में उनका मन तनिक भी नहीं लगता था। वे हमेशा एकान्त में बैठकर न जाने क्या सोचा करते थे। बालक सुभाष की एकान्तप्रियता से रायबहादुर जानकीनाथ बोस भयभीत हो उठे। उन्होंने सुभाष को चचल बनाने का बहुतेरा प्रयत्न किया मगर सब निष्फल।

और एक दिन—आश्विन मास की दुर्गा नवमी थी। बङ्ग-वासियों के घर-घर में समारोह के साथ माता शक्ति की उपासना की जा रही रही थी। जानकीनाथ बोस और उनकी सहधर्मिणी प्रभावती देवी अत्यन्त धार्मिक भाव के थे। उनके घर में देवी की स्वर्ण-प्रतिमा थी, जिनकी उपासना वे नित्य किया करतीं।

दुर्गानवमी के दिन प्रभावती देवी ने शक्ति का शृङ्गार किया, सुभाष भी उपासना के समय उपस्थित थे। वे एक आसन पर गम्भीरता धारण किए हुए बैठे थे और मनोयोगपूर्वक शक्ति की उपासना देख रहे थे। उनकी माता ने प्रतिमा को स्नान कराया, चन्दन और कुमकुम मस्तक पर लगाया, पुष्पमाला गले में डाली तत्पश्चात् मन ही मन अपने कुटुम्ब की मङ्गल-कामना करने लगीं।

उपासना समाप्त हो चुकने पर प्रभावती देवी ने दुर्गा माता का प्रसाद उठाया और सुभाष के समक्ष आ खड़ी हुईं।

"प्रसाद लो बेटा!...." कहा उन्होंने।

"........" परन्तु बालक सुभाष ने जैसे कुछ सुना ही नहीं।

वे एकटक देवी की स्वर्ण प्रतिमा की ओर देख रहे थे।

नेत्र-शक्ति प्रतिमा की ओर ही केन्द्रित थी।"

"सुभाष!" वे पुकारीं—"देवी का प्रसाद लो बेटा।"

सुभाष तब भी चुप रहे।

"तुम क्या सोच रहे हो ?...." माता ने उच्च स्वर में कहा—"देवा का प्रसाद क्यों नहीं लेते सुभाष ?"

सुभाष जैसे सोते से जगे हों। चौक पड़े वे।

बोले—"क्या है माताजी !....है क्या ?...."

"देवी का प्रसाद लो बेटा...." माता प्रभावती ने कहा।

"देवी का प्रसाद ! किस देवी का ?"

"जिसकी ओर अभी तक तन्मयतापूर्वक तुम देख रहे थे।"

"यह किस देवी को प्रतिमा है माताजो !...." पूछा सुभाष ने।

"मातेश्वरी दुर्गा की...."

"बड़ो भव्य प्रतिमा है यह !..." सुभाष ने कहा।

"माता-शक्ति की प्रतिमा भला क्यों न भव्य होगी ?...."

"तो क्या माता-शक्ति यही हैं ?" चौंककर सुभाष ने पूछा।

"हाँ बेटा।" माता ने कहा।

"शक्ति की उपासना तुम इस तरह करती हो माताजी।"

"किस तरह !...."

"धूप-दीप और कुमकुम से ?"

"तो और किस तरह की जाती है उपासना ?...." माता प्रभावती को सुभाष की बातें सुनकर अत्यन्त आश्चर्य हो रहा था।

"नहीं माता जी।" सुभाष बोले—"शक्ति की उपासना धूप, दीप और कुमकुम से नहीं की जाती...शक्ति की उपासना की जाती है शस्त्रों की झनकार से....आत्म बलिदान से...." सुभाष ने कहा।

"........" आश्चर्य विस्फारित नेत्रों से देखने लगीं माता प्रभावती बालक के मुख की ओर।

"और...." सुभाष कहते गये—"मातेश्वरी शक्ति पुष्पमाला से प्रसन्न नहीं होती। वे प्रसन्न होती हैं रक्त की बूंदों से....मातेश्वरी की उपासना के लिए खून चाहिये....साधक का खून...."

और सुभाष ने तुरन्त ही जेब से चाकू निकालकर अपनी उँगली चीर दी। खून बहने लगा। प्रभावती देवो चीत्कार कर उठीं।

परन्तु बालक सुभाष तनिक भी विचलित न हुए। उन्होंने आगे बढ़कर अपने बहते हुए खून से शक्ति के मस्तक पर टीका लगा दिया।

"यह है शक्ति की वास्तविक उपासना।" हंसकर बोले सुभाष।

डरकर प्रभावती देवी ने अपने नेत्र बन्द कर लिए।

यह थी एक घटना।

सुभाष ने अपना बाल्यावस्था में ही आत्म-बलिदान का पाठ पढ़ा, दलितों के प्रति आँसू बहना सीखा और शोषकों का नाश करने के लिए अपने खून की आहुति का दृढ़ संकल्प किया।

खून से सींचा करो, अपने वतन की आन।
ऐ खुदाई नूर! तुमसे है यही फरियाद॥

तीन-चार वर्ष और व्यतीत हुए। सन् १९०६ ईस्वी में सुभाष कटक कालेजियेट स्कूल में भर्ती हुए। स्कूल के प्रधानाध्यापक थे, बाबू वेणीमाधव दास। उनका चरित्र अत्यन्त ज्वलन्त था। धार्मिक विषयों के वे प्रकाण्ड विद्वान थे। बाबू वेणीमाधव दास के उज्ज्वल चरित्र का बालक सुभाष पर गहरा प्रभाव पड़ा। वे उनके सच्चे अनुयायी बन बन गये। वेणी बाबू ने भी बालक सुभाष के अन्तराल में छिपी हुई विद्रोही भावना का परिचय पाया। वे समझ गये कि इस शिशु के नन्हें-से शरीर में महान आत्मा उपस्थित है।

यह जानकर वेणी बाबू की प्रसन्नता का पारावार न रहा।

उन्होंने सुभाष को विद्रोही भावना का जहर पिलाकर, उनकी सोई हुई क्रान्ति को ठोकरें मार कर उकसाया और सुभाष के कोमल हृदय में योग्य गुरु की शिक्षाओं ने अगम विद्रोह की सृष्टि कर दी। वे दिन-रात, सोते जागते, अपने देश की पराधीनता का चिन्तन कर व्याकुल रहने लगे। उनकी माता अपने पुत्र का रंग ढङ्ग देखकर पहले ही शङ्कित हो उठी थीं। अब सुभाष की यह परिवर्तित भङ्गिमा देखकर उन्हें परम आश्चर्य हुआ।

माता प्रभावती ने, सुभाष का हृदय धार्मिक विषयों की ओर लगाना चाहा। उन्होंने उसे रामकृष्ण चरितामृत का नियमपूर्वक

पाठ कराया ...योगासन की शिक्षा दी ...और धार्मिक विषयों की आलोचना-प्रत्यालोचना करना सिखाया। सुभाष का कोमल हृदय कुछ दिनों के लिए परतंत्रता का करुण-क्रन्दन भूल गया और धर्मपथ पर तीव्रता के साथ अग्रसर हुआ। माता प्रभावती अत्यन्त प्रसन्न हुईं, पुत्र का मन धार्मिक विषयों में लगते देखकर।

एक दिन—सुभाष की धार्मिक प्रेरणा असहायों का करुण-क्रन्दन सुनकर चीत्कार कर उठी। जाजपुर के परगने में हैजा फैला था। सैकड़ों मनुष्य प्रतिदिन काल-कवलित हो रहे थे।

दीन-दुखियों की वह हृदयविदारक पुकार सुनकर सुभाष का हृदय हाहाकार कर उठा। दोपहर को जब वे भोजन करने बैठे तो थाली ज्यों की त्यों सामने रखी रह गयी और उस दयालु बालक की विचारधारा दीनों के दुःख का ही चिन्तन करती रही।

"यह क्या सुभाष! तूने अन्न खाया नहीं...." प्रभावती देवी ने कहा। वे ध्यानपूर्वक सुभाष की अव्यवस्थित भंगिमा देख रही थीं।

"खाता हूँ माता जी!" सुभाष ने उत्तर दिया।

"बात क्या है?...." माता प्रभावती ने पूछा—"तुझे क्या हो गया है।....आज तू कौर क्यों नहीं उठाता?"

"हजारों दुखियारे घुल-घुलकर मर रहे हों....और मैं यहाँ आराम से बैठकर खाना खाऊँ?....यह नहीं हो सकेगा मुझसे।"

थाली छोड़कर उठ खड़े हुए सुभाष। माता ने उन्हें रोकना चाहा परन्तु आँधी के प्रबल वेग को कौन रोक सकता है? दृढ़ संकल्प की भावना लिए सुभाष पहुँच गये प्रधानाध्यापक बाबू वेणीमाधवदास के घर। वेणी बाबू अपने कमरे में बैठे उस दिन का समाचार-पत्र देख रहे थे। सुभाष उनकी कुर्सी के पीछे जा खड़े हुए।

उन्होंने देखा कि उनके सामने खुले हुये समाचार पत्र में भी जाजपुर परगने में हैजे के प्रकोप का समाचार छपा था और वेणी बाबू उस समाचार को ध्यानपूर्वक पढ़कर कुछ सोच रहे थे।

"मास्टर साहब!..." सुभाष ने धीरे से पुकारा?

चौंक पड़े वेणी बाबू। पीछे घूमकर देखा तो सुभाष।

"क्या है सुभाष !....आओ बैठो...."

सुभाष चुपचाप उनके सामने जाकर खड़े हो गये। बैठ नहीं।

"उद्विग्न दिखाई पड़ रहे हो, क्या बात है ?" पूछा उन्होंने।

"मास्टर साहब ! ..." सुभाष बोले—"अभी आप समाचार-पत्र पढ़ते हुए क्या सोच रहे थे ?...."

"सोच रहा था कि मानव-जाति का दुख पराकाष्ठा तक पहुँच चुका है...."

सुभाष ने वेणी बाबू की ओर प्रश्नसूचक दृष्टि से देखा।

"जाजपुर में हैजा फैला हुआ है...."मास्टर साहब कहते गये--"निरीह प्राणी पशुओं की तरह मर रहे हैं। मैं सोच रहा था कि क्या उन गरीबों के प्रति सहानुभूति रखने वाला आज कोई मानव नहीं ? क्या हैजे को मारात्मक रोग समझ कर, सभ्य कहलाने वाला एक भी पशु उनकी सहायता नहीं कर सकता ?"

शिक्षक और शिक्षार्थी दोनों के हृदय में एक ही भाव थे।

एक ही पीड़ा थी, एक ही लक्ष्य था।

"तुम इस दोपहरी में कैसे दौड़े आये, सुभाष !" थोड़ा ठहर कर पूछा वेणी बाबू ने।

"मैं भी सभ्य कहलाने वाला एक पशु हूँ मास्टर साहब !...." सुभाष बोले—"परन्तु वह पशु नहीं, जो हैजे को मरात्मक रोग समझकर वहाँ जाने से डरता हो...."

सुनकर चौंक पड़े वेणी बाबू—"तुम्हारा मतलब ?...." बोले वे—"तुम्हारा अभिप्राय क्या है सुभाष ?...."

"मुझे चैन नहीं है....जब से मैंने जाजपुर के विषय में सुना है तब से न ठीक से खाना खा सका हूँ और न सो सका हूँ...."

"तुम करना क्या चाहते हो ?...."

"मैं वही करना चाहता हूँ, जो हमारे योग्य शिक्षक ने हमें सिखाया है...." रुककर कहा सुभाष ने—"मैं जाजपुर जाकर पीड़ितों का दुख निकट से देखना चाहता हूँ...."

"क्या करोगे देखकर वह हृदयविदारक दृश्य ?...."

"वह दृश्य देखकर मैं अपने अन्तराल में बसे हुए निकृष्ट मानव को जगाऊँगा और असहायों की यथाशक्ति सेवा करके अपने को पशुओं की श्रेणी से अलग करूँगा...." बारह वर्ष के उस अबोध बालक का दृढ़ संकल्प देखकर चिन्तामग्न हो गये बेणी बाबू।

"तुम सरकारी वकील के बेटे हो सुभाष!...." उन्होंने कहा— "अब तक तुमने सुख में ही अपना जीवन व्यतीत किया है....क्या तुम दुखों का सामना कर सकोगे?...."

"आप मेरे सर पर हाथ रखकर आशीर्वाद दीजिए मास्टर साहब! और मैं सब कष्ट हँसते-हँसते झेल लूँगा...."

"तुम बड़े हठी हो बेटे!...." वेणी बाबू हँसकर बोले—"मगर तुम्हारा यह हठ भी अपूर्व है!....चलो, मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगा। तुम्हें कष्ट की जगह अकेले कैसे जाने दूँ।"

और तब—असहायों की सहायता का दृढ़ संकल्प लेकर वे दोनों दीवाने निकल पड़े गाँवों की ओर!

दो महीने तक मारे-मारे फिरते और दलितों की सेवा में अपना दिन बिताते रहे दोनों। इधर रायबहादुर जानकीनाथ बोस सुभाष के लुप्त होने से बहुत उद्विग्न थे। उन्होंने पता लगाने के लिए बहुत प्रयत्न किया परन्तु उनका पता न लग सका। दो महीने बाद सुभाष घर आकर, सीधे अपने पिता के सामने खड़े हो गये। रायबहादुर उन्हें देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए परन्तु अनवरत परिश्रम द्वारा सुभाष को कृषकाय देखकर उन्हें दुःख भी कम न हुआ।

"सुभाष!..."

"पिताजी!...."

"कहाँ थे इतने दिनों तक?...."

"जाजपुर में...."

"जाजपुर!...." चौंककर बोले रायबहादुर—"कहते क्या हो—जाजपुर में, जहाँ मृत्यु का ताण्डव हो रहा था!...."

"जी हाँ!" नतमस्तक सुभाष ने उत्तर दिया।

"क्या कर रहे थे वहाँ तुम सुभाष!...."

"सेवाकार्य कर रहा था ?...."

"सेवाकार्य ?...." अत्यधिक आश्चर्य से बोले रायबहादुर—"तुम, और सेवाकार्य कर रहे थे ?..."

चुप रहे सुभाष।

"जो स्वयं दूसरों से सेवा कराने का अधिकारी है, वह दलितों की सेवा करे ?..."रायबहादुर बोले—"तुम्हें अपनी प्रतिष्ठा का तनिक भी ध्यान न आया ?"

सुभाषपूर्ववत् मौन रहे।

"तुमने नीच मनुष्यों की तरह सेवावृत्ति अङ्गीकार की परन्तु यह भूल गये कि उस बाप के बेटे हो, जो रायबहादुर है और जिसका सम्मान सरकारी अफसर तक करते हैं...."

एकाएक सुभाष की भंगिमा दृढ़ हो उठी।

"पिताजी !...." तेजी के साथ बोले वे—"जो मान-प्रतिष्ठा मानवता के पवित्र भावों पर लात मारकर ग्रहण की गई हो, वह तुच्छ है...."

विस्फारित नेत्रों से देखने लगे रायबहादुर सुभाष की ओर।

"जो सरकारी पद, दलितों के प्रति दयाभाव के बदले घृणा प्रदान करता है, वह मेरी दृष्टि में हेय है....घृणित है...."और वह विद्रोही बालक तेजी के साथ अपने पिता के सामने से चला गया।

× × ×

निरन्तर अन्यान्य विषयों का चिन्तन करते-करते सुभाष अपनी पढ़ाई की ओर ध्यान नहीं दे पाते थे। फिर भी उनमें प्रतिभा थी....उनके मस्तिष्क में ज्ञान का अगम भण्डार उपस्थित था।

शिक्षकगण उनकी योग्यता देखकर आश्चर्य चकित थे। थोड़ी ही अवस्था में उनमें अंग्रेजी भाषा का पर्याप्त ज्ञान था। उनके मुख से शुद्ध और साफ अंग्रेजी सुनकर गोरे भी प्रभावित हो उठते थे। सन् १९१३ ई० में सुभाष ने मैट्रिक्युलेशन परीक्षा पास की। उत्तीर्ण छात्रों में उनका दूसरा स्थान था। उन्हीं दिनों रायबहादुर

ने कलकत्ते में एलगिन रोड पर एक भव्य भवन बनवाया। रायबहादुर का अभिप्राय यह था कि उच्च शिक्षा प्राप्त करते समय उनके पुत्रों को कलकत्ते में कोई कष्ट न हो।

१९१३ ई० के जुलाई मास में सुभाष ने कलकत्ते के प्रेसिडेन्सी कालिज में प्रवेश लिया और उसी मकान में रहने लगे। उसी समय डाक्टर सुरेश बनर्जी ने युवकों की एक संस्था स्थापित की।

इस संस्था में वे विद्रोही युवक ही प्रवेश पा सकते थे, जो आजीवन अविवाहित रहकर मातृभूमि तथा पीड़ितों की सेवा करने का व्रत लेते थे। जब सुभाष बाबू ने इस संस्था के विषय में सुना तो उनकी विद्रोही आत्मा उल्लसित हो उठी। उन्होंने तुरन्त ही जाकर अपना नाम लिखाया और विद्रोही सुभाष, जीवन में प्रथम बार एक संस्था के संसर्ग में आये। वे मनोयोगपूर्वक संस्था का प्रचार करने लगे। उनके वाक्यों में जादू था, उनकी वाणी में दैवी शक्ति थी। फल यह हुआ कि थोड़े ही दिनों में कालेज के बहुत से छात्र उक्त संस्था के सदस्य हो गये। उन्हीं दिनों डाक्टर प्रफुल्लचन्द घोष ने भी इस संस्था में प्रवेश किया।

१९१४ ई० में कलकत्ते में रामकृष्ण मिशन का वार्षिकोत्सव था। दूर-दूर से विद्वान पधारे थे। उत्सुकतावश सुभाष भी वहाँ जा पहुँचे। स्वामी विवेकानन्द का तेजोन्मय मुखमंडल देखते ही सुभाष अत्यन्त प्रभावित हुए। जब स्वामीजी ने गम्भीर वाणी में कहा—"सत्य की खोज करो...." तो सुभाष पर जादू-सा फिर गया।

"सत्य क्या है ?...."और कहाँ मिलेगा ? सोचने लगे सुभाष।

उन्होंने सुन रखा था कि सत्य की खोज करने के लिए महात्मा लोग हिमालय पर्वत की ओर जाते हैं और अंधेरी गुफाओं तथा कन्दराओं में योगसाधन करते हुए शक्ति प्राप्त करते हैं।

फिर क्या था, विद्रोही सुभाष ने पढ़ाई पर लात मार दी और उस अनोखी वस्तु की खोज करने घर से निकल पड़े।

घर पर किसी को अपने जाने की सूचना न दी। चुपचाप चल दिये, महान शक्ति प्राप्त करने। घनघोर अंधेरी रात में....

प्रचण्ड धूप में... बरसते हुए आकाश में.... वह दृढ़ प्रतिज्ञ युवक हिमालय में जङ्गलों में मारा-मारा फिरा परन्तु न तो उसे कहीं सत्य की झलक दिखाई दी और न तो कोई योग्य गुरु ही मिला, जो उसे अध्यात्मिकता का सच्चा मार्ग दिखलाता। हिमालय कि एकान्तवास से ऊब कर सुभाष आगरा आये। वहाँ पर उनकी भेंट प्रेमानन्द सन्यासी से हुई।

सन्यासीजी योग्य पुरुष थे, ग्रेजुएट भी थे। परन्तु उनका रहन सहन गृहस्थों के समान था जो सुभाष को अच्छा न लगा।

आगरे से सुभाष वृन्दावन पहुँचे। वृन्दावन में वे राजर्षि बनमाली राय से मिले। बनमाली राय ने सुभाष के पठनार्थ धार्मिक ग्रन्थों की उचित व्यवस्था कर दी।

सुभाष की प्रचण्ड बुद्धि देखकर रामकृष्णदास नामक साधु ने उन्हें सलाह दी कि आप काशी जाकर ज्ञानमार्ग का उपदेश लें।

सुभाष बाबू काशी आये। बहुत दिनों तक उन्होंने रामकृष्ण मिशन के ब्रह्मानन्द स्वामी के साथ धर्म चर्चा की।

एक दिन स्वामीजी ने उन्हें घर जाने की आज्ञा दे दी क्योंकि वे यह नहीं चाहते थे कि बिना माता-पिता की अनुमति के वह मेधावी युवक संन्यास ग्रहण करे। स्वामी जी की आज्ञा शिरोधार्य कर सुभाष काशी से अपने घर की ओर चल पड़े। परन्तु अब भी जिस सत्य की खोज में वे निकले थे, वह उन्हें कहीं न मिल सका था। हाँ! काशी में धार्मिक ग्रन्थों के अध्ययन ने उन्हें कुछ शान्ति अवश्य प्रदान की थी। रास्ते में सुभाष का मन पुनः डगमगा उठा और वे गया में ट्रेन से उतर पड़े। उन्होंने सुन रखा था कि गया एक महान तीर्थ है। उन्हें आशा थी कि अवश्य ही यहाँ 'सत्य' का शोध करने में वे सफल होंगे।

उतरने को तो गया में उतर गये परन्तु वे यह निश्चय नहीं कर सके कि कहाँ जायँ और क्या करें? वह निरुद्देश्य भाव से इधर-उधर चक्कर लगाने लगे। रास्ते में एक मन्दिर के सामने अपार भीड़ देख कर रुक गये। एक मोटा-सा पण्डा उनके पास आया।

बोला—"दर्शन करो बच्चा।"

"किसका दर्शन ?" उत्सुकतावश पूछा सुभाष ने।

"महन्थ महाप्रभु का।...." पण्डे ने उत्तर दिया।

"क्या महन्थ महाप्रभु का दर्शन करने से मुझे शान्ति मिल सकेगी।" सुभाष ने कहा—"क्या मुझे सत्य का ज्ञान हो सकेगा ?"

पण्डे ने आश्चर्यपूर्वक उस युवक को ओर देखा, वह समझ गया कि यह नादान युवक घर से भटककर चला आया है।

बोला वह—"महन्थ महाप्रभु के तुम शिष्य हो जाओ बच्चा। तुम्हें पूर्ण शान्ति मिलेगी।"

"और सत्य ?...."

"उसका भी ज्ञान तुम्हें हो जायेगा...." पण्डे ने कहा।

"तो मुझे महन्थ महाप्रभु के पास ले चलो।" सुभाष बोले—मैं उस पवित्र आत्मा का शिष्य होने को प्रस्तुत हूं..."

"चलो।..." आगे-आगे वह पण्डा और पीछे-पीछे सुभाष उस विशाल मन्दिर में प्रविष्ट हुए। एक विशाल प्रांगण में आकर चौंक पड़े सुभाष। स्थिर हो गये उनके पग।

उन्होंने देखा कि गौरवर्ण का एक दीर्घाकार व्यक्ति चाँदी के एक विशाल आसन पर बैठा था। बदन एकदम नग्न था, केवल कमर में सोने की करधनी में कौपीन पड़ा था। वे ही थे महन्थ महाप्रभु। उच्च-कुल की कितनी ही नवयौवनायें महन्थ महाप्रभु का पूजन करने वहाँ आयी थीं, पूजन के लिए दुग्ध से भरे हुए बर्तन और फलों की टोकरियाँ साथ लेकर। बारी-बारी से एक-एक युवती महन्थ के पास जाती थी। महन्थ के ऊपर दुग्ध का बर्तन उड़ेल, उन्हें मल-मल कर नहलाती और अपने कोमल हाथों द्वारा फल छीलकर महन्थ महाप्रभु को खिलाती थी।

महन्थ महाप्रभु हँस-हँस कर नयनों से कटाक्ष का तीर चला-चलाकर सबकी 'पूजा' स्वीकार करते थे।

सौन्दर्य का अपूर्व समारोह था मन्दिर के उस विशाल प्रांगण में। सुभाष चित्र-लिखित-से खड़े थे। वह दृश्य देखने में इतने

तल्लीन थे कि अपना अस्तित्व तक भूल गये।

"आओ बेटा!...." पण्डे ने कहा—"और महन्थ महाप्रभु के चरणों की वन्दना करो...."

चुपचाप आगे बढ़कर सुभाष ने महन्थ के चरण स्पर्श किए। महन्थ ने हँसकर उनके सर पर अपना हाथ फेरा।

"देवदूत!...." महन्थ ने पण्डे को पुकारा।

"आज्ञा महाप्रभु!...." पण्डे ने आगे बढ़कर महन्थ के सामने हाथ जोड़ दिए।

"यह युवक कौन है?...." महन्थ ने पूछा।

"यह एक पथभ्रान्त है महाप्रभु!...."

"यहाँ आने का कारण?...."

"यह आपकी सेवा का अभिलाषी है देव! और महाप्रभु की चरणवन्दना करके सत्य की खोज करना चाहता है...."

"अच्छा! अच्छा!!...." महन्थ ने तीक्ष्ण दृष्टि से युवक की ओर देखा—"तुम सत्य का अनुसन्धान करने आये हो भोले युवक!"

"हाँ महाप्रभु!...." सुभाष ने कहा।

"एवमस्तु!....तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण होगी...." महन्थ ने कहा—"देवदूत! इस युवक के वास-स्थान का प्रबन्ध कर दो.... आज रात्रि मे इसकी दीक्षा हो जायगी...."

"जो आज्ञा महाप्रभु!...." देवदूत बोला।

मन्दिर के बहिर्प्रान्त में सुभाष को एक छोटी-सी कोठरी मिल गई। सुभाष ने उसी में अपना डेरा जमाया।

उस मन्दिर का वातावरण न जाने क्यों सुभाष को पसन्द नहीं आया। महन्थ का आचरण भी उन्हें संदिग्ध जान पड़ा।

फिर भी वे उत्सुकतापूर्वक रात्रि की प्रतीक्षा करने लगे। वे यह देखने को लालायित थे कि उनकी दीक्षा होती किस प्रकार है।

सन्ध्या हुई और रात्रि के भयानक अन्धकार ने अपने पंख फैला दिए। मन्दिर का कण-कण तीव्र ज्योति से जगमगा उठा। संसार की भयंकर कालिमा जैसे वहाँ थी ही नहीं। रात्रि का

प्रथम पहर व्यतीत होने पर देवदूत सुभाष के पास आया।

बोला—"चलो बेटे! अब तुम्हारी दीक्षा का समय हो चुका।"

"चलिए!..." कहकर सुभाष देवदूत के पीछे-पीछे चले।

इस समय मन्दिर के एक दूसरे प्रांगण में सुभाष ने प्रवेश किया। वहाँ का दृश्य देखकर तो सुभाष को पहले से भी अधिक आश्चर्य हुआ। सबसे पहले उनकी दृष्टि प्रांगण की विचित्र दीवारों पर पड़ी। उन्होंने देखा, जगह-जगह पर नग्न स्त्री-पुरुषों के कामुक चित्र बने थे। दूसरी ओर दृष्टि गई तो उन्होंने देखा कि महन्थ आकर्षण परिधान धारण किए रजत आसन पर उपस्थित हैं और उनके आस-पास बीसों अर्द्धनग्न युवतियाँ लज्जा परित्याग किये खड़ी हैं। सुभाष के आते ही सबकी दृष्टि उनकी ओर उठ गई। युवतियाँ उन्हें घूरकर विचित्र भाव प्रदर्शित करने लगीं।

"आओ वत्स!...." महंथ ने पुकारा सुभाष को। सुभाष चित्र-लिखित-से आगे बढ़ और एक छोटे-से रजत-आसन पर बैठ गये।

"चरणांबु उपस्थित करो।" युवतियों को महंथ ने आज्ञा दी।

युवतियाँ यन्त्रचालित-सी उठ खड़ी हुईं। सुभाष का हृदय आशंकित हो उठा, जब उन्होंने देखा कि हर युवती के हाथ में किसी 'लाल शर्बत' का प्याला है। चरणांबु क्या था, बोतल का हलाहल! उनमें से एक देवांगना, जो सबसे सुन्दर तथा सुडौल शरीर वाली थी, आगे बढ़ी। अपने हाथ के हलाहल का पात्र महन्थ महाप्रभु के होठों से लगा दिया उसने।

महन्थ ने पात्र ले दो घूंट पीया फिर उस युवती को अपनी गोद में खींचकर उसके अधरों का हलाहल पान किया।

और तब वह युवती, अपनी नाजुक कमर पर सैकड़ों बल देती हुई, सुभाष के सामने आ खड़ी हुई। उसका हाथ हलाहल का पात्र लिए सुभाष के होठों की ओर बढ़ा और सुभाष तेजी के साथ उठ खड़े हुए। सहम कर युवती दो पग पीछे हट गई।

'महाप्रभु का चरणाम्बु पान करो युवक!' आज्ञा भरे स्वर में देवदूत बोला। भावावेश में सुभाष कुछ बोल न सके। उनकी

आँखें जल उठीं अङ्गारे की तरह।

"महावारुणी का तिरस्कार न करो युवक! महाप्रभु का अपमान करके तुम सुख प्राप्त न कर सकोगे...." देवदूत ने पुनः कहा और कई पग आगे बढ़कर सुभाष के सम्मुख आ खड़ा हुआ।

"यह नीच कर्म मुझसे नहीं हो सकेगा...." तीव्र स्वर में सुभाष ने कहा और पलट कर द्वार की ओर बढ़े।

"ठहरो!...." महन्थ का कठोर गर्जन सुनाई पड़ा।

रुककर सुभाष ने पीछे की ओर देखा।

महन्थ ने अपना क्रोध दूर किया और स्वर में यथाशक्ति नम्रता लाकर बोला—"लौट आओ नादान युवक!....मत पान करो चरणाम्बु ...मगर शान्त चित्त होकर अपने आसन पर बैठे रहो।"

न जाने क्या सोचकर सुभाष लौट आये और अपने आसन पर जा बैठे। इसके बाद उस पवित्र प्रांगण में मदिरा की नदी बह उठी। लज्जा तथा मनुष्यता को तिलांजलि दे दी गई और पाशविक कामुकता का साम्राज्य छा गया।

प्रज्वलित नयनों से देखते रहे सुभाष यह सब।

अन्त में महन्थ ने आज्ञा दी—"महाप्रसाद उपस्थित करो...."

शीघ्र ही मांसाहार की थालियाँ प्रस्तुत हुईं। सुभाष की सहनशीलता भाग खड़ी हुई। उन्हे ऐसा लगा कि जिस 'सत्य' की खोज में वे भटकते रहे वह सत्य तो उनके सामने उपस्थित है। परन्तु कितना कटु सत्य था वह। उठकर खड़े हो गये सुभाष।

"चाण्डालों! पवित्र देवभूमि को तुम लोगों ने विहार-क्षेत्र बना लिया है....धिक्कार है तुम्हें!..."

"चुपचाप बैठे रहो!...." गरज कर बोला महन्थ।

"दीन-हीन भारतवासियों को लूटकर तुम लोग अपने लिए मदिरा और विलास की सामग्री प्रस्तुत करते हो। लुटेरों! तुम लोगों को गोली मार देनी चाहिए...."

"देवदूत!..." चिल्ला पड़ा महन्थ।

"आज्ञा महाप्रभु!...."

"इस युवक के लिए महानरक की व्यवस्था करो..."

"जो आज्ञा देव ! "

देवदूत अपनी भीमकाय आकृति लेकर सुभाष की ओर बढ़ा।

"वहीं खड़े रहो...." सुभाष ने मेघ-गर्जना की। वह गर्जना सुनकर सहम गया देवदूत। उसने सुभाष की आँखों को देखा।

जलती मशाल हो रही थीं आँखें....उनमें अगम आत्मबल भरा हुआ था। उन प्रज्वलित नेत्रों में एक दाहक शक्ति विद्यमान थी, जिससे देवदूत का साहस उस युवक की ओर बढ़ने का न हुआ।

"देवदूत ! आगे बढ़ो...." महन्थ चिल्लाया।

"वहीं खड़े रहो..." सुभाष पुनः गरजे।

और आज विलासी महन्थ ने देखा कि उस जैसे दीर्घाकार व्यक्ति की आत्म-शक्ति उस अपरिचित युवक के आत्मबल के समक्ष तुच्छ है। देवदूत अपने स्थान पर निश्चल खड़ा रहा और 'सत्य' का अनुसन्धान करके सुभाष, मन्थर गति से उस अपवित्र भूमि से बाहर हो गये। सुभाष जिस "मधुर सत्य" की खोज में घूम रहे थे, उसके स्थान पर प्राप्त हुआ उन्हें एक 'कटु सत्य'।

वह "कटु सत्य" जानकर सुभाष के हृदय में महात्माओं के प्रति प्रबल विद्रोह जागृत हो उठा। अब उन्होंने भटकने का हठ छोड़ घर लौट जाने का निश्चय किया। शीघ्र ही वे विशाल नगरी कलकत्ता लौट आये। ट्राम से उतर कर वे सीधे अपने घर पहुँचे।

दरवाजे पर ही उनकी भेंट अपने मामा से हो गई। वे आँखें फाड़-फाड़ कर सुभाष को देखने लगे, क्योंकि निरन्तर भ्रमण करते तथा कष्ट सहते सुभाष का स्वास्थ्य नष्टप्रायः हो चुका था।

सुभाष के आने का समाचार घर भर में प्रसारित हो गया।

माता प्रभावती दौड़ी हुई आई....झपट कर सुभाष को कलेजे से लगा लिया और रोने लगीं। बोलीं—"सुभाष ! मुझे दुःख देने के लिए ही तू इस संसार में आया है। अब यदि तू फिर कहीं जाने की ठानेगा तो अपने प्राण दे दूँगी।"

राय बहादुर जानकीनाथ बोस भी आ गये। अपने पिता को

देखकर सुभाष के नेत्र सजल हो उठे। रायबहादुर सुभाष का हाथ पकड़ कर उन्हें अपने कमरे में ले आये। सुभाष की आँखें नीची थीं, और रायबहादुर की मुखाकृति थी गम्भीर।

"सुभाष!" रायबहादुर ने पुकारा!

"जी!. "नीचे देखते हुए ही सुभाष ने कहा।

"आँखें ऊपर करो।" रायबहादुर बोले—"मेरी ओर देखो!"

सुभाष ने अपने पिता के मुख की ओर देखा। चौंक पड़े वे—उनके गालों पर बहते हुए आँसुओं को देखकर।

रायबहादुर जानकीनाथ सचमुच रो रहे थे।

सुभाष के चले जाने पर वे अत्यन्त दुखित थे।

"कहाँ गये थे सुभाष?...."पूछा रायबहादुर ने।

"........"और सुभाष ने क्रमश: सारी घटनाएँ यथातथ्य अपने पिताजी को सुना दी।

सुनकर रायबहादुर बोले—"कितने परेशान थे हम लोग.... भला एक पत्र तो हाल देना चाहिए था तुम्हें? क्या हम लोग तुम्हारे लिए एकदम पराये हो गये...."

"... " कुछ उत्तर न दे सके सुभाष!

"तुमने धर्म धुरन्धरों की संगति की है..."रायबहादुर पुनः बोले—"क्या तुम मेरी कुछ बातों का उत्तर दोगे?"

"पूछिए!..." नम्र भाव से कहा सुभाष ने।

"संसार में धर्म है कि नहीं? त्याग के लिए तैयारी आवश्यक है या नहीं?.. अपने कर्तव्य से विमुख होना क्या उचित है?"

"संसार में धर्म हैं।"सुभाष बोले—"केवल एक धर्म—मानव धर्म।...परन्तु सबके लिये एक ही मार्ग उपयुक्त नहीं...."

सुन रहे थे राय बहादुर।

"और त्याग की भावना संस्कार द्वारा उत्पन्न होती है.... त्याग के लिये सबको एक-सा प्रयत्न नहीं करना पड़ता...."

"........"

कर्तव्य शब्द सापेक्ष है। बड़ों की आज्ञा के सामने छोटों की

आज्ञा का कोई महत्व नहीं रह जाता। ज्ञान की प्राप्ति होते ही कर्म का नाश हो जाता है...."

"हूँ।...."रायबहादुर ने कहा—"यह बताओ कि अद्वैतज्ञान 'ब्रह्मसत्य जगत्मिथ्या' केवल सिद्धांत-मात्र है या और कुछ?"

"जब तक हम केवल इन शब्दों का उच्चारण करते रहते हैं... तब तक ये सिद्धान्तमात्र हैं। परन्तु इनकी प्राप्ति के बाद ये सत्य हो जाते हैं और यत्न करने पर इनकी प्राप्ति सम्भव है।"

"यह तुम्हारी सूझ है या तुम्हारे गुरु की?...." रायबहादुर ने व्यंगात्मक स्वर में पूछा।

"यह हमारी सूझ नहीं है...." सुभाष बोले—"इस सिद्धांत का प्रतिपादन उन महर्षियों ने किया है, जिन्होंने इसे प्राप्त किया था और उन्होंने ही उस मार्ग का भी निर्देशन किया है, जिस पर चलकर इस अलभ्य वस्तु को प्राप्त कर सकते हैं।...."

"...." कुछ सोच रहे थे रायबहादुर जानकीनाथ बोस। शायद सुभाष की तर्कशक्ति पर स्वयं उनको अचम्भा हो रहा था।

"रामकृष्ण परमहंस ने इसे सत्य करके दिखा दिया था..." कहते गये सुभाष—"स्वामी विवेकानन्द मेरे आदर्श हैं...."

कुछ कह न सके रायबहादुर। केवल इतना कहा - "अब तुम्हें अन्तरात्मा की पुनः पुकार सुनाई देगी, तो देखा जाएगा।"

सुभाष कुछ न बोले और अपनी माता के पास चले आये।

सुभाष के लौटने की खुशी, सबसे अधिक उनकी माता प्रभावती को थी। उनको तो जैसे उनका जीवन मिल गया था।

रात्रि में सुभाष जब भोजन करने बैठे तो उनकी माता रोने लगीं। आज बहुत दिनों के पश्चात् वे अपने लाड़ले पुत्र को अपने हाथों से परस कर खिला रही थीं।

"अब तो मैं आ गया माताजी! अब तुम आँसू क्यों बहा रही हो?...." सुभाष ने पूछा।

"तू तो आ गया है जरूर, मगर कितना तड़पाया है, कितना रुलाया है तूने मुझे....कि मैं ही जानती हूँ!...."

"परन्तु अब तो तुम्हारे रोने-तड़पने का अन्त हो जाना चाहिए माताजी !...." सुभाष बोले ।

"अपनी दशा तो देख...." माता ने कहा—"फूल-सा बच्चा मेरा सूखकर कांटा हो गया तू !...."

यात्रा में अनेक कठिनाइयों का सामना करते-करते सुभाष का शरीर जर्जर हो उठा था। परिणाम यह हुआ कि दो-चार दिन में ही उन्हें रोग ने आ घेरा। टाइफाइड का उन पर आक्रमण हुआ। माता-पिता अत्यन्त चिन्तित हुए। डाक्टरों के अनवरत परिश्रम से महीनों में जाकर स्वास्थ्य सुधरा। अभी रोग-शैया से उठे ही थे कि परीक्षा सिर पर आ धमकी। साल भर से कुछ पढ़ा तो था नहीं। केवल इने-गिने दिनों में किताबें शुरू से अन्त तक देख डालीं। आश्चर्य कि प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुए सुभाष।

सन् १९१५ ई०—प्रथम श्रेणी में एफ० ए० (आर्ट्स) पास कर चुकने के पश्चात् सुभाष ने बी० ए० में प्रवेश किया और दर्शन शास्त्र में आनर्स चुना। प्रायः यह देखा जाता है कि कुछ विद्यार्थी रट-रटाकर परीक्षाएँ पास कर लेते हैं, परन्तु ऐसे लड़कों की आत्मायें कभी समुन्नत नहीं हो सकतीं। वे संसार में कोई भी उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य करने का साहस नहीं कर सकते।

परन्तु सुभाष का मस्तिष्क अत्यन्त तीक्ष्ण था और उनकी आत्मा भी सबल थी ! उनकी आँखें अन्यायपूर्ण कार्य होते नहीं देख सकती थीं। अनाचार देखकर उनका खून खौल उठता था।

एक दिन ! कालेज में अंग्रेज प्रोफेसर क्लास ले रहे थे। उनका नाम था सी० एफ० ओटेन। गोरी चमड़ी वाले पक्के अंग्रेज थे वे। विद्यार्थियों को बात-बात में भद्दे वाक्य कह बैठते थे।

सुभाष उनके पीरियड में पहले ही पहल आये थे, अतः उन्हें प्रोफेसर ओटन का दुर्व्यवहार अब तक ज्ञात न था।

प्रोफेसर साहब ने एक विद्यार्थी से कोई सवाल पूछा। वह विद्यार्थी उनके प्रश्न का समुचित उत्तर न दे सका। यह बात प्रोफेसर ओटन का क्रोध भड़काने के लिए पर्याप्त थी।

वे तड़प कर बोले—"यू रास्कल ! तुम पढ़ता-लिखता नहीं। घर जाकर खेलने-कूदने सकता है।"

प्रोफेसर के मुंह से अपशब्द सुनकर विद्रोही सुभाष विचलित हो उठे। उस विद्यार्थी ने कहा—"सर ! आपका सवाल मेरी समझ में नहीं आया। आप समझाकर कहने की कृपा कीजिए...."

"यू ब्लैक मंकी ! तुम सवाल भी समझने सकता ?"

अब असह्य हो उठा सुभाष के लिए। वे उठ खड़े हुए।

"तुम बैठ जाओ !...." क्रोध से बोला प्रोफेसर।

"जबान सँभाल कर मुंह से शब्द निकालिए प्रोफेसर साहब !...." सुभाष तीक्ष्ण स्वर में बोले।

"यू ब्लडी ! तुम बैठने मांगता या नहीं ?...."

सुभाष ने आग्नेय नेत्रों से देखा, उस सफेद निशाचर की ओर और कई पग आगे बढ़कर एकदम सामने आ खड़े हुए।

"तुम अपने को समझते क्या हो प्रोफेसर !...." बोले सुभाष—"तुमने हमें कुत्ता समझ लिया है ?"

"हाँ, कुत्ते हो तुम लोग !..." प्रोफेसर ने झिड़ककर घृणापूर्ण स्वर में कहा।

"हम लोग कुत्ते हैं !...." तड़प कर कहा सुभाष ने—"और तुम ?....तुम क्या हो ?.... हमारी आजादी छीनकर हमें गुलाम बनाने वाले जलील, बोलो तुम क्या हो ?"

क्रोध से काँपने लगा प्रोफेसर ओटन !

"हम लोग कुत्ते हैं, काले बन्दर हैं और मूर्ख हैं....केवल इसलिए कि हम परतन्त्र हैं....हमें तबाह कर, हमें लूटकर सुख-चैन की नींद सोने वाले लुटेरे, सुफेद शैतान ! बोलो तुम क्या हो ?.... यहाँ आकर हमारी नौकरी करने वाले, हमारे टुकड़ों पर पलने वाले नरपशु !.. तुम अपने को बहुत उच्च समझते हो ?...."

"शट अप यू बास्टर !...." कहकर प्रोफेसर जाने लगा।

उसके मुख से यह गाली सुनकर सुभाष के बदन का खून आँखों में उतर आया। वह गाली थी, जिसे एक शासक ने शासित

को दी थी। वह गाली थी, जिसे एक गोरे ने काले को दी थी।

प्रोफेसर ओटन के मुख से निकली हुई वह गाली अभागे भारत की पराधीनता का उपहास थी... गोरी सरकार की दम्भपूर्ण-शासन-नीति की प्रतीक थी।

रोम-रोम काँप उठा सुभाष का। उन्होंने दौड़कर प्रोफेसर ओटन का गला पकड़ लिया। देखते-देखते उस बलिष्ठ युवक के पंजों के काले दाग ओटन की गोरी चमड़ी पर उभर आये।

"किस मुँह से कहा तुमने हमें बास्टर...." गरज कर बोले सुभाष—"किस जबान से तुमने यह गाली निकाली....खींच लूंगा जबान—जलील कुत्ता कहीं का!"

सुभाष की चौडी हथेली ओटन के रक्तिम कपोलों पर जा पडी। पाँचों उँगलियाँ छापे की तरह उभर आईं। सन १८५७ के बाद, अंग्रेजों के मुख पर विद्रोही भारत का वह पहला तमाचा था। दुनिया भर में गर्व से सर उठा कर चलने वाले अंग्रेजों का मान उस एक तमाचे ने मर्दन कर दिया।

क्रोध से काँपता हुआ प्रोफेसर ओटन प्रिंसिपल के पास दौडा गया और उसी दिन सुभाष को विद्रोही ठहरा कर कालेज से निकाल दिया गया। कालेज से निकाल दिए जाने के पश्चात सुभाष अपने पिता के पास कटक आये। पिता ने उनसे असमय में बिना सूचित किये आने का कारण पूछा और सुभाष ने यथातथ्य सारी घटनायें वर्णन कर दी। सुनकर रायबहादुर गम्भीरता धारण किए न जाने क्या सोचने लगे। उन्होंने पुत्र को क्या बनाना चाहा था और वह क्या बन गया?

बड़ी देर बाद बोले वे—"यह अच्छा नहीं हुआ सुभाष!"

"जो होता है वह अच्छा ही होता है पिताजी!...." कहने लगे सुभाष—"मैं बहुत दिनों से यह अनुभव करता आ रहा हूँ कि मेरा जन्म एक निश्चित ध्येय की पूर्ति के लिए हुआ है...."

"तुम्हारे जीवन का उद्देश्य चाहे जो हो...." रायबहादुर बोले—"मगर यह निश्चित है कि तुम्हारे कार्यों ने तुम्हारा भविष्य

अन्धकारमग्न कर दिया। तुम जिसे अपनी ध्येयपूर्ति का मार्ग समभती हो, वह एक युवक की नादानी का परिणाम भी हो सकता है।"

"मैं जनमत को अपने हृदय में महत्वपूर्ण स्थान नहीं दे सकता पिताजी !....लोग अपने मतानुसार किसी भी चीज का खण्डन-मण्डन किया करते हैं.. परन्तु मेरा भविष्य मार्ग तो अलग है... मुझ पर इन आलोचनाओं की प्रतिक्रिया नहीं हो सकती...."

"तुम्हें कभी न कभी अपने विचारों में परिवर्तन करना ही पड़ेगा सुभाष !... " रायबहादुर दृढ़ स्वर में बोले।

"यह तो दुर्बलता होगी..." सुभाष ने कहा—"जो मनुष्य लोगों के व्यवहार से ऊबकर क्षण-प्रतिक्षण अपना मत बदलते रहते हैं, वे दुर्बल हैं...उनमें आत्मबल नहीं...."

"तुममें आत्मबल है सुभाष ?...." पिता ने पूछा।

"अवश्य ! आत्मबल के आधार पर ही तो आपसे इतनी बातें कर रहा हूं...." बोले सुभाष।

"तुम्हारी बातें मेरी समझ में नहीं आतीं सुभाष...." रायबहादुर ने कहा "पता नहीं, इस बीच जीवन में कभी समझ भी सकूंगा तुम्हारा अभिप्राय अथवा नहीं...."

"मेरा अभिप्राय अत्यन्त सरल है पिताजी !..."

"तुम्हारा लक्ष्य क्या है...."

"मेरा लक्ष्य आकाश है ...." सुभाष ने उत्तर दिया—"और मैं मार्ग में पड़ने वाले संकटों से नहीं घबरा सकता...."

"तुम देवता बनना चाहते हो सुभाष !..."

"नहीं पिताजी ?... " सुभाष बोले—"मैं मानव बनना चाहता हूँ... पूर्ण मानव !....और पूर्ण मानव बनने के लिए तीन बातों की आवश्यकता होती है...."

"कौन-कौन ?" रायबहादुर को उस युवक की बातों में आनन्द का अनुभव हो रहा था, इसीलिए उन्होंने प्रश्न किया।

"अतीत का गौरव, वर्तमान का मूर्तरूप और भविष्य का पैगम्बर !...." बोले सुभाष—"और अपने को पूर्ण मानव बनाने

के लिए मैं इन तीनों को प्राप्त करूँगा...."

"तुमने एक बात पर ध्यानपूर्वक सोचा है सुभाष !...."

"किस बात पर !...."

"यही कि पुत्र पर पिता का भी कुछ अधिकार होता है और वह पुत्र के सुनहले भविष्य का निर्माणकर्ता है...."

"........" चुप रहे सुभाष।

"तुम मेरे पुत्र हो और मैं तुम्हारा पिता...." रुककर राय बहादुर ने ध्यानपूर्वक सुभाष के चेहरे की ओर देखा। शायद अपनी बातों का प्रभाव जानने के लिये। तत्पश्चात कहने लगे—"तुम्हारा पूर्ण उत्तरदायित्व मुझ पर है....तुम्हारे भविष्य को अन्धकारमय बनाना मुझे अभीष्ट नहीं...."

"........" सुन रहे थे सुभाष, एकाग्रचित्त से।

"और न तो मैं यही चाहता हूँ कि तुम्हारी उत्कृष्ट अभिलाषाओं का दमन करूँ, क्योंकि मैं यह बात भलीभाँति जानता हूँ, अभिलाषाएँ सफलता की जननी हैं...." रुककर बोले रायबहादुर—"परन्तु क्या तुमने यह भी कभी सोचा है कि आजकल तुम्हारी जीवनधारा किस ओर प्रवाहित हो रही है ?...."

"जीवनधारा तो सदैव भिन्न-भिन्न मार्गों का अवलम्बन करती है...." सुभाष कहने लगे—"कभी कल्याण-मार्ग की ओर अग्रसर होती है तो कभी बहककर न जाने कहाँ पहुँचती है....भारतवर्ष का कौन अभागा युवक होगा, जो इन बातों का अनुभव करता हो। हम लोग धन्य हैं, जो हमारा जन्म इस शुभ युग में हुआ। हमें आगामी क्रान्ति के लिए अपने रक्त की आहुति देनी पड़ेगी...."

"तुम जाकर आराम करो...." ऊबकर बोले रायबहादुर जानकीनाथ। सुभाष की ऊल-जलूल बातें कभी उनकी समझ में नहीं आती थीं। दो वर्ष तक सुभाष कटक में बैठ रहे।

सन् १९१७ ई० में कलकत्ता विश्वविद्यालय के वाइसचांसलर सर आशुतोष मुखर्जी के अथक प्रयत्न से सुभाष को पुनः अध्ययन आरम्भ करने की आज्ञा मिली। स्काटिश चर्च कालेज में प्रविष्ट

हुए और प्रथम श्रेणी में दर्शन शास्त्र में बी० ए० पास किया।

उस समय सुभाष की अवस्था बाइस वर्ष की। सन् १६१६ में उन्होंने बी० ए० पास किया। बी० ए० पास कर चुकने के पश्चात् सुभाष बाबू ने एम० ए० में नाम लिखाया परन्तु उनके पिता रायबहादुर जानकीनाथ के विचार कुछ और ही थे। वे अपने पुत्र को आई० सी० एस० बनाना चाहते थे। सुभाष को विलायत भेजकर उनकी दुर्गम विचारधाराओं में शैथिल्यता लाना चाहते थे। उन्हें विश्वास था कि विलायत के वैभव में उनका पुत्र पूर्णतया खो जायेगा और अंग्रेजों के प्रति उसकी विद्रोह-भावना बहुत-कुछ शान्त हो जायगी। तीन महीने तक एम० ए० में पढ़ने के पश्चात् जब सुभाष घर आये तो उनके पिता ने कहा—"सुभाष मैं नहीं चाहता था कि तुम्हारी एम० ए० की पढ़ाई चलती रहे...."

"क्यों ?...." आश्चर्य हुआ सुभाष को। वे यह समझ ही न सके कि पिता का उनकी एम०ए० की पढ़ाई से एतराज क्यों है ?

"मेरे विचार से यह पढ़ाई तुम्हारे भविष्य के निर्माण में विशेष सहायक न होगी...." रायबहादुर जानकीनाथ बोस ने कहा।

"तब आपके विचार से मुझे क्या करना चाहिए ?...."

"तुम्हें विलायत जाकर आई० सी० एस० की परीक्षा देनी चाहिए...." रायबहादुर ने कहा।

चौंक पड़े सुभाष। समझ गये कि वे उन्हें परतंत्रता की बेड़ियों में पूर्णतया जकड़ देना चाहते हैं। वे जान गये कि उनके पिता यह चाहते हैं कि उनका बेटा गुलामी की जंजीरों में इस तरह गिरफ्तार हो जाय कि उसकी अन्तरात्मा मृतप्राय हो उठे और भविष्य में वह अपना सर उठाने लायक न रह जाय। सुभाष बोले नहीं। सोचते रहे न जाने क्या-क्या ?

"मैं तुम्हारा विचार जानना चाहता हूँ सुभाष !...." रायबहादुर ने पुनः गम्भीर स्वर में कहा।

"मेरा विचार आई० सी० एस० होने का नहीं है पिताजी।" सुभाष ने स्पष्ट उत्तर दे दिया।

"क्यों....आखिर क्यों ?"

"मुझे अपने देशवासियों पर शासन नहीं करना है...." सुभाष बोले—"मुझे उनकी सेवा में ही तृप्ति मिलेगी...."

"आई० सी० एस० होकर भी तो तुम जनता की सेवा कर सकते हो सुभाष !...." रायबहादुर ने कहा।

"अंग्रेज सरकार का नमक खाकर दिल-दिमाग बेकाबू हो जायेगा....आत्मा का हनन होने पर गुलामी के दिन ही अच्छे लगेंगे....और यही मैं नहीं चाहता..."

"तब तुम चाहते क्या हो...." पूछा रायबहादुर ने।

"मैं अपनी आत्मा को विद्रोही बनाना चाहता हूं...." बोले सुभाष—"गोरों का नमक खाकर अपनी आत्मा को असमय में ही पंगु नहीं करना चाहता मैं !"

"हूं ..." रायबहादुर ने गम्भीर नेत्रों से देखा सुभाष की ओर।

"यह क्यों नहीं कहते...." रायबहादुर पुनः बोले—"कि विलायत जाकर तुम अपनी बुद्धि द्वारा अंग्रेजों का सामना नहीं करना चाहते..." व्यङ्गपूर्वक हँस पड़े रायबहादुर। तीर-सा लगा सुभाष को अंग्रेजों के मुकाबले में अपना अपमान होता देखकर।

"मैंने सिविल सर्विस को घृणा की दृष्टि से देखा है पिताजी ?"

"क्यों न देखोगे ?...." रायबहादुर ने कहा—"अंगूर खट्टे हैं न ! अंग्रेजों से बाजी मार ले जाना हँसी-खेल भी तो नहीं !...."

"पिताजी !...." सुभाष ने कुछ कहना चाहा परन्तु रुक गये।

वे स्पष्ट अनुभव कर रहे थे कि उनके पिता ने सब ओर से निराश होकर यह रास्ता पकड़ा है और अपनी व्यङ्गात्मक बातों से उनका सोया हुआ अभिमान जगाना चाहते हैं।

"तुम विलायत इसलिए नहीं जाना चाहते कि तुम्हें अपनी योग्यता पर विश्वास नहीं है ...तुम सिविल सर्विस नहीं पढ़ना चाहते क्योंकि तुम्हें अपने अज्ञान का अनुभव हो रहा है...."

"पिताजी !...." सुभाष उठकर खड़े हो गये—"आप अंग्रेजों को इतना उच्च और भारतीयों को इतना हेय क्यों समझते हैं ?"

"चुप रहो सुभाष !" पिता ने अग्नि में आहुति दी—"रहने दो....सिविल सर्विस तुम्हारे लिए आकाश-कुसुम ही है।"

"क्या कहते हैं आप....पिताजी !...." सुभाष बोले—"मैं वह आकाश-कुसुम आपके चरणों पर लाकर रख दूँगा...."

"तुम्हारा तात्पर्य ?" समझते हुए भी पूछा रायबहादुर ने।

"मैं विलायत जाऊँगा और अंग्रेजों के मुकाबले में अपनी प्रतिभा दिखाऊँगा।" सुभाष गर्व से सिर ऊँचा किए हुए खड़े थे।

पिता हर्षित हो उठे थे।

"तुम कब जाना चाहते हो ?...." पूछा रायबहादुर ने।

"जल्द से जल्द !...."

"रहने दो, परसाल जाना...." रायबहादुर बोले—"तीन महीने बीत चुके हैं, शायद सफल न हो सको परीक्षा में..."

"सफलता तो मेरी दासी है पिताजी !...." सुभाष ने कहा।

और थोड़े दिनों बाद। वह स्वदेशाभिमानी युवक विलायत में था। हृदय में अंग्रेजों को बुद्धि द्वारा हराने की तीव्र लालसा थी। आँखों में सदैव घृणा लहराती थी। अन्त में इण्डियन सिविल सर्विस की जब परीक्षा हुई तो न केवल सुभाष सम्मान उत्तीर्ण हुए, बल्कि सफल छात्रों में उनका चतुर्थ स्थान रहा।

पिता ने जब सुना तो उनको अपने पुत्र की सफलता पर महान गर्व हुआ। वे समझ गये कि सुभाष अब ठीक हो गये हैं।

× × ×

जिस मनुष्य के हृदय में मातृभूमि की दासता देखकर करुण चीत्कारें न उठें, वह नर पशु के समान जीवित ही मृतक है।

हमारी भारत भूमि के कितने ही पशु जिनको जगतनियन्ता ने मनुष्य का शरीर दान किया है और जिनका शरीर इसी पवित्र भूमि पर लोट-लोट कर परिपुष्ट हुआ है—आज आई० सी० एस० सत्ता के स्तम्भ बने बैठे हैं।

सरकार का नमक खाकर इन वफादारों ने 'सर' रायबहादुर,

राइट आनरेबुल आदि पदवियाँ प्राप्त की हैं और भारत माता के मुँह पर अपने बर्बरतापूर्ण कृत्यों द्वारा असंख्यों बार तमाचे मारे हैं। इन्होंने स्वतंत्रता के लिए तड़पते हुए परवानों के खून से अपने हाथ रँगे हैं—अपने दलित देशवासियों पर जुल्म के आरे चला-चला कर अपनी नौकरशाही प्रदर्शित की है।

सन् १९१९-२० के दिन जैसे तूफान के दिन थे।

युगों से सुप्त भारतवासियों के जागरण का उद्बोधन था वह। पञ्जाब में नरघातक ओडायर ने जो जुल्म ढाया था, उसका घाव अब भी ताजा था, जिस पर मांगेटू ने लार्ड चेम्सफोर्ड और ओडायर की प्रसंशा करके देशवासियों को विक्षुब्ध कर दिया था।

प्रथम महायुद्ध की समाप्ति पर मित्रराष्ट्रों ने बार्साई में खूब उत्सव मनाया था और भारत की स्वतन्त्रता की माँग का उत्तर उपेक्षा द्वारा दिया था। ब्रिटिश शासन सत्ता की निर्ममता से समग्र भारत दुखी था। रौलट बिल के पास होते ही समग्र राष्ट्र त्राहि-त्राहि कर उठा। ठीक उसी समय पूज्य महात्मा गांधी ने भारत के कण-कण में जागृति की अग्नि प्रज्वलित कर दी। अहिंसा और हिंसा! देवत्व और राक्षसत्व का प्रथम युद्ध था वह।

१९२० में नागपुर में कांग्रेस का पैंतीसवां अधिवेशन हुआ।

यह अधिवेशन लोकमान्य तिलक के सभापतित्व में होना निश्चित हुआ था परन्तु बीच ही में उनका स्वर्गवास हो जाने से श्री विजया राघवाचार्य चक्रवर्ती सभापति बनाये गए।

इस अधिवेशन में असहयोग प्रस्ताव पास हुआ। महात्मा गांधी द्वारा बनाया हुआ कांग्रेस का नया विधान स्वीकृत हुआ और १४,५०३ प्रतिनिधियों ने कांग्रेस का ध्येय निश्चित किया—"सभी उचित और शान्तिपूर्ण उपायों से स्वराज्य प्राप्त करना!"

थोड़े ही दिनों बाद देश भर में असहयोग की लहर दौड़ गई। लोगों ने सरकारी पदवियाँ लौटा दीं। वकीलों ने कचहरी जाना छोड़ दिया। विद्यार्थियों ने स्कूल और कालेज जाना बन्द कर दिया। ब्रिटिश न्यायालय को धूल-धूसरित करने के लिए देश भर

में पञ्चायतें बन गईं। ऐसे समय भला कौन देशभक्त स्थिर रह सकता था। इङ्गलैण्ड में रहते हुए भी सुभाष अपने देश का अपमान प्रत्यक्ष देख रहे थे। उनके समक्ष, देशबन्धु द्वारा प्रेषित युवकों के नाम पर अपील रह-रह कर नृत्य कर उठती थी।

"युवक ही तो देश के प्राण हैं!...." रह-रह कर उनकी आत्मा चीत्कार कर उठती थी। अन्त में उन्होंने निश्चय कर लिया—"अपनी आत्मा का हनन करने पर मैं अपने ध्येय से च्युत हो जाऊँगा मैं आजादी और गुलामी के मुकाबले में आजादी को ही पसन्द करूँगा...." दृढ़ निश्चय करने के बाद उन्होंने एक ही ठोंकर में आई० सी० एस० का पद दूर भगा दिया।

यद्यपि भारत मंत्री ने सुभाष को बहुत समझाया परन्तु आजादी के उस दीवाने ने सर्विस से त्यागपत्र दे ही दिया।

सन् १९२१ में केम्ब्रिज यूनिवर्सिटी से दर्शन शास्त्र से बी० ए० की उपाधि लेकर सुभाष भारत लौटे। अभागे भारत ने अपने इस अनोखे बीर का स्वागत अपने आँसुओं द्वारा किया। जननी जन्मभूमि को तड़पता हुआ देखकर वीर हृदय सुभाष का रोम-रोम विप्लवी हो उठा। भारत में आते ही सुभाष देशबन्धु चितरंजन दास से मिले। देशबन्धु ने सुभाष को स्व-स्थापित एक राष्ट्रीय विद्यालय के आचार्य का कार्यभार सौंपा। १९२१ में बेजबाड़ा में भारतीय कांग्रेस कमेटी ने असहयोग को नवीन ढंग से आयोजित किया। यह निश्चय हुआ कि एक करोड़ राष्ट्रीय स्वयंसेवक बनाये जायँ, तिलक स्वराज्य कोष के लिए एक करोड़ रुपये एकत्र किए जायँ और बीस लाख चरखे चलाए जायँ।

जब देशबन्धु चितरंजन दास कलकत्ता लौट कर आए तो वे अगम उत्साह के साथ कार्य में तल्लीन हो गये। देखते-देखते कई सहस्र स्वयंसेवक एकत्रित हो गए। स्वयंसेवकों को सैनिक वर्दियाँ दी गईं। सरकार भी सशंकित हो उठी युवकों के इस संगठन से।

स्वयंसेवकों की शक्ति दिन-प्रतिदिन बढ़ती गई।

अब देशबन्धु को एक ऐसे सेनापति की जरूरत थी, जो स्वयं-

को आदर्श रीति से संचालित कर सकें।

देशबन्धु का ध्यान सुभाष की ओर गया और सुभाष स्वयंसेवकों के सेनापति नियुक्त हुए। सरकार इस नए सेनापति से घबरा उठी। उसने सोचा कि यदि इस विद्रोही सेनापति को उभरने का मौका दिया गया तो आगे चलकर घातक सिद्ध होगा, अतः उसने सुभाष को दिसम्बर १९२१ में क्रिमिनल-लॉ एमेंडमेंट एक्ट के अनुसार गिरफ्तार करके अलीपुर जेल में बन्द कर दिया।

भारत का वह दुर्दमनीय सिंह, जीवन में पहली बार सीखचों के अन्दर जाकर दहाड़ उठा। उसी समय देशबन्धु चितरंजन दास भी बन्दी बना लिए गये। न्यायालय में सुभाष पर मुकदमा चला। न्यायाधीश ने उन्हें ६ महीने की सजा दी।

सजा सुनकर सुभाष हँस पड़े। बोले—"क्या मैंने किसी की मुर्गी चुराई है जो मुझे इतनी कम सजा दे रहे हैं।"

जेल में सुभाष का जीवन आनन्द के साथ व्यतीत हुआ। देशबन्धु ने सुभाष से नीतिशास्त्र तथा वेदान्त की शिक्षा ली, कठोर कारावास की दीवारें, उन वीरों के दर्शन पाकर पवित्र हो गईं।

सुभाष जब जेल से छूटे तो उनके कानों में बाढ़ पीड़ितों की करुण ध्वनि गूंज उठी। अक्टूबर सन् १९२२ में उत्तर बङ्गाल में भीषण बाढ़ आई, जिससे जनता त्राहि-त्राहि कर उठी। कितने ही ग्राम जलमग्न हो गये। कितने ही प्राणियों ने अतल जलराशि में डूबकर अपने प्राण गँवाए। तुरन्त ही युवकों ने एक बाढ़-पीड़ित कमेटी की स्थापना की। सुभाष कमेटी के अध्यक्ष बने। जब सुभाष बाढ़-पीड़ित क्षेत्रों का निरीक्षण करने आये तो अपने देशवासियों की दुर्दशा देखकर रो पड़े। बाढ़ की भयंकरता दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही थी। सुभाष तथा उनके सहकारी, बड़ी-बड़ी नौकाओं पर घूम-घूमकर लोगों की प्राण-रक्षा और नंगों तथा भूखों को वस्त्र एवं अन्न की व्यवस्था किया करते थे। नित्य की भाँति सुभाष एक बड़ी-सी नौका पर घूम रहे थे। उन्होंने पानी में डूबा हुआ एक मकान देखा। उसके मुंडेर पर खड़ी हुई एक पाँच साल की

बालिका चिल्ला रही थी सहायतार्थ और बाढ़ की भीषण लहरें मकान को अपने पेट में खींचे लिए जा रही थी।

सुभाष ने वह दृश्य देखा। माँझी को आज्ञा दी कि वह नाव उस मकान के पास ले चले। तुरन्त ही नाव वहाँ पहुँच गई। सुभाष ने आगे बढ़कर उस बालिका को अपनी गोद में उठा लिया।

अगर पाँच मिनट की देर हो जाती तो वह उस मकान के मुँडेर पर से चिल्लाती-चिल्लाती, मकान के साथ ही अगम जल-राशि में विलीन हो जाती। वह बालिका फूट-फूट कर रो रही थी। सुभाष ने उसे धीरज बँधाना चाहा तो वह जोरों से रो पड़ी।

"मेरा भैया!...." रोते-रोते बोली वह—"देवता! तुम मेरे भैया को ला दो....बिना उसके मैं बचकर क्या करूँगी?...."

"तुम्हारा भैया!" चौंक पड़े सुभाष—"कहाँ है तुम्हारा भैया?"

"वह अभी थोड़ी देर पहले यहाँ डूब चुका है..." लड़की ने पानी की ओर इशारा करके कहा—"वह मुझे छोड़कर चला गया....मेरे अच्छे देवता! तुम उसे वापस ला दो...." बालिका सुभाष का हाथ पकड़ कर करुण स्वर में रोती रही।

सुभाष की आँखों में करुणा उतर आई। वे कुरता उतार कर पानी में कूदने को हुए कि माझी ने उनका हाथ पकड़ लिया। कहा—"नीचे न कूदो बाबू! पानी न जाने कितना गहरा है...."

"यह एक बालक के जीवन का प्रश्न है...." सुभाष बोले—"इसके लिए बड़े से बड़ा खतरा उठाया जा सकता है..."

"परन्तु यहाँ चारों तरफ मकान ही मकान डूबे पड़े हैं....यदि आपने डुबकी लगाई और पानी के बहाव से किसी मकान के अन्दर चले गये तो निकल न सकेंगे..." सुभाष के एक साथी ने कहा।

"मुझे परवाह नहीं...." सुभाष दृढ़ स्वर में बोले।

और धम्म से अगम जलराशि में कूद पड़े वे। जिस स्थान पर बालिका ने अपने भैया का डूबना बताया, उसी स्थान पर डुबकी लगाई उन्होंने। साँस रोककर उनके साथी उनका अगम साहस देख रहे थे और उनके शीघ्र उतराने की प्रतीक्षा कर रहे थे।

सुभाष न उतराये तो लोगों की चिन्ता बढ़ी परन्तु किसी का भी साहस पानी में कूदने का नहीं पड़ रहा था। माँझी ने भी उतरने से इनकार कर दिया। इतने में पानी के ऊपर बुलबुलाहट हुई और सुभाष उतराये परन्तु वे सफल नहीं हुए।

"कुछ पता न लगा...." बोले वे।

वह बालिका और जोरों से रोने लगी।

सुभाष का कलेजा चीर दिया उस बालिका के रुदन स्वर ने।

"रोओ मत ..." सुभाष ने कहा—"मैं फिर देखता हूँ।"

"अब आप मत जाइये...." उनके साथी कहते ही रह गए परन्तु उन्होंने पुनः डुबकी लगा दी।

इस बार पहले से अधिक देर लगी परन्तु सुभाष सफलीभूत होकर लौटे। उन्होंने बालक के शरीर को नाव में लिटा दिया।

बालिका बालक के शरीर पर गिरकर पछाड़ें खाने लगी। बालक की अवस्था आठ-दस साल की रही होगी। सुभाष ने बालक की परीक्षा की तो पता चला कि अभी जीवित है। तुरन्त उसका प्रारम्भिक उपचार किया गया परन्तु उसे होश न आ सका।

सुभाष बालक और बालिका को अपने घर लाये।

आठ दिन बाद वह बालक पूर्ण स्वस्थ हो गया।

जाते समय उसने सुभाष का पैर पकड़ लिया और बोला—"देवता! तुमने मेरे शरीर की रक्षा की है, यदि कभी यह शरीर त्याग कर भी तुम्हारे लिए कुछ कर सका तो पीछे न हटूँगा।"

सुभाष ने उस बालक के छोटे मुख से निकले हुए ये महान शब्द सुने और कुछ सोचने लगे।

"तुम्हारा नाम क्या है बच्चे?...." पूछा सुभाष ने।

"मेरा नाम बसन्तकुमार मल्लिक है देवता!" उसने कहा।

"और तुम्हारी बहन का?...." सुभाष ने पुनः पूछा।

"इसका नाम नीरा मल्लिक है...." बालक ने उत्तर दिया।

"अब कहाँ जाओगे तुम लोग?...."

"जहाँ भाग्य ले जाय देवता!...." बालक बोला—"हम

गरीब हैं, जहाँ ठौर मिला वहीं पड़े रहेंगे...."

"भिक्षा माँगने का तुम्हारा विचार है क्या ?...."

"नहीं-नहीं " बालक तेजी के साथ बोला—"भिक्षाटन से बढ़कर घृणित कार्य इस संसार में कोई है ही नहीं...."

चुपचाप सुन रहे थे सुभाष उस बालक की बातें...

"दूसरों के सामने हाथ पसार कर मैं अपनी निर्बलता को प्रोत्साहन न दूँगा...और आपने जो अतुलनीय भिक्षा हमें दे दी है देवता ! उसके रहते मुझे किसी अन्य की आवश्यकता न पड़ेगी।"

"मैंने तुम्हें कौन-सी भिक्षा दी है बसन्त !"

"आपने मुझे जीवन-दान दिया है...." बालक कृतज्ञतापूर्ण वाणी में बोला– 'यह शरीर रहेगा तो अपना पेट पाल ही लेंगे।"

कहकर वह अपनी बहन का हाथ पकड़े चल पड़ा, सुभाष उसे तब तक देखते रहे, जब तक वह आँखों से ओझल नहीं हो गया।

•

जिस चुनाव संग्राम के लिए कांग्रेस जोरदार तैयारी करती रही उसी का उसने सन् १६२२ में तीव्र रूप से खण्डन किया था।

उस साल कांग्रेस का सैंतीसवाँ अधिवेशन गया में हुआ था। सभापति थे देशबन्धु चितरंजन दास। उनकी यह प्रबल धारणा थी कि सरकार को पराजित करने के लिए यह अमोघ अस्त्र है— कौंसिलों में अपने प्रतिनिधि प्रवेश कराये जायँ। परन्तु उनके इस प्रस्ताव का बहुमत से खण्डन हुआ था, यद्यपि देशबन्धु को स्वर्गीय पं० मोतीलाल नेहरू तथा सुभाषचन्द्र बोस का अनुमोदन प्राप्त था।

इस खण्डन का परिणाम आपसी फूट का सृजन कर बैठा।

कांग्रेस के अन्दर कौंसिल प्रवेश की समर्थक 'स्वराज्य पार्टी' का जन्म हुआ। सुभाष बाबू ने स्वराज्य पार्टी का जोरदार शब्दों में समर्थन किया। गया कांग्रेस से लौटने पर सुभाष बाबू चुनाव की अग्रिम लड़ाई के लिए जी-जान से तैयारी करने में लग गये।

सितम्बर १६२३ ई० में स्वराज्य पार्टी का प्रमुख पत्र

'फारवर्ड' निकला और उसके सम्पादक सुभाष बाबू बने।

सुभाष बाबू ने अपनी जोरदार टिप्पणियों तथा लेखों द्वारा देश का ध्यान अपने महान उद्देश्य की ओर खींचना प्रारंभ किया।

कुछ ने भीतर ही भीतर उनका समर्थन किया और बहुतों ने उन्हें 'पथभ्रान्त' की उपाधि दे डाली। कांग्रेस की फूट का पौधा उत्तरोत्तर बढ़ता गया। आपस के मनोमालिन्य तथा विचार वैमनस्य ने भयंकर रूप खड़ा कर दिया। समग्र वातावरण ही विषाक्त हो उठा। सुभाष बाबू के प्रचार को रोकने के लिए बम्बई में अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस कमेटी की एक बैठक हुई। सुभाष बाबू भी इस कमेटी के अवसर पर उपस्थित थे। उन्होंने पुनः अपनी न्यायसंगत विचारधाराओं की परिपुष्टि की।

उन्होंने कहा—"यदि कुछ अल्पसंख्यक भले ही उनका दृष्टिकोण कांग्रेस की वर्तमान नीति से भिन्न हो, पूर्ण लगन एवं ईमानदारी के साथ स्वतन्त्रता प्राप्ति का प्रयत्न करें तो उन्हें ऐसा करने का न्यायप्रदत्त अधिकार है....बंगाल की राजनीतिक परिस्थिति इस समय डावाँडोल हो रही है। टेनेन्सी तथा एजूकेशन बिलों के विरुद्ध जेहाद करने की पूर्ण आवश्यकता है....टेनेन्सी बिल जहाँ हमारे गरीब काश्तकारों पर प्रहार करता है, वहीं एजूकेशन बिल हमारी शिक्षा पर कुप्रभाव डालनेवाला है ...हमारा दृढ़ विश्वास है कि हम इन कौंसिलों में जाकर अपने गरीब देशवासियों की सेवा करने का अमूल्य अवसर प्राप्त कर सकेंगे और गोराशाही के मार्ग में बाधक हो सकेंगे...."

कुछ ने सुभाष बाबू की इन बातों को सुना और कुछ ने सुना भी नहीं....और जिन्होंने सुना, उन्होंने उसे अनर्गल प्रलाप समझ कर, इस कान से सुना और उस कान से निकाल दिया।

सन् १९२४ ई० में कलकत्ता के कार्पोरेशन का चुनाव समीप आया। देशबन्धु ने सोचा कि नागरिकों की सेवा के निमित्त हमें कारपोरेशन में भी प्रवेश करना चाहिए। अतः कांग्रेस के सतत विरोध करते रहने पर भी, स्वराज्य पार्टी ने अपने उम्मीदवार

खड़े कर दिए। चुनाव में स्वराज्य पार्टी का प्रबल बहुमत रहा। ७५ में से ५५ स्वराज्य पार्टी के सदस्य कलकत्ता कारपोरेशन में प्रविष्ट हो गये। देशबन्धु चितरंजन दास मेयर चुने गये और सुभाष चन्द बोस एक्जीक्यूटिव आफिसर बने। सुभाष बाबू ने अपने सतत प्रयत्न तथा अनोखी कर्तव्यनिष्ठा द्वारा शीघ्र ही अपने को लोकप्रिय बना लिया। कलकत्ता को आदर्श नगर बनाने के लिए इन सुधारों का आयोजन हुआ — [१] निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा। [२] गरीबों का मुफ्त इलाज। [३] शुद्ध तथा सस्ते दूध व भोजन की व्यवस्था। [४] छने तथा बिना छने पानी की व्यवस्था। [५] घनी बस्तियों में स्वच्छता का प्रबन्ध। [६] निर्धनों के लिए घरों की व्यवस्था। [७] मुफस्सिल क्षेत्रों की उन्नति। [८] आयात तथा निर्यात साधनों की सहूलियत। [९] कम खर्च में कारपोरेशन की व्यवस्था।

देशबन्धु तथा सुभाष बाबू के सतत प्रयत्न से कलकत्ता कारपोरेशन की आशातीत उन्नति हुई, जिससे स्वराज्य पार्टी की प्रबल शत्रु गोरी सरकार को भी उनके कार्यों की प्रसंशा करनी पड़ी।

कारपोरेशन का शासन-भार हाथ में लेते ही जो सबसे बड़ी कठिनाई सुभाष बाबू के मार्ग में आई वह थी भंगियों के हड़ताल करने की धमकी। सुभाष बाबू ने देखा कि यदि भंगियों ने हड़ताल प्रारम्भ कर दी तो सरकार को उन पर छींटे उड़ाने का अवसर मिल जायगा। इस बात ने सुभाष को चिन्तित कर दिया, परन्तु उन्होंने अत्यन्त धैर्य तथा दक्षतापूर्वक उस हड़ताल का निराकरण किया और भंगियों की माँगें पूर्ण की। सुभाष बाबू ने कारपोरेशन का शासन-कार्य विशुद्ध राष्ट्रीय नीति द्वारा चलाना प्रारम्भ किया।

एक बार कारपोरेशन में नौकरी के लिए ३३ स्थान खाली हुये। सुभाष बाबू ने ३३ में से २५ स्थानों पर मुसलमानों की नियुक्ति कर दी। वह नियुक्ति राष्ट्रीय आधार पर हुई थी। परन्तु बहुत से सदस्यों को सुभाष बाबू का यह कार्य साम्प्रदायिकतापूर्ण लगा। कारपोरेशन की आगामी बैठक में सुभाष बाबू से यह पूछा गया कि मुसलमानों की यह तरफदारी क्यों की गई जबकि हिन्दुओं

को ज्यादा स्थान मिलने चाहिए थे, तो सुभाष बाबू ने कहा—"ये नियुक्तियाँ मैंने की है और इसका उत्तरदायित्व मुझ पर है। हमें ऐसे आदमी चाहिए, जो योग्य हों तथा कर्तव्यपरायण हो....मैं विश्वविद्यालयों की उपाधियों को महानता नहीं देता....यदि कभी अल्प-संख्यक मुसलमान, ईसाई तथा अछूत अधिक संख्या में कारपोरेशन में लिए जायँ तो इसमें अन्याय कहाँ है....अब तक तो कारपोरेशन में हिन्दुओं की ही प्रधानता रही है...."

१९२४ का अक्टूबर! लार्ड लिटन ने अपना दमन-चक्र चलाया। उसने बङ्गाल आर्डिनेंस एक्ट निकाला। जिसका समस्त बङ्गाल में पूर्ण रूप से विरोध हुआ। देशबन्धु चितरंजनदास तथा सुभाषचन्द बोस विरोधियों के अग्रणी थे। देखते-देखते अस्सी युवक जेल की कठोर दीवारों में बन्द कर दिये गये। सुभाषचन्द बोस भी उनमें थे। उनकी दूसरी जेलयात्रा थी यह। सुभाषबाबू की जेल-यात्रा से देशबन्धु को अत्यन्त दुःख एवं क्षोभ हुआ और उनका यही दुःख और क्षोभ उनके धधकते मुख से ज्वाला की लपटें बन फूट पड़ा—"अब वह समय आ गया जब हमें सरकार के हिंसात्मक कार्यों की तीव्र निन्दा करनी पड़ती है। सरकार ने अभागे लोगों पर एक ऐसे कानून का बोझ लादा है, जो सर्वथा अनुचित एवं घृणित है। इस काले कानून ने हमारे स्वत्व तथा अधिकारों की हत्या की है। किसी अपराधी को बिना यह बताये कि उसका अपराध क्या है, उसे चाहे जितने दिनों तक जेल में बन्द रखना, कहाँ का न्याय है....कहाँ का कानून है? मुझे पुनः कहना पड़ता पड़ता है कि हमारी सरकार निकम्मी है और हिंसात्मक उपायों द्वारा जलील शासन करती है...यदि मातृभूमि की सेवा करना, देशभक्त होना कानून की दृष्टि में अपराध है तो सुभाष के साथ मैं भी अपराधी हूँ, भारत का बच्चा-बच्चा, कण-कण अपराधी है...."

२१ अक्टूबर सन् १९२४ ई० को सुभाष बाबू बन्दी बनाये गये थे। कुछ दिनों तक वे अलीपुर जेल में रखे गये, इसके बाद उन्हें

बरहमपुर जेल में भेद दिया गया। कई महीनों तक सुभाष बाबू बरहमपुर जेल में रहे। इसके बाद उन्हें माडले जेल में भेजना निश्चित हुआ। रास्ते में कलकत्ते के एक थाने में सुभाष बाबू को एक रात के लिए चोर और बदमाशों के साथ रखा गया। इसी थाने में सुभाष बाबू की भेंट उस बालक बसन्तकुमार मल्लिक से हुई जिसे एक दिन उन्होंने बाढ़ की भयानक गोद से निकाल कर जीवन-दान दिया था। सुभाष को देखकर वह बालक निकट दौड़ा आया —"देवता ! तुम और यहाँ !...." उत्सुकतावश उसने पूछा।

"हाँ !...." सुभाष ने उत्तर दिया —"तुम यहाँ कब से हो ?"

"अभी कल ही तो पुलिस मुझे यहाँ पकड़ लाई है...."

"क्या अपराध किया है तुमने ..."

"चोरी...." बसन्तकुमार ने कहा।

चौंककर सुभाष ने उस भोले बालक के मुख की ओर देखा —"चोरी ?....तुमने चोरी की है बालक...."

"चोरी की नहीं है " बसन्त ने कहा "मगर चोरी का अपराध लगाया गया है मुझ पर। जिस सेठ के यहाँ मैं नोकर था, उसके कई हजार के गहने चोरी चले गये। पुलिस को मुझ पर सन्देह हुआ और मैं पकड़ लिया गया।'

"........" न जाने क्या सोचते रहे सुभाष।

"ये पुलिस वाले कुत्ते हैं देवता ! ..." बालक ने दाँत पीसकर कहा —"इन्हें ठोकर मारने वाला क्या अब तक पैदा नहीं हुआ ?"

सुभाष ने कुछ उत्तर न दिया। देर तक सन्नाटा रहा।

"देवता !" बालक ने शङ्कित भाव से धीरे से पुकारा।

"क्या है बसन्त "

"तुमने भी चोरी की है क्या ?...मेरा मतलब है कि जैसी चोरी मैंने की है यानी झूठमूठ की चोरी....' बालक ने पूछा।

"नहीं बसन्त ! मैंने चोरी नहीं की है ..." सुभाष ने कहा।

"वही तो मैं भी समझता था देवता ! तुम चोरी नहीं कर सकते....तो पुलिसवालों ने तुम्हें क्यों पकड़ रखा है ! .."

"जबरदस्ती ! ..." सुभाष ने कहा—"पुलिसवाले और उनकी माँ गोरी सरकार दोनों चोर हैं और सोनाजोर भी...."

"तुम्हारी क्या चीज चुराई है उन्होंने देवता !..."

"आजादी ..." सुभाष ने कहा।

पता नहीं बालक ने समझा या नहीं।

दूसरे दिन सुभाष माडले जेल रवाना कर दिये गये।

× × ×

सुभाष बाबू जब माडले जेल पहुँचे तो वहाँ की अस्वास्थ्यकर दशा देखकर उन्हें कुछ चिन्ता हुई। परन्तु भारत का वह शेर, आजादी के प्रथम आह्वान की प्रतीक्षा में पड़ा रहा उस भयानक कारागार में। वह दुःख में भी सुख का अनुभव कर रहा था। यातनायें उसने हँसकर सहन की—शूल भी उसके लिए फूल बन गये।

माडले जेल की पवित्र दीवारें, जिन्होंने एक दिन लोकमान्य तिलक तथा लाजपतराय को अपनी गोद में शरण दिया था, दीवाने सुभाष के लिए आकर्षण बन गईं। सुभाष का स्वास्थ्य क्षीण होता गया परन्तु उनकी अन्तरात्मा सदैव स्वतन्त्रता की पुकार सुनने में तल्लीन रही। कभी-कभी उनके कानों में आजादी के दीवाने किसी शायर की पंक्तियाँ गूंज उठती थीं—

सुभाष बाबू की अवस्था दिन-प्रतिदिन बिगड़ती ही गई। उन्हें ज्वर आने लगा। वजन चालीस पौंड घट गया। राज्यक्ष्मा के स्पष्ट लक्षण दृष्टिगोचर होने लगे। परन्तु जेल अधिकारियों के यातनापूर्ण कार्य उत्तरोत्तर बढ़ते ही गये। बन्दियों की आत्मा कुचलने के लिए सरकार के इन वफादार कुत्तों ने कुछ उठा न रखा।

दुर्गापूजा का अवसर निकट था। उस समय बंगाली समाज उत्साह तथा आनन्द के साथ जगत्जननी मातेश्वरी शक्ति का पूजन करने के लिए तैयारी करने में संलग्न था। इस पवित्र अवसर के लिए सुभाष बाबू ने जेल में अधिकारियों से कुछ रुपयों की स्वीकृति माँगी, ताकि भक्ति सहित अपना पर्व मना सकें। मगर सरकार के

टुकड़ों पर जीवित रहने वाले उन पशुओं ने सुभाष की उचित माँग ठुकरा दी। विक्षुब्ध तथा अपमानित सुभाष ने आमरण अनशन प्रारम्भ कर दिया। २० फरवरी १६२६ से सुभाष का यह अनशन आरम्भ हुआ, जिससे देश का कोना-कोना हिल उठा।

पत्र सम्पादकों ने आलोचनात्मक टिप्पणियाँ लिख-लिख कर सरकार को खूब लथेड़ा। कलकत्ता तथा रंगून में सभायें हुईं। रोषपूर्ण भाषण दिये गये। कलकत्ते के सारे शहर में व्यापक हड़-ताल रही। केन्द्रीय असेम्बली में, सुभाष के अनशन पर विचार करके काम रोको प्रस्ताव रखा गया।

प्रस्ताव पर बोलते हुए श्री टी० सी० गोस्वामी ने कहा—"अनशन का केवल यही कारण नहीं है कि बन्दियों को दुर्गापूजा की सुविधायें नहीं दी गईं, वरन् इस माँग के साथ-साथ उनकी कई और माँगें ठुकराई गई थीं। श्री सुभाषचन्द्र बोस का जीवन खतरे में है। यदि उनकी मृत्यु हो जाय तो सरकार तथा गृहसचिव भले ही सन्तोष की ठण्ढी साँस ले लें, लेकिन बंगाल तथा सम्पूर्ण भारत की जो महान क्षति होगी, उसकी पूर्ति कौन करेगा? वर्तमान समय में सुभाष जैसे चरित्रशाली नवयुवक कितने हैं?"

लाला लाजपतराय ने अपने वक्तव्य में कहा था—"यदि सुभाष जैसे चरित्रवान तथा लोकप्रिय व्यक्ति को अनशन करने के लिए विवश होना पड़ा है तो स्थिति कितनी भयंकर है, इस बात का अनुमान सरलता से लगाया जा सकता है....मैं स्वयं माडले जेल में ६ महीने तक रह चुका हूँ। मुझे कोई समाचार-पत्र नहीं मिलता था और एकदम सड़ी तरकारी खाने को दी गई थी...."

श्री गोस्वामी का कामरोको प्रस्ताव बहुमत से पास हो गया। इसी बीच सुभाष बाबू को तार भेजकर देश के बड़े-बड़े नेताओं ने अनशन त्याग देने की प्रार्थना की। ३ मार्च सन् १६२६ को कल-कत्ते में श्री निवास शास्त्री ने कहा था—"सुभाष बाबू के त्याग का प्रशंसा करना सूरज को दीपक दिखाना है। मुझे उनके साहस को गाथा एक साहसपूर्ण थता करुणाजनक काव्य की तरह मालूम

"जबरदस्ती ! ..." सुभाष ने कहा — "पुलिसवाले और उनकी माँ गोरी सरकार दोनों चोर हैं और सोनाजोर भी...."

"तुम्हारी क्या चीज चुराई है उन्होंने देवता !..."

"आजादी ..." सुभाष ने कहा ।

पता नहीं बालक ने समझा या नहीं ।

दूसरे दिन सुभाष माडले जेल रवाना कर दिये गये ।

× × ×

सुभाष बाबू जब माडले जेल पहुँचे तो वहाँ की अस्वास्थ्यकर दशा देखकर उन्हें कुछ चिन्ता हुई । परन्तु भारत का वह शेर, आजादी के प्रथम आह्वान की प्रतीक्षा में पड़ा रहा उस भयानक कारागार में । वह दुःख में भी सुख का अनुभव कर रहा था । यातनायें उसने हँसकर सहन की—शूल भी उसके लिए फूल बन गये ।

माडले जेल की पवित्र दीवारें, जिन्होंने एक दिन लोकमान्य तिलक तथा लाजपतराय को अपनी गोद में शरण दिया था, दीवाने सुभाष के लिए आकर्षण बन गईं । सुभाष का स्वास्थ्य क्षीण होता गया परन्तु उनकी अन्तरात्मा सदैव स्वतन्त्रता की पुकार सुनने में तल्लीन रही । कभी-कभी उनके कानों में आजादी के दीवाने किसी शायर की पंक्तियाँ गूँज उठती थीं—

सुभाष बाबू की अवस्था दिन-प्रतिदिन बिगड़ती ही गई । उन्हें ज्वर आने लगा । वजन चालीस पौंड घट गया । राज्यक्ष्मा के स्पष्ट लक्षण दृष्टिगोचर होने लगे । परन्तु जेल अधिकारियों के यातनापूर्ण कार्य उत्तरोत्तर बढ़ते ही गये । बन्दियों की आत्मा कुचलने के लिए सरकार के इन वफादार कुत्तों ने कुछ उठा न रखा ।

दुर्गापूजा का अवसर निकट था । उस समय बंगाली समाज उत्साह तथा आनन्द के साथ जगत्जननी मातेश्वरी शक्ति का पूजन करने के लिए तैयारी करने में संलग्न था । इस पवित्र अवसर के लिए सुभाष बाबू ने जेल में अधिकारियों से कुछ रुपयों की स्वीकृति माँगी, ताकि भक्ति सहित अपना पर्व मना सकें । मगर सरकार के

टुकड़ों पर जीवित रहने वाले उन पशुओं ने सुभाष की उचित माँग ठुकरा दी। विक्षुब्ध तथा अपमानित सुभाष ने आमरण अनशन प्रारम्भ कर दिया। २० फरवरी १६२६ से सुभाष का यह अनशन आरम्भ हुआ, जिससे देश का कोना-कोना हिल उठा।

पत्र सम्पादकों ने आलोचनात्मक टिप्पणियाँ लिख-लिख कर सरकार को खूब लथेड़ा। कलकत्ता तथा रंगून में सभायें हुईं। रोषपूर्ण भाषण दिये गये। कलकत्ते के सारे शहर में व्यापक हड़ताल रही। केन्द्रीय असेम्बली में, सुभाष के अनशन पर विचार करके काम रोको प्रस्ताव रखा गया।

प्रस्ताव पर बोलते हुए श्री टी० सी० गोस्वामी ने कहा—"अनशन का केवल यही कारण नहीं है कि बन्दियों को दुर्गापूजा की सुविधायें नहीं दी गईं, वरन् इस माँग के साथ-साथ उनकी कई और माँगें ठुकराई गई थीं। श्री सुभाषचन्द्र बोस का जीवन खतरे में है। यदि उनकी मृत्यु हो जाय तो सरकार तथा गृहसचिव भले ही सन्तोष की ठण्ढी साँस ले लें, लेकिन बंगाल तथा सम्पूर्ण भारत की जो महान घात होगी, उसकी पूर्ति कौन करेगा ? वर्तमान समय में सुभाष जैसे चरित्रशाली नवयुवक कितने हैं ?"

लाला लाजपतराय ने अपने वक्तव्य में कहा था—"यदि सुभाष जैसे चरित्रवान तथा लोकप्रिय व्यक्ति को अनशन करने के लिए विवश होना पड़ा है तो स्थिति कितनी भयंकर है, इस बात का अनुमान सरलता से लगाया जा सकता है....मैं स्वयं माडले जेल में ६ महीने तक रह चुका हूँ। मुझे कोई समाचार-पत्र नहीं मिलता था और एकदम सड़ी तरकारी खाने को दी गई थी...."

श्री गोस्वामी का कामरोको प्रस्ताव बहुमत से पास हो गया। इसी बीच सुभाष बाबू को तार भेजकर देश के बड़े-बड़े नेताओं ने अनशन त्याग देने की प्रार्थना की। ३ मार्च सन् १६२६ को कलकत्ते में श्री निवास शास्त्री ने कहा था—"सुभाष बाबू के त्याग की प्रशंसा करना सूरज को दीपक दिखाना है। मुझे उनके साहस की गाथा एक साहसपूर्ण तथा करुणाजनक काव्य की तरह मालूम

पड़ती है। चाहे हम विभिन्न राजनीतिक विचार रखते हों मगर जहाँ राजनीतिक स्वत्व की रक्षा का प्रश्न उठता है, वहाँ हम सबकी एक ही आवाज है....''

देश भर में व्यापक आन्दोलन उठ खड़ा हुआ—और सुभाष बाबू ने नेताओं की प्रार्थना से बाध्य होकर ४ मार्च सन् १६२६ को १२ दिन के पश्चात् अनशन तोड़ दिया।

श्री सुभाषचन्द बोस की नजरबन्दी पर 'हाउस आफ कामन्स' में भी प्रबल वादाविवाद हुआ। मिस्टर जान्सटन और अरनेस्ट थर्टल ने सुभाष का पक्ष लेकर खूब बहस की।

२७ दिसम्बर सन् १६२६ को जब गौहाटी में कांग्रेस का एकतालीसवाँ अधिवेशन हुआ तो श्री हार्निमैन ने सुभाषबाबू की मुक्ति का जोरदार शब्दों में समर्थन किया।

"कितने आश्चर्य की बात है...." श्री हार्निमैन ने कहा था—"सुभाषचन्द्र बोस को न्यायालय के सामने कभी खड़ा ही नहीं किया गया। न उनको उनके अपराध ही बताये गये और न उन्हें कभी ऐसा अवसर ही दिया गया कि वे अपने पक्ष में प्रमाण दे सकें। न तो उनको न्यायालय ने कोई सजा ही दी है....मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि इन्साफ का खात्मा हो चुका है...."

इन्हीं दिनों गोरों के प्रबल हिमायती 'स्टेट्समैन, इङ्गलिश मैन, कैथलिक हेराल्ड आफ इण्डिया' आदि समाचार पत्रों ने सुभाष बाबू के विरुद्ध मनमाना विष-वमन किया।

स्टेट्समैन तो यहाँ तक लिख दिया—"सुभाषचन्द बोस ही आतङ्कवादी आन्दोलन के सञ्चालक रहे हैं।"

सुभाष बाबू ने इनमें प्रत्येक पत्र के ऊपर ५० हजार रुपयों का हर्जाने का दावा किया। सुभाष बाबू को राज्यक्ष्मा हो गया था, ऊपर से अनशन ने उनकी रही-सही शक्ति भी क्षीण कर दी थी।

फल यह हुआ कि वे अप्रैल १६२६ में काफी जर्जर हो गये। उनके लिए अपने से उठना-बैठना भी असम्भव हो गया। उनके भाई डाक्टर सुनोलचन्द्र बोस तथा अन्य सरकारी मेडिकल आफि-

सरों ने सुभाष बाबू की जाँच की और सबने एकमत होकर उनके स्वास्थ्य को चिन्ताजनक बताया। मि० मोबार्ली ने बंगाल सरकार की ओर से यह आयोजन पेश किया कि स्वास्थ्य सुधारने के लिए सुभाष बाबू को स्वीटजरलैण्ड जाना चाहिए। मगर इसके लिए दो शर्तें थीं। पहली शर्त यह थी कि जब तक क्रिमिनल ला एमेंडमेण्ट एक्ट का खात्मा न हो जाय, तब तक सुभाष बाबू भारत नहीं लौट सकें—और दूसरी शर्त यह थी कि सुभाष बाबू जिस जहाज से यात्रा करेंगे, वह सीधे योरोप को जायगा और वे कलकत्ता या किसी अन्य भारतीय बन्दरगाह पर न उतर सकेंगे।

कितनी अपमानपूर्ण शर्त थी। भला कौन विचारशील व्यक्ति इस बात को स्वीकार करेगा। सुभाष बाबू ने पैरों की एक ठोकर से सरकार का यह दम्भपूर्ण प्रस्ताव दूर ढकेल दिया। सरकार की आशाओं पर तुषारापात हुआ। वह तो यह चाहती थी कि उधर वे यूरोप जायँ और इधर वह क्रिमिनल ला एमेण्डमेंट एक्ट को चिरस्थाई बना दे ताकि गोरी सरकार के प्रबल शत्रु, भारत के सिंह सुभाष बाबू कभी अपनी मातृभूमि को न लौट सकें। इस समय सुभाष बाबू ने जेल से जो पत्र अपने बड़े भाई श्री शरतचंद बोस को लिखा था, वह अत्यन्त महत्वपूर्ण है। वह यों है—

इन्सीन सेण्ट्रल जेल,
४ अप्रैल १६२७ ई०

प्रिय भाई साहब !

आप यह जानने को उत्सुक होंगे कि मैं मि० मोबार्ली के मेरे स्विटजरलैन्ड जाने के प्रस्ताव के विषय में क्या सोचता हूँ? नहीं जानता कि कभी यह समय आयेगा भी या नहीं, जबकि मैं आपके सामने बैठकर अपने हृदयगत विचार व्यक्त कर सकूँगा....इससे मैंने अपने विचारों को व्यक्त करने के लिए ही इस पत्र का सहारा लिया है। छोटे दादा डाक्टर सुनील ने मेरे बारे में जो रिपोर्ट दी और जो सिफारिशें की, वह मुझसे पूछकर नहीं की।

यदि वे मुझसे सलाह लेते तो मैं कभी उन्हें ऐसी सिफारिश करने को न कहता। क्योंकि जानता हूँ, ऐसी सिफारिशें करना, ब्रिटिश सत्ता के सामने घुटने टेककर भिक्षा माँगना है। ब्रिटेन के सामने अपनी पवित्र भूमि भारत का अपमान करना है।

इस बात के लिए मैं तैयार नहीं कि मेरे व्यक्तिगत लाभ की लालसा से भारत देश का अनादर हो। मुझे ऐसा जान पड़ता है कि सरकार को छोटे दादा की रिपोर्ट पर विश्वास नहीं है, क्योंकि सरकारी घोषणा से यह बात स्पष्ट है कि मैं इस समय सख्त बीमार नहीं हूँ। पता नहीं सरकार किस हालत में मुझे 'सख्त' बीमार मानने को तैयार होगी? क्या जब मेरी अवस्था एकदम चिन्ता-जनक हो जायगी और मेरे जीवन की मंजिल मौत के एकदम समीप पहुँच जायगी तभी मुझे सख्त बीमार माना जायगा।

बङ्गाल सरकार यह चाहती है कि मैं क्रिमिनल ला एमेंडमेंट ऐक्ट के समाप्त होने तक विदेश में ही रहूँ। यह कानून जनवरी १९३० में समाप्त होगा। लेकिन इस बात का क्या विश्वास है कि कानून की अवधि न बढ़ाई जायगी। हो सकता है कि १९२९ के अन्त तक यह कानून सदा के लिए स्थाई बना दिया जाय और मैं जीवन भर के लिए अपने प्यारे देश से निर्वासित हो जाऊँ। जब मैंने यह पढ़ा कि मुझे यह शर्त माननी होगी कि मैं हिन्दुस्तान, बर्मा तथा लंका को न लौट सकूँगा तो बार-बार मैंने अपने दृष्टिकोण से इस बात पर विचार किया। क्या मैं ब्रिटिश सरकार के अस्तित्व के लिए इतना खतरनाक हूँ कि बङ्गाल प्रान्त से मेरा निर्वासन काफी नहीं है? सरकार यह भली प्रकार जानती है कि मैं ढाई साल से घर से दूर हूँ और इस बीच अपने माता-पिता, स्नेही-सम्बन्धियों से नहीं मिल सका हूँ। अब यदि यूरोप जाऊँ तो कम से कम ढाई तीन साल और लग जायँगे तब मुझे अपने लोगों से मिलने का अससर प्राप्त हो सकेगा। यह बात मेरे लिए चिन्ता का कारण है ही, साथ ही जो मुझे प्यार करते हैं, उनकी चिन्ता

द्विगुणित हो उठेगी। पाश्चात्य व्यक्तियों के लिए यह समझना असम्भव है कि पूर्व के लोग अपने सगे-संबन्धियों से कितना अधिक सम्पर्क एवं ममता रखते हैं?

केवल पश्चिमी मस्तिष्क ही इस बात की कल्पना कर सकता है कि मैंने शादी नहीं की है अतः मेरा परिवार नहीं है और मैं स्नेह-बन्धन से मुक्त हूँ। सरकार यह भूल गई कि उसने मुझे पिछले ढाई वर्षों से कितने कष्ट में डाल रखा है? दुखी मैं हूँ, न कि वह? इतने समय तक अकारण ही उसने मुझे बन्द कर रखा है। मुझसे केवल यह कहा गया था कि मैं अस्त्र-शस्त्रों को संगठित करने, विस्फोटक पदार्थों बनाने तथा पुलिस आफिसरों के मारने का दोषी हूँ।

मेरी गिरफ्तारी के बाद बङ्गाल सरकार ने मेरे आश्रितों तथा मेरे निर्वाह के लिए कोई आर्थिक व्यवस्था नहीं की और जब मैंने वाइसराय के पास अपील की तो उसको बीच में बङ्गाल सरकार ने रोक लिया। इतने से ही सन्तोष न करके सरकार मुझे तीन वर्ष तक और मातृभूमि से दूर रखना चाहती है और यह भी चाहती है कि मैं योरोप जाकर वहाँ का सारा खर्च स्वयं बर्दाश्त करूँ। क्या यह न्यायोचित प्रस्ताव है? यदि सरकार और कोई नैतिक उत्तरदायित्व अपने सिर पर लेने को तैयार नहीं है, तो कम से कम मुझे उसी शारीरिक अवस्था में मुक्त करना चाहिए, जैसी अवस्था मेरी १६२४ में थी। यदि जेल में मेरा स्वास्थ्य खराब हुआ तो सरकार इसके लिए उत्तरदायी है और उसे ही सब खर्च बर्दाश्त करना चाहिए। मैं जानता हूँ कि योरोप न जाने का मेरा हठ शायद मेरे लिए मृत्यु का आह्वान कर दे....परन्तु देश से सदैव के लिए निर्वासित होने के बदले अपनी मातृभूमि के पवित्र वातावरण में प्राणत्याग करना मुझे अधिक आनन्ददायक है।

कृपया माता-पिता को धैर्य देते रहें, क्योंकि स्वतन्त्रता जैसी अमूल्य निधि प्राप्त करने से पहले हमें अभी कितनी आहुतियाँ

देनी हैं। हमारे विचार मर नहीं सकते—हमारा आदर्श देश की भावी सन्तति के समक्ष अनुकरणीय उदाहरण रहेगा।

आपका परम स्नेही—

सुभाष!

सरकार भी यह समझ रही थी कि सुभाष बाबू की अवस्था अत्यन्त चिन्ताजनक है। अतः वह उन्हें अलमोड़ा जेल भेजना चाहती थी। परन्तु बङ्गाल के गवर्नर के सर्जन मेजर हिस्टन आई० एम० एस० तथा लेफ्टिनेण्ट कर्नल सैण्डिल आई० एम० एस० ने सुभाष बाबू की परीक्षा करके, जो दयनीय रिपोर्ट दी उससे बंगाल सरकार भी विचलित हो उठी और उसने यही उचित समझा कि सुभाष बाबू को रिहा कर दिया जाय, ताकि वे बिना किसी प्रति-बन्ध के चाहे जहाँ जाकर अपना स्वास्थ्य सुधारें। बङ्गाल सरकार का यह वक्तव्य २७ मई सन् १६२७ को प्रकाशित हुआ।

श्री शरदचन्द बोस को जो उस समय दार्जिलिङ्ग में थे.. सरकार का तार मिला कि सुभाष बाबू मुक्त कर दिए गये हैं, अतः वे आकर उन्हें लिवा जायँ। शरद बाबू जब सुभाष बाबू से मिले तो वे उस रक्त-मांस हीन हड्डियों के पुतले को पहचान ही न सके। छोटे भाई की दुर्दशा देखकर वे रो पड़े।

परन्तु सुभाष बाबू ने उन्हें समझाया। कहा—"दादा! जो कुछ होनी है, होकर रहती है....आप देख रहे हैं न, गोरे कुत्तों ने मेरा मांस नोंचकर खा डाला है और केवल सूखी हड्डियाँ छोड़ दी है, यह हड्डियाँ भी वे चबा जाते मगर देश का उन्हें डर था...."

उसी समय सुभाष बाबू ने अपने देशवासियों के लिए एक दिव्य सन्देश दिया—"अब मैं फिर अपने घर पहुँच गया हूँ। अब मेरा पहला कर्तव्य यह होगा कि मैं शीघ्र ही अपना स्वास्थ्य सुधारने की उचित व्यवस्था करूँ, ताकि स्वास्थ्य लाभ कर चुकने पर पुनः अपना पवित्र कार्य सुचारू रूप से चला सकूँ...."

सुभाष बाबू के उन्मुक्त होने से सारा भारत आनन्द से खिल

उठा। कलकत्ता नगर जैसे अपने विलुप्त वैभव को पाकर खुशी से इतरा पड़ा। भारत भर में उनके सम्मानार्थ सभाएँ हुईं। दूकानें तथा दफ्तर बन्द रहे। सुभाष बाबू के आरोग्य के लिए विशाल मन्दिरों में प्रार्थनाएँ की गईं। अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस कमेटी की बैठक उस समय बम्बई में हो रही थी, जिसमें सुभाष बाबू के छूटने पर हर्ष प्रकट किया गया और बधाई का तार भेजा गया। पण्डित मोतीलाल नेहरू आदि राष्ट्र के बड़े-बड़े नेताओं ने सुभाष बाबू के शीघ्र स्वस्थ हो जाने की कामना की। 'फारवर्ड' ने अपना विशेषांक निकाल कर उसे बिना मूल्य वितरित किया। देश के कोने-कोने से लोग सुभाष बाबू के दर्शनार्थ आने लगे।

सुभाष बाबू की आत्म-शक्ति महान थी। इसी कारण वे बहुत थोड़े ही दिनों में स्वस्थ हो गये। समग्र भारत ने उनके स्वास्थ्य लाभ को आनन्द एवं आश्चर्य की दृष्टि से देखा। किसी को भी यह आशा न थी कि सुभाष बाबू इतने जल्दी अच्छे हो जायँगे।

'डेलीमेल' के बम्बई संवाददाता ने लिखा था—"गरम दल वालों के नवयुवक नेता श्री सुभाषचन्द्र बोस, जो पिछले साल बीमारी के कारण रिहा कर दिए गये थे, इतनी जल्दी अच्छे हो गए कि डर है वे महात्मा गांधी की जगह न ले लें - मई, १९२८

सुभाष बाबू स्वस्थ होकर पुनः कार्य में तल्लीन हो गए। वे तूफान की तरह कार्य करते थे। अच्छे होकर उन्होंने सबसे पहले अकाल पीड़ितों की सहायता का कार्य हाथ में लिया, क्योंकि उस समय समस्त बङ्गाल भयानक अकाल-ग्रस्त था। २० मई सन् १९२८ को बम्बई के आपेरा हाउस में सुभाष बाबू ने भारत की राजनैतिक परिस्थिति, सभ्यता, संस्कृति तथा नवयुवकों के आदर्श पर एक मार्मिक भाषण दिया। अपने भाषण में एक स्थान पर उन्होंने कहा—"ताजमहल को देखिए!....कितना सुन्दर लगता है?....पर इस सौन्दर्य की केवल मुसलमानों ने प्रशंसा नहीं की है। समग्र विश्व इसका प्रशंसक है....बड़े बड़े कवियों ने इसे 'पत्थरों के रूप में परिवर्तित अश्रु' की उपमायें दी हैं...मैं तो यह कहता हूँ कि यदि मुगल

शासक और कुछ न छोड़ कर हमारे लिए केवल ताजमहल ही छोड़ जाते तो भी हम इनके कृतज्ञ ही रहते....परन्तु आज ब्रिटिश सरकार को देखिए....यदि उनकी सत्ता नष्ट हो जाय तो अपने पीछे वह हमारे लिए क्या छोड़ जायगी ? छोड़ जायगी केवल ये अमानुषिक वातावरण वाले जेल तथा हमारे हृदय पर अपने बर्बरतापूर्ण शासन की एक अमिट छाप !...."

उन दिनों पं० जवाहरलाल नेहरू तथा श्री सुभाषचन्द्र बोस के प्रयत्न से 'भारतीय स्वतन्त्रता संघ 'Independence of India Leag e' की स्थापना हुई। सुभाष बाबू ने इसकी एक शाखा का बङ्गाल में संगठन किया। इसका कार्यक्रम यों था—

[१] आर्थिक असमानता को दूर करना, [२] सबके लिए समान सुभीतों की व्यवस्था, [३] रहन-सहन के स्तर को बनाना, [४] मुख्य उद्योग-धन्धों का राष्ट्रीयकरण, [५] मिल मालिकों तथा मजदूरों के झगड़ों का पंचायत द्वारा फैसला, [६] टैक्स लगाकर अथवा कानूनन व्यक्तिगत सम्पत्ति का नियन्त्रण, [७] बेकारी तथा वृद्धावस्था की पेन्शन, [८] लगान का एक-सा तरीका, [९] कृषकों के कर्ज को कम करना, [१०] जमींदारी प्रथा का विनाश, [११] छुआछूत को मिटाना। [१२] महिलाओं में जागृति उत्पन्न करना।

नवयुवकों में पूर्ण स्वतन्त्रता की भावना लाने के लिए सुभाष बाबू ने अथक प्रयत्न किया। विदेशी माल के बहिष्कार की प्रबल लहर उठा। सुभाष बाबू ने कितनी ही सभाओं में ओजस्वी भाषण देकर जनता में जागृति फूँकी और विदेशी सत्ता का बहिष्कार करने की प्रार्थना की। सन् १९२८ में कांग्रेस का पैतालिसवाँ अधिवेशन कलकत्ते की विशाल नगरी में जिस समारोह के साथ मनाया गया, वह इतिहास की प्रसिद्ध घटना है। उस समय के सभापति पं० मोतीलाल नेहरू का ४६ सफेद घोड़ों की बग्गी में दो हजार स्वराज्य सैनिकों के साथ चार-पाँच लाख की भीड़ का जैसा शानदार जलूस निकला, वैसा आज तक देखने को नहीं आया। भारत भर में कहीं भी, किसी समय भी, किसी राजा-महाराजा या गवर्नर

...शाहजादे ... का ऐसा जलूस नहीं निकला था।

राष्ट्रपति पं० मोतीलाल नेहरू की स्पेशल ट्रेन ६ बजकर ४५ मिनट पर हावड़ा स्टेशन पहुंची तो १०१ तोपों की सलामी दी गई।

कलकत्ता कांग्रेस की शान और सुप्रबन्ध का समग्र श्रेय सुभाषचंद्र बोस को था ? सुभाष बाबू स्वराज्य सैनिकों के सेनापति थे।

जब राष्ट्रपति का जलूस निकला तो दो हजार स्वयंसेवक, ५० घुड़सवार तथा दो सौ साइकिल सवार राष्ट्रपति की गाड़ी के आगे-आगे थे। स्वयंसेवकों के शरीर पर खद्दर की खाकी सैनिक वर्दी थी। एक मील लम्बे जलूस के आगे बैंड बज रहा था और उससे भी आगे मोटर पर सेनापति सुभाष चल रहे थे। उनके हृष्ट-पुष्ट शरीर पर सैनिक वस्त्र उस समय की शोभा द्विगुणित कर रहे थे।

सेनापति सुभाष और उनकी युवक सेना को देखकर निर्बल भारत की रगें फड़क उठीं। बूढ़ों के हृदय में भी क्रान्ति की लहरें तड़फड़ाने लगीं। सुभाष बाबू हर इञ्च एक सेनापति दिखलाई देते थे। यह उनके दृढ़ आत्म-विश्वास तथा आत्म गौरव की झलक थी और उनके मुख-मंडल पर एक विजयी वीर के आत्म-सन्तोष की छाया थी। वह एक दृश्य था ! एक स्वप्न की झलक थी। भविष्य की एक आशा थी ! २८ दिसम्बर सन् १९२८ को पं० मोतीलाल नेहरू ने कांग्रेस का विजयी तिरङ्गा झण्डा आकाश में फहराया।

सुभाष बाबू के सेनानी जयघोष कर उठे....सैकड़ों कण्ठों से निकला हुआ विजय घोष का गायन हवा में तैर उठा जिससे गोरी सरकार के कान के परदे फट गये।

विजय घोष घहरा दें।
स्वतन्त्रता के भीषण रण में जन्मभूमि के विमल गगन में।
जीर्ण-शीर्ण युवकों के तन में।
आत्मत्याग की आग फूंककर, धवल ध्वजा फहरा दें।
विजय घोष घहरा दें।
वीर-भावना हरित-भरित हो, बलिवेदी की अग्नि ज्वलित हो।
विरोधियों का दर्प दलित हो।

पराधीनता की बेड़ी से, माँ को मुक्त करा दें।
विजय घोष घहरा दें।

समराङ्गण में बहे रक्त नित, हो भीषण संग्राम देशहित।
शत्रु शक्ति हो जाय श्री-हत।

भारत भू में एक बार फिर जीवन ज्योति जला दें।
विजय घोष घहरा दें।

द्वेष दमन की लगन लगी हो, स्वतंत्रता-रागिनी रँगी हो।
नवजीवन की ज्योति जगी हो।

कर दें प्रलय, रक्त की लहरें लहर-लहर लहरा दें।
विजय घोष घहरा दें।

कीर्ति कौमुदी विमल धवल हो, भारत भू का साज नवल हो।
विकसित सबका हृदय कमल हो।

काली घटा हटा करके फिर 'कान्त' छटा छहरा दें।
विजय घोष घहरा दें।

स्वयंसेवक सैनिकों का वह नाद सुनकर स्वयं पं० मोतीलाल नेहरू भी विचलित हो उठे। उन्होंने कह दिया—"मेरे नवयुवक सैनिकों! आज तुम्हारा विजय-घोष सुनकर मेरी शिथिल रगों में जवान खून दौड़ उठा है....तुम भारत की भावी सेना हो। अपनी नस-नस में विद्रोह का संचार करो। मैं वृद्ध होते हुए भी कर्तव्य से हटने वाला नहीं....तुम डटे रहो।"

कांग्रेस अधिवेशन की समाप्ति पर पण्डित मोतीलाल नेहरू ने सुभाष बाबू की प्रशंसा करते हुए कहा था—"सुभाष बोस मुझे अपने लड़के की तरह प्यारे हैं।" कलकत्ता कांग्रेस के बाद सुभाष बाबू चुपचाप बैठे नहीं। इस समय तक भारतीय जनता के हृदय में उनके लिए बहुत उच्च स्थान बन गया था। सरकार भयभीत थी, भारत में विदेशी माल का प्रबल बहिष्कार देखकर।

महात्मा गांधी ३ मार्च सन् १९२९ को कलकत्ते आये और ४ मार्च को श्रद्धानन्द पार्क में विदेशी वस्त्रों की होली जलाई गई। ऐसा लगा जैसे विदेशी सरकार ने उसी समय महात्मा गांधी को

गिरफ्तार लिया—और तुरन्त ही जमानत पर छोड़ दिया। महात्मा गांधी रंगून चले गये। ६ मार्च को श्रद्धानन्द पार्क में विराट सभा आयोजित की गई। अध्यक्ष पद से सुभाष बाबू ने कांग्रेस के मेम्बर बनाने, कांग्रेस फण्ड के लिए रुपया जमा करने तथा स्वयंसेवक भरती करने हेतु जोरदार अपील की। उन्होंने कहा—"हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रबल वेग को रोकने की चेष्टा करके सरकार अपनी बुद्धि का दिवाला निकाल रही है"

कांग्रेस कौंसिल प्रवेश के एकदम विरुद्ध थी—स्वराज्य पार्टी के प्रयत्न से काफी लोग कौंसिल में प्रवेश कर चुके थे। जब कांग्रेस ने तुरन्त कौंसिल छोड़ देने की आज्ञा दी तो सुभाष बाबू ने एक अनुयायी भक्त की भाँति बङ्गाल कौंसिल को लात मार दिया। अन्य साथियों ने भी ऐसा ही किया। उस समय सुभाष बाबू ने कलकत्ता कार्पोरेशन की सदस्यता से भी त्यागपत्र दे दिया। सन् १६२६ में लाहौर में जब कांग्रेस का चौवालीसवाँ अधिवेशन हुआ तो सुभाष बाबू ने महात्मा गांधी के, पूर्ण स्वाधीनता, कौंसिलों के वायकाट, कर न देना तथा सत्याग्रह वाले प्रस्ताव में एक संशोधन उपस्थित किया था—जिसने सरकार को भी एक बार हिला दिया था।

ब्रिटिश सरकार के शासन का विनाश करने के लिए मुकाबले की सरकार कायम करना ही उस संशोधन का उद्देश्य था।

(१) सत्याग्रह संग्राम शुरू हो (२) कर न दिया जाय (३) आम हड़ताल की जाय (४) नौजवानों, मजदूरों, किसानों और दूसरे पीड़ितों का संगठन (५) सरकार द्वारा स्थापित कमेटियों, लोकल बोर्डों तथा अदालतों का वायकाट (६) किसी भी चुनाव में भाग न लिया जाय (७) कौंसिलों, कमेटियों और बोर्डों के वर्तमान कांग्रेस सदस्य त्यागपत्र दे दें (८) वकील तुरन्त अदालत छोड़ दें।

अगस्त सन् १६२६ में राजनीतिक बन्दी दिवस मनाया गया। सुभाष बाबू ने सरकारी दमन नीति की तीव्र आलोचना की।

फलतः उन पर राजद्रोह का जुर्म लगाया गया और २३ जनवरी सन् १६३० को उन्हें तथा उनके कुछ साथियों को १ साल

कैद की सजा हुई। हाईकोर्ट उन्हें जमानत पर छोड़ना चाहती थी परन्तु वे यह शर्त मानने को तैयार न हुए कि साल भर तक स्वतन्त्रता संग्राम में भाग न लेंगे। वे खुशी-खुशी जेल चले गये।

उन्होंने कहा—"सरकार हमारे शरीर को ही कैद कर सकती है परन्तु अन्तरात्मा की विद्रोहाग्नि तो अवसर पाकर धधक उठेगी।

× × ×

अलीपुर जेल में आते ही सुभाष बाबू की भेंट अपने पुराने मित्र बसन्तकुमार मल्लिक से हुई! वह बालक १६-१७ वर्ष के युवक में परिणत हो गया था। सुभाष बाबू को देखते ही उनके पास आया। उसमें वाल्य-सुलभ चंचलता न थी, जैसा ८ वर्ष पूर्व सुभाष बाबू ने देखा था। अब उसमें गम्भीरता आ गई थी।

"तुम भी आ गये देवता!....जैसे विधाता को भी यही मंजूर है कि हमारी मुलाकात सदैव किसी न किसी जेल में ही हो।"

"मगर तम इस बार यहाँ कैसे हो..." सुभाष बाबू बोले।

"गिरहकटी की सजा भुगत रहा हूँ।"

"क्या पिछली बार की तरह अब भी तुम पर झूठा अभियोग लगाया गया है?...." पूछा सुभाष बाबू ने।

"नहीं देवता!...." बसन्त ने सर नीचा करते हुए कहा—"अब मैं वास्तविक अपराधी बन गया हूँ...."

"मुझे आश्चर्य है...." सुभाष बाबू ने कहा—"क्या तुम्हारी वाल्यावस्था का भोलापन, जवानी में अपराधी का रूप ले बैठा है?"

"क्या करूँ...." बसन्त ने कहा—"मैं पहले कितना अच्छा था, सोचता हूँ तो आँखों में आँसू आ जाते हैं मगर पुलिस ने मुझे बिगाड़ दिया। चार बार मुझे निरपराध जेल भेजा तो मैंने सोचा, जीवन का अधिकांश भाग जेल में ही व्यतीत करना है तो क्यों न वास्तविक अपराधी बनकर जेल जाऊँ?"

"तुमने अपनी आत्मा को बलपूर्वक कुचल डाला है युवक!.... मुझे तुमसे ऐसी आशा न थी..." सुभाष बोले—"मेरे हृदय में

वास्तविक अपराधी के प्रति उतनी ही घृणा है, जितनी अपनी आजादी छीनने वाली ब्रिटिश सरकार के प्रति...."

"......." सर नीचा किए हुए सुन रहा था बसन्त।

"यदि मैं उस समय जानता कि एक अपराधी की प्राण-रक्षा कर रहा हूँ तो तुम्हें पानी से बाहर निकालने के बदले और गहरे पानी में ढकेल देता और फिर भी तुम जीवित रहते तो तुम्हारा गला टीप देता। तुम मातृभूमि के लिए कलङ्क हो।"

सुभाष के स्वर में तीव्रता थी। उन्होंने बसन्त की ओर देखा तो चौंक पड़े। बसन्त के गाल आसुओं से तर थे। अपने प्राणरक्षक की कठोर बातें सुनकर, वह आत्मग्लानि में डूब रहा था। उसने आगे बढ़कर सुभाष बाबू के पैर पकड़ लिए।

"मुझे क्षमा करो देवता !....इस जीवन को तुम्हीं ने बचाया है, तुम्हीं प्रकाश दिखाओ...."

सुभाष बाबू ने उसे उठाया, सांत्वना दी।

"तुम्हारी बहन नीरा कहाँ है ?...." पूछा उन्होंने।

"वह मजे में है देवता !...." बसन्त बोला—"उसकी शादी कर दी मैंने। उसका पति जनरंजन राय सरकारी जासूस है।"

दूसरे दिन सुभाष ने प्रातःकाल देखा कि जेल के अधिकारी बसन्तकुमार को अकारण ही पीट रहे हैं। वह युवक करुण स्वर में चिल्ला रहा है। सुभाष बाबू ने हस्तक्षेप किया तो जेल अधिकारियों की आज्ञा से उन पर भी पैशाचिक मार पड़ी।

सुभाष बाबू प्रबल मार का वेग न सह सकने के कारण बेहोश होकर गिर पड़े परन्तु सरकारी कुत्तों ने उन्हें तब भी न छोड़ा। जब बसन्त ने अपने जीवनदाता की यह दुर्दशा देखी तो बह दौड़ कर सुभाष बाबू के बेहोश शरीर पर हो रहा और उन नरपशुओं की भयङ्कर मार स्वयं सहने लगा। ११ अगस्त १९३० को बंगाल कौंसिल में सरकार से इस दुर्व्यवहार का कारण पूछा गया और साथ ही यह कहा गया कि इस मामले पर रिपोर्ट तैयार करने के लिए जाँच-कमेटी नियुक्त हो, परन्तु सरकार ने फरमाया कि कैदियों

ने अनुशासन भङ्ग करने का प्रयत्न किया था। इस बात की जाँच के लिए कमेटी की आवश्यकता नहीं।

जेल से छूटने पर सुभाष बाबू पुनः कार्यरत हो गये। सरकार उनका स्वागत करने को तैयार बैठी थी। १८ जनवरी सन् १९३१ को जब सुभाष बाबू मालदा से बरहमपुर की ओर आ रहे थे, उन्हें दफा १४४ के अन्तर्गत आगे न बढ़ने के लिए नोटिस दी गई। सुभाष बाबू ने वह आज्ञा मानने से इनकार कर दिया और वे उसी स्थान पर कैद कर लिये गये। वहीं पर उनका सरकारी मुकदमा हुआ और सात दिन की सजा दी गई। २५ जनवरी को वे पुनः मुक्त कर दिए गये। २६ जनवरी को स्वतन्त्रता दिवस समारोह होने वाला था। सुभाष बाबू तथा उनके साथियों ने यह निश्चय किया कि 'आक्टर लोनी मानु मेण्ट' पर राष्ट्रीय ध्वज फहराया जाय? ऐसा करते हुए सुभाष बाबू के ऊपर पुलिस घुड़सवारों तथा सारजेण्टों द्वारा भीषण मार पड़ी।

× × ×

१ अप्रैल सन् १९३१ को कराँची में अखिल भारतीय राजनीतिक बन्दी सम्मेलन हुआ। सुभाष बाबू ही उक्त सम्मेलन के सभापति थे। उन्होंने अपने ओजस्वी भाषण में जेलों में होनेवाले अत्याचारों की कहानी बताई और उनकी निन्दा की।

× × ×

उन्हीं दिनों 'गांधी इर्विन पैक्ट' हुआ। इस समझौते के बावजूद जगह-जगह नौकरशाही का नग्न नृत्य होता रहा। बङ्गाल के हिजली और चटगाँव में सरकारी गुण्डों ने मनमाना अत्याचार किया। उस समय अपने देशवासियों के दुःख से विक्षुब्ध हो वह भूखा शेर सुभाष दहाड़ उठा—"जो ब्रिटिश साम्राज्य एक दिन में बना है वह एक रात में नष्ट भी होगा...."

११ नवम्बर सन् १६३१ को ढाका से ४ मील दूर तेजगाँव नामक स्थान में सुभाष बाबू पुनः गिरफ्तार कर लिए गये। वे उस समय ढाका में पुलिस अत्याचारों की जाँच करने जा रहे थे।

गिरफ्तारी के थोड़े ही दिन बाद वे छोड़ भी दिये गये।

× × ×

२२ दिसम्बर सन् १६३१ को महाराष्ट्र नौजवान सभा का अधिवेशन हुआ। उसके सभापति श्री सुभाषचन्द्र बोस ही थे। उन्होंने एक जोशीला भाषण दिया—"सरकार की दृष्टि में मैं एक खतरनाक व्यक्ति हूँ। वह मुझे बहुत बड़ा क्रान्तिकारी समझती है, परन्तु वास्तव में मैं एक शान्तिप्रिय व्यक्ति हूँ। इसमें तो सन्देह की जरा भी गुञ्जाइश नहीं कि आज हम आजादी की भूख में छटपटा रहे हैं और हमारी यह प्रबल भूख, अधूरी नहीं बल्कि पूरी आजादी प्राप्त करने से ही शान्त हो सकेगी... अब हमें बिना पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त किए एक क्षण के लिए चैन नहीं है... दिल्ली के समझौते में नवयुवकों की एक भी नहीं सुनी गई....जबकि कांग्रेस और सरकार में स्थायी सन्धि हो चुकी थी, सरकार हम पर मनमाने अत्याचार करती गई और सरकार की इस कार्रवाई को रोकने के लिए कांग्रेस के पास कोई चारा नहीं था...इसी मनमाने दमन ने युवकों के हृदय में अग्नि प्रज्वलित की और बाध्य होकर युवकों ने क्रान्ति का सहारा लिया....आज हमारी सरकार हम पर नए-नए कानून लादती जा रही है। इससे यह स्पष्ट है कि जनता की तनिक भी सहानुभूति न तो सरकार के साथ है और न तो उसके इन काले कानूनों के साथ !"

इस प्रकार सुभाष बाबू ने नागरिक स्वत्व सङ्घ, युवक सङ्घ तथा ट्रेड यूनियन आदि संस्थाओं के विभिन्न आन्दोलनों में सक्रिय भाग लिया। उस समय गोरी नौकरशाही के प्रबल पृष्ठपोषक लार्ड विलिंगटन, अपने क्रूर व्यवहारों द्वारा समग्र भारत के लिए भय का कारण बन गये थे। उन्होंने 'गांधी इर्विन पैक्ट' के बिरुद्ध आचरण

करने, उसे धूल-धूसरित बनाने में कोई कसर नहीं उठा रखी।

सरकार के ही षड्यन्त्र से उन दिनों बङ्गाल, संयुक्त प्रदेश तथा सीमा प्रान्त में आग की लहर दौड़ गई और सरकार ने उस प्रबल अग्नि का शमन करने के लिए तीव्र दमन का सहारा लिया। अत्याचारों से सारा भारत प्रज्वलित हो उठा। भारत के वाइसराय तथा बङ्गाल के गवर्नर, सुभाष बाबू से पहले ही रुष्ट थे। वे यह नहीं चाहते थे कि सुभाष बाबू इस तीव्र गति से सरकार के विरुद्ध सत्याग्रह का संगठन करें। अतः वे पुनः तृतीय धारा के अन्तर्गत बन्दी बना दिए गये। ३ जनवरी सन् १६३२ को समस्त भारत ने क्षुब्ध होकर सुभाष बाबू की गिरफ्तारी का समाचार सुना।

सरकार ने उन पर किसी निश्चित अपराध का आरोप नहीं किया था। सरकारी विज्ञप्ति में केवल यही बात कही गई थी कि सुभाष बाबू भयङ्कर षड्यन्त्रकारी हैं और उन्होंने समस्त भारत में अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध आतङ्क फैलाया है। उनकी गणना 'स्टेट प्रिजनर्स' में की गई थी। परंतु उस जमाने में इस श्रेणी के कैदियों को भी जो मृत्यु तुल्य कष्ट उठाने पड़ते थे वह वर्णनातीत हैं। सुभाष बाबू का स्वास्थ्य, पहले से ही भीषण बन्दीखानों में नष्ट हो चुका था—अब इस गिरफ्तारी ने उनके सुधरते हुए स्वास्थ्य को एकदम नष्ट कर दिया।

समस्त भारत में अपने इस नरपुङ्गव के लिए विशेष चिन्ता फैली हुई थी। ज्यों-ज्यों जनता सुभाष बाबू के स्वास्थ्य की खराबी के बारे में सुनती थी, उसका क्रोध गोराशाही शासन पर प्रतिदिन बढ़ता ही जाता था। १५ नवम्बर सन् १६३२ को बङ्गाल कौंसिल में श्री श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने सुभाष बोस तथा अन्य स्टेट प्रिजनर्स के स्वास्थ्य पर बहस करने के लिए प्रस्ताव पेश किया। श्री मुखर्जी ने कहा—"वीर सुभाष की चिन्ताजनक अवस्था का समाचार पाकर देसवासियों के हृदय में विद्रोह-भावना जागृत हो उठी है और यह भावना किसी रोज प्रलयङ्कर अग्नि का रूप धारण कर सकती है...."

मि० फजलुल हक ने श्री मुखर्जी का समर्थन करते हुए वक्तव्य दिया था—"सरकार से जोरदार अपील है कि वह स्टेट प्रिजनर्स को बहुत जल्द बिना शर्त रिहा करे... यदि सरकार ऐसा करने को तत्पर नहीं है तो सुभाष बाबू को ऐसे स्थानों में जाने की सुविधा दे, जहाँ वे अपना ठीक ईलाज करा सकें।"

सुभाष बाबू की बीमारी बहुत बढ़ चली। सरकार भी चिंतित हो उठी, परन्तु उसे भारत के इस विद्रोही युवका का इतना भय था कि उन्हें रिहा करने का साहस न हुआ। अन्त में उन्हें भुवाली भेजा गया। यहाँ आकर भी सुभाष बाबू का स्वास्थ्य सुधरा नहीं।

उन्हें ज्वर हमेशा लगा रहता था। पेट में कभी-कभी असह्य पीड़ा उठ आती थी। कुछ दिनों बाद उनको 'मेडिकल' जाँच के लिए लखनऊ भेजा गया। लखनऊ आने पर ज्वर का वेग बढ़ चला और छाती में दर्द होने लगा। इस समय तक उनका वजन ५०॥ पौण्ड घट चुका था। लखनऊ में सुभाष बाबू का 'ऐक्सरे' लिया गया। कर्नल वर्कले ने जाँच करने पर कहा कि फेफड़े में असाधारण झिल्ली पैदा हो गई है। भुवाली के मेडिकल बोर्ड तथा लखनऊ के सिविल सर्जन ने भी सुभाष बाबू को स्वीटजरलैण्ड या फ्रांस जाने की सलाह दी। सरकार को यह भलीभाँति मालूम हो गया कि सुभाष बाबू भारत में रहने पर जीवित नहीं रह सकते तो उसने उन्हें योरोप जाने की अनुमति दी, क्योंकि वह जानती थी—उस विद्रोही के मरते ही समग्र भारत आग के शोले की तरह भड़क उठेगा और तब जो विप्लव होगा, वह सन् १८५७ से भी बढ़कर होगा।

सुभाष बाबू को अपने योरोप भेजे जाने की तनिक भी प्रसन्नता न हुई। वे अपनी मातृभूमि के पवित्र वातावरण में स्वच्छंद पक्षी की भाँति उड़ना चाहते थे। फिर भी अपनी गिरती हुई तन्दुरुस्ती का ख्याल कर उन्होंने योरोप जाना स्वीकार किया।

सुभाष बाबू के माता-पिता रायबहादुर जानकीनाथ बोस और प्रभावती देवी एकदम वृद्ध हो चले थे और इधर कुछ दिनों से उन

दोनों व्यक्तियों का स्वास्थ्य भी अच्छा न था।

योरोप जाने से पहले सुभाष बाबू एक बार अपने सुयोग्य माता-पिता के दर्शन करना चाहते थे। उनके माता-पिता की भी इच्छा थी कि वे अपने पुत्र को विलायत जाते समय भर आँख देख अपनी छाती शीतल कर लें। सरकार से प्रार्थना की गई कि वह सुभाष बाबू को उनके माता-पिता से कटक में मिलने की आज्ञा दे।

परन्तु सरकार को आखों में तो सुभाष बाबू भयानक क्रान्ति-कारी थे। उसकी धारणा थी कि कटक भेजते समय वे रास्ते से ही गायब हो जायेंगे। उसने उनकी बीमारी को अब तक एक बहाना-मात्र समझा था। अतएव निकम्मी सरकार ने इस विषय में ऐसा निष्ठुरतापूर्ण उत्तर दिया कि मानवता का अन्त हो गया।

सरकारी विज्ञप्ति में कहा गया था—"मेरी समझ में मि० सुभाष चन्द्र बोस का अपने माता-पिता से मिलना बिलकुल अनर्गल है। इस मुलाकात का कारण समझ में नहीं आता। सिवा इसके कि सुभाष बाबू पुलिस की आँखों में धूल झोंककर भाग जाना या कहीं छिपकर सरकार के विरुद्ध पुनः षडयन्त्र करना चाहते हैं। सुभाष बाबू के माता-पिता अभी मर नहीं सकते। सुभाष बाबू यदि योरोप न भी जाते और जेल में ही पड़े रहते, तब भी वे अपने माता-पिता से नहीं मिल सकते थे फिर योरोप जाते समय क्यों उनसे मुलाकात करना चाहते हैं?....पुलिस संरक्षण में सुभाष बाबू को कटक भेजना असम्भव है और ऐसा करने में सरकार के लिए खतरा भी है...."

होम मेम्बर की इस लज्जाजनक उक्ति से यह स्पष्ट है कि सरकार सुभाष बाबू के अस्तित्व से कितना डरती थी। उसको भय था कहीं वह बङ्गाल का शेर षडयन्त्र करके सरकार का तख्त ही न उलट दे। योरोप यात्रा के दो-तीन दिन पहले तक भी जेल अधिकारियों ने उनके साथ अच्छा व्यवहार न किया। जेल अधि-कारी उन्हें एक दिन पहले ही बम्बई भेज देना चाहते थे। परन्तु उस समय तक सुभाष बाबू का सामान भी तैयार न था। जेल

अधिकारियों ने बहुत जिद की तो उनके पशुवत् व्यवहार से क्षुब्ध हो सुभाष बाबू ने योरोप जाने से इनकार कर दिया, परन्तु उस उस समय के डिप्टी कमिश्नर की बुद्धिमानी से मामला सुलझ गया और सुभाष ने योरोप जाना स्वीकार कर लिया।

सुभाष बाबू लगातार १३ महीनों से बीमार थे। उनकी सारी शक्ति क्षीण हो चुका थी। २३ फरवरी सन् १६३३ को उनके रुग्ण शरीर को लेकर एक जहाज बम्बई से विलायत के लिए चल पड़ा। बन्दरगाह पर सुभाष बाबू के बहुत से सम्बन्धी तथा उनसे श्रद्धा रखने वाले हजारों युवक उपस्थित थे। परन्तु सरकार यह नहीं चाहती थी कि वे पुलिस की अनुपस्थिति में उनसे मिलें। अतः सुभाष बाबू किसी से नहीं मिल सके। केवल अपने तीन भाइयों, श्री सुशील बोस, श्री अमिय बोस तथा श्री सुनील बोस से भेंट की। जब तक जहाज बन्दरगाह में पड़ा था, तब तक पचासों सशस्त्र सिपाही बन्दूकें लिए पहरा देते रहे।

जहाज चलने को हुआ तो एक पुलिस आफिसर ने सुभाष बाबू को सूचना दी कि तृतीय धारा की पाबन्दी उन पर से हटा ली गई। श्री सुभाष चन्द्र बोस के साथ प्रसिद्ध बङ्गाली डाक्टर सैलेन सेन भी यात्रा कर रहे थे। जहाज के डाक्टर ने सुभाष बाबू की परीक्षा की और उन्हें विश्वास दिलाया कि वे विलायत में जाकर बहुत जल्द अच्छे हो जायेंगे। बम्बई के सुप्रसिद्ध डाक्टर श्री देशमुख तथा श्री साठे सुभाष बाबू की स्वास्थ्य परीक्षा करना चाहते थे परन्तु सरकार ने उन्हें अनुमति नहीं दी। स्वदेश से विदा होते समय सुभाष बाबू की रुग्ण आँखों में आँसू आ गये।

विदा के समय सुभाष बाबू ने निम्न सन्देश दिया—"विलायत प्रस्थान करने से पहले मैं अपने मित्रों को धन्यवाद देता हूँ, जिन्होंने मेरी रुग्णावस्था का समाचार पाकर मेरे प्रति सहानुभूति प्रदर्शित की है और सरकार द्वारा अपमानित होने पर भी यहाँ आने का कष्ट उठाया है....मेरी भयानक बीमारी को देखते हुए भी सरकार चुप्पी साधे रही। न तो उसने मुझे मुक्त ही किया और न तो

किसी प्रकार की स्वतन्त्रता दी ही....इसीलिए अंग्रेजी सरकार ने एक पक्षी का पर काट कर उसे मौत के घाट रवाना कर दिया है—इतनी प्रार्थनायें करने पर भी इस व्याघ्र का हृदय न पसीजा और मुझे अपने वृद्ध माँ-बाप से मिलने की आज्ञा न मिली। जहाज पर आ चुकने पर सरकार ने मेरे ऊपर से तृतीय धारा का दायित्व भी उठा लिया ताकि उसे मेरी चिकित्सा तथा रहन-सहन के लिए जिम्मेदार न होना पड़े और मैं सब खर्च बर्दाश्त करूँ। मेरे भाई शरदचन्द्र बोस भी आजकल जेल में हैं। मेरे घर की आर्थिक अवस्था भी अच्छी नहीं है। ऐसी कठिनाई में मैं शायद योरोप जा भी नहीं सकता था, मगर कुछ मित्रों ने मेरे योरोप-प्रवास तथा चिकित्सा का आर्थिक भार अपने ऊपर ले लिया है। इसलिए मैं उनका कृतज्ञ रहूँगा। मैं नहीं कह सकता कि योरोप जाकर अपनी पुरानी तन्दुरुस्ती हासिल कर सकूँगा या नहीं परन्तु अपने देशवासियों को विश्वास दिलाता हूँ कि मुझे उनके आशीर्वाद तथा शुभ-कामनाओं से जल्द आराम पहुँचेगा...."

सुभाष बाबू का जहाज जब चल पड़ा तो उपस्थित जनता ने गगनभेदी नारे लगाकर अपनी प्रगाढ़ भक्ति तथा अगाध श्रद्धा का परिचय दिया। सुभाष बाबू मातृभूमि से दूर चले गये। कुछ दिनों तक वेनिस में रहने के पश्चात् उन्हें स्विटजरलैण्ड जाना पड़ा। यह साधारण बात है कि जब कोई सरकार किसी व्यक्ति को कैद करती है तो उसके भरण-पोषण तथा स्वास्थ्य-रक्षा का भार अपने ऊपर ले लेती है। जब सुभाष बाबू को सरकार ने बन्दी बनाया तो उसका कर्तव्य था कि उनके स्वास्थ्य की समुचित व्यवस्था देख-रेख और उनके कुटुम्ब के लिए पर्याप्त आर्थिक व्यवस्था करती।

सुभाष बाबू की स्वास्थ्य रक्षा सरकार न कर सकी तो उसे उचित था कि वह उनके अच्छे होने तक चिकित्सा-सम्बन्धी सारे व्यय अथवा उन्हें भत्ता देती। जो निर्दयी सरकार निरीह व्यक्तियों पर बम बरसाने के लिए तथा कितने ही युवकों को जेलखाने में डालकर उनके पीछे लाखों रुपया नष्ट कर सकती है—उसने

सुभाष बाबू को भत्ता देना स्वीकार न किया। यह बेईमानी नहीं तो और क्या है ?

श्री सुभाषचन्द्र बोस ने 'मैनचेस्टर गार्जियन' में एक पत्र प्रकाशित कर ब्रिटिश पार्लियामेण्ट की कामन्स सभा के सदस्यों से अनुरोध किया कि वे सन् १८१८ के तीसरे रेगुलेशन तथा बङ्गाल आर्डिनेंस के अनुसार नजरबन्द किए गए शाही बन्दियों को जो भत्ता दिया जाता है, उसके विषय में कामन्स सभा में प्रश्न करें।

इस पत्र में उन्होंने लिखा था, जो लोग इस तरह बिना अपराध प्रमाणित हुये ही नजरबन्द हैं, उनमें से बहुतों को अलाउन्स नहीं मिलता और जिनको मिलता भी है तो बहुत कम। स्वयं उन्हें अलाउन्स के रूप में एक पाई भी नहीं दी गई।

अस्वस्थ रहने पर भी सुभाष बाबू ने विदेशों में भारत के लिए जो कुछ किया, वह वर्णनातीत है। जिस किसी देश में वह गये, वहीं उनका स्वागत हुआ और उन्होंने अभागे भारत के लिए जो कुछ बन सका किया। बड़े दिनों के अवसर पर रोम में पूर्वीय विद्यार्थी कांग्रेस की मीटिंग हुई, जिसमें योरोप के भिन्न-भिन्न विश्वविद्यालयों में पढ़ने वाले जापानी, चीनी, तथा भारतीय छात्र सम्मिलित हुए। उनकी संख्या लगभग तीन सौ थी। इस अपूर्व सम्मेलन के अवसर पर यूनिवर्सिटी के रेक्टर, पोप तथा अन्य व्यक्तियों ने अपनी शुभ कामनाएं प्रदर्शित की थीं।

स्वयं सिन्योर मुसोलिन ने 'जूलियस सीजर हाल' में विद्यार्थियों के समक्ष भाषण किया। श्री सुभाषचन्द्र बोस भी उक्त अवसर पर वहां उपस्थित थे। उन्होंने ही इस सम्मेलन का उद्घाटन किया था। इस कांफ्रेंस के साथ ही तृतीय भारतीय सम्मेलन भी हुआ। सुभाषबाबू सर्वसम्मति से सभापति मनोनीत हुए। इस सम्मेलन में कितने ही महत्वपूर्ण प्रस्ताव पास हुए। श्री सेन गुप्ता तथा विट्ठल भाई पटेल की मृत्यु पर शोक प्रकट किया गया। महात्मा गांधी जीवन पर्यन्त के लिए आनरेरी सभापति चुने गये और पण्डित जवाहरलाल नेहरू और सुभाषचंद

बोस आनरेरी उपसभापति निर्वाचित हुए।

विद्यार्थियों के समक्ष भाषण करते हुए सुभाष बाबू ने कहा—"यह आवश्यक नहीं कि भारत के समग्र विद्यार्थी एक ही विश्वविद्यालय में अध्ययन करें। वे योरोप के अन्य देशों के विश्वविद्यालयों में भी प्रवेश लें, क्योंकि वे भी उतने ही अच्छे हैं, जितने इङ्गलैंड के। भारतीय विद्यार्थी आन्दोलन का राष्ट्रीय आन्दोलन से गहन सम्पर्क है। इटली तथा जर्मनी के विद्यार्थी आन्दोलन को देखकर उन्हें भी अपनी शक्ति विस्तृत करनी चाहिये...."

रोम में कुछ दिनों तक रहने के बाद सुभाष बाबू पोलैण्ड आये। वहाँ पर वे कितने ही प्रसिद्ध व्यक्तियों से मिले।

पोलैण्ड ने कुछ वर्ष पूर्व ही स्वतन्त्रता प्राप्त की थी, अतः वहाँ के निवासियों ने भारतीय आन्दोलन के प्रति पूर्ण सहानुभूति प्रदर्शित की। सुभाष बाबू के कुछ मित्रों ने उन्हें अपने यहाँ के ग्रामीण स्कूल दिखाये, जहाँ आधुनिक विज्ञान प्रणाली द्वारा शिक्षा दी जाती थी। वारसा में सुभाष बाबू ने देखा कि पोलिस लोग भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति के कितने प्रेमी हैं। ओरियण्टल सोसाथटी में सुभाष बाबू ने सारगर्भित भाषण दिया। उस देश के युवक-युवतियों ने सुभाष बाबू से भारतीय आन्दोलन के विषय में बहुत से प्रश्न पूछे। वारसा में सुभाष बाबू को भेंट श्री स्टैसिनला से हुई। ये संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान थे और भारतीय संस्कृति को अत्यन्त उदार दृष्टि से देखते थे। जेनेवा में कुछ दिनों तक सुभाष बाबू रहे। जेनेवा से वे नाइस [दक्षिण फ्रांस] आये। समुद्र की सुखद जलवायु तथा सूर्य-रश्मियों से उनके स्वास्थ्य पर आशातीत प्रभाव पड़ा। वहाँ से मिलन होते हुए वे पुनः रोम आये। मिलन में उन्होंने एक विराट सभा में भारत और इटली पर एक सारगर्भित भाषण किया। उस सभा में इटली के प्रायः सभी विद्वान उपस्थित थे। इसके बाद सुभाष बाबू पुनः जेनेवा आये और वहाँ कुछ दिनों रहने के बाद कार्ल्सबाद चले चले गये। कार्ल्सबाद चारों ओर से मुग्धकारी पहाड़ियों से घिरा चेकोस्लाविया का प्रसिद्ध

स्थान है, यह अपने सुरम्य प्राकृतिक झरनों के कारण विख्यात है। इस झरनों से गरम जल प्रवाहित होता है जो महान रोगनाशक है। सुभाष बाबू यहाँ जल-चिकित्सा के लिए ही आये थे। अगस्त १६३३ में वे फ्रैंसबाद भी गये थे। फ्रैंसबाद औद्योगिक नगर है। यहाँ चीनी-मिट्टी के कारखाने बहुतायत से हैं। चेकोस्लाबिया की सरकार ने सुभाष बाबू के लिए यह व्यवस्था कर दी थी कि वे इन कारखानों में घूमकर कार्य-प्रणाली देख सकें।

२६ दिसम्बर १६३३ को जेनेवा में भारत विषयक तृताय अन्तर्राष्ट्रीय कांफ्रेंस हुई थी। सभापति थे श्री एडमण्ड प्रिवट। अमेरिका, चीन, डेनमार्क, इङ्गलैण्ड, जर्मनी, हालैण्ड, हिन्दुस्तान तथा स्विटजरलैण्ड के प्रतिनिधि कांफ्रेंस में आये थे। श्रीयुत देसाई तथा सुभाष बाबू ने भी इस कांफ्रेंस में भाषण दिया था।

सुभाष बाबू ने अपने भाषण में कहा था—"हिन्दुस्तान की वर्तमान दशा को समझने के पहले यह जानना जरूरी हैं कि वहाँ कैसा कठोर दमन हुआ है। जो जेल से छूट भी गये हैं, उन पर सरकार ने ऐसा प्रतिबन्ध लगा दिया है कि जेल में होना या बाहर रहना दोनों बराबर है। हमारी चुप्पी से यह न समझना चाहिए कि इस दुर्दमनीय दमन से हम भयभीत हो गये हैं और हमने पराजय स्वीकार कर ली है। स्वतन्त्रता प्राप्ति की पुकार भारतवासियों के रग-रग में भरी हुई है। यह सम्भव नहीं कि हम इस बिनाशकारी दमन से त्रस्त होकर अपने ध्येय से विचलित हो जायँ।

भारत में अन्तर्राष्ट्रीय कांग्रेस ही जनता के सच्चे प्रतिनिधित्व का दावा कर सकती है। जब तक अभागा भारत अपने मौलिक मानवीय अधिकारों से वंचित रखा जाता है, सम्भव नहीं कि भारतवासियों के हृदय से क्रान्ति की लपटें बुझाई जा सकें। स्विटजरलैण्ड अन्तर्राष्ट्रीयता का जन्म केन्द्र हैं और इसी की प्रेरणा से अन्तर्राष्ट्रीय संस्था का जन्म हुआ है। भारतवासियों में अन्तर्राष्ट्रीयता की प्रेरणा प्रबल रूप से विराजमान है, और जब तक संसार के सभी राष्ट्र स्वतन्त्र नहीं हो जाते तब तक अन्तर्राष्ट्रीय

संघ की उपयोगिता हमारे लिए कुछ भी नहीं है। भारत की स्वतन्त्रता की समस्या केवल हमारी ही नहीं, दुनिया की समस्या है। भारत मे ब्रिटिश राज्य ब्रिटिश साम्राज्यवाद का आधार है और ब्रिटिश साम्राज्यवाद की नींव पर ही विश्व साम्राज्यवाद अवस्थित है....अतः भारत की स्वतन्त्रता के लिए प्रयत्न करना संसार की स्वतन्त्रता के लिए प्रयत्न करना है...."

आस्ट्रिया में आने पर सुभाष बाबू ने उसकी राजनीतिक तथा आर्थिक स्थिति का अध्ययन किया। आस्ट्रिया की तत्कालीन परिस्थिति, योरोप की दृष्टि में उसका महत्व, आस्ट्रिया हंगरी का प्रश्न, हीमबेर, नास्ता, कृषक पार्टी तथा समाजवादी आदि दलों की स्थिति पर सुभाष बाबू ने भारतीय पत्रों में प्रकाश डाला।

वियना में एक बार आस्ट्रियन तथा भारतवासियों की एक सभा हुई, इसमें श्री सुभाषचन्द्र बोस भी उपस्थित थे। सभा में एक समिति स्थापित हुई, जिसका नाम 'इण्डियन सेण्ट्रल यूरोपियन सोसाइटी' रखा गया। इसका उद्देश्य भारत तथा आस्ट्रिया में पारस्परिक व्यवहारिक सम्बन्ध की अभिवृद्धि करना था।

एक साल बाद जब फिर सुभाष बाबू वियना गये तो श्री सुनीति कुमार चटर्जी, कुमारी इन्दिरा नेहरू तथा डाक्टर अटल आदि भारतीय नेताओं ने इस सभा में भाग लिया था।

वियना में श्री सुभाषचन्द्र बोस ने सभी प्रमुख प्रसिद्ध व्यक्तियों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लिया था। वियना के एक प्रसिद्ध पत्र ने सुभाष बाबू के विषय में यों लिखा था।

'कलकत्ते के भूतपूर्व मेयर वियना में'

आजकल एक प्रतिष्ठित भारतीय अतिथि वियना के एक मकान में ठहरा हुआ है। रहन-सहन यूरोपियन होने पर भी वह हिन्दू ही है। वह भारतीय स्वतन्त्रता-संग्राम का वीर योद्धा है। उसके नाम से ब्रिटिश सरकार थर-थर काँपती है। श्री सुभाषचन्द्र बोस है उसका नाम। श्री सुभाष ने कलकत्ता और कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय

में शिक्षा पाई है और कैम्ब्रिज से 'डाक्टर आफ फिलासफी' की पदवी प्राप्त की है। वे ऐसी सुन्दर अंग्रेजी बोलते हैं जैसे वह उनकी अपनी मातृभाषा हो। अपने देश की स्वतन्त्रता के लिए श्री बोस को आठ बार जेल यात्रा करनी पड़ी है। वे अत्यन्त अस्वस्थ हो गये हैं। उनके वियना आने का कारण अस्वस्थता ही है। यहाँ वे डाक्टरों से इलाज करवायेंगे। ईश्वर उन्हें शीघ्र स्वस्थ करें।

× × ×

सुभाष बाबू के माता-पिता बहुत दिनों से अस्वस्थ थे। जब से सुभाष बाबू विलायत गये थे, उनके पिता की अवस्था दिन प्रतिदिन गिरती जा रही थी। और एक दिन वृद्धावस्था द्वारा जर्जर उनके शिथिल शरीर पर मृत्यु की भीषण विभीषिका आ पड़ी। हालत चिन्ताजनक हो गई। सुभाष बाबू को केबिलग्राम द्वारा सूचना दी गई। यह समाचार पाकर उनको महान दुःख पहुँचा और साथ ही सरकार की निर्दयता पर क्रोध भी आया। अपने स्वास्थ्य की परवाह न करके वे अपने पिता का अन्तिम दर्शन प्राप्त करने के लिए चल पड़े। ४ दिसम्बर सन् १९३४ को एक हवाई जहाज सुभाष बाबू को लेकर दमदम हवाई अड्डे पर उतरा। लाखों की संख्या में उपस्थित जनता ने अपने प्यारे नेता को देखकर जयघोष से आकाश गुंजा दिया। ज्योंही सुभाष बाबू ने जहाज से उतरकर मातृभूमि के पावन वक्ष पर चरण रखा, दो पुलिस सारजेण्ट आ पहुँचे। सरकार ने तब भी उनका पीछा न छोड़ा और सुभाष बाबू पुलिस की बन्द कार में घर पहुँचाये गए।

घर पहुँचते ही सुभाष ने अपनी माता के चरण छुए और पिता के कमरे में आये। रायबहादुर जानकीनाथ मृत्यु शैय्या पर पड़े थे। प्राण-पखेरू शीघ्र उड़ जाने को तड़फड़ा रहा था। परन्तु आत्मा अपने वीर पुत्र का अन्तिम दर्शन करने को अटकी हुई थी। सुभाष के नेत्रों से अश्रुधारा फूट पड़ी। वह वीर जिसने कभी आँसू नहीं बहाया—पत्थर का वह टुकड़ा, जो ब्रिटिश सरकार की

ठोकरें खाकर पथ से न हटा—बङ्गाल का वह शेर जिसकी दहाड़ सुनकर गोराशाही की रूह तक काँप उठती थी।

वही! वही सुभाष!....अपने जन्मदाता का अन्त होता देख कर रो पड़ा, बच्चों की तरह। एक बार आँखें खोलकर रायबहादुर ने सुभाष बाबू की ओर देखा, कुछ कहना चाहा, परन्तु मृत्यु के हाथों ने रोक दिया। और दो मिनट बाद हाड़-मांस का वह बोलता हुआ पंछी पिंजड़े से मुक्त हो अनन्त आकाश की ओर उड़ गया। सुभाष रोते हुए बाहर आये तो देखा कि उनका मकान सशस्त्र पुलिस के पहरे में कर दिया गया है।

सुभाष को देखते ही दो पुलिस आफिसर उनके पास आये और जल्लाद सरकार का एक परवाना उन्हें दिया। उसमें उन्हें आज्ञा दी गई थी कि वे एलगिन रोड वाले अपने मकान की चहारदीवारी से बाहर नहीं जा सकते। परिवार के लोगों के अतिरिक्त किसी भी व्यक्ति से नहीं मिल सकते और न तो पत्र-व्यवहार ही कर सकते हैं। वे अपनी सारी डाक पुलिस अफसर को दिखाने के बाद ही बाहर भेज सकते हैं। सरकारी आज्ञा-पत्र में यह भी कहा गया था कि यदि वे इन आज्ञाओं का उल्लंघन करेंगे तो उन्हें सात साल तक की सजा और काफी जुर्माना देना होगा। सरकार की इस निकृष्ट आज्ञा में कितनी अमानुषिकता तथा पशुता भरी थी! उस समय सुभाष बाबू अपने पूज्य पिता की मृत्यु पर आँसू बहा रहे थे और सरकारी आर्डिनेंस की तलवार उनके सर पर लटक रही थी। दो दिन बाद सरकार ने एक और क्रूर आज्ञा प्रेषित की, जिसमें उन्हें आदेश दिया गया था कि एक सप्ताह के भीतर योरोप चले जायँ, अन्यथा उन्हें पुनः गिरफ्तार कर लिया जायगा।

सुभाष बाबू ने सरकार से एक महीने का अवकाश माँगा जिससे वे अपने पिता का श्राद्ध आदि कर सकें। सुभाष बाबू जब तक योरोप में थे वे एकदम स्वस्थ हो गये थे लेकिन उनकी यह धारणा अस्थायी थी। भारत आने पर उनकी अवस्था खराब होती गई। पहली जनवरी सन् १९३५ को वे अपने बड़े भाई श्री

शरदचन्द्र बोस से मिले। उस दिन उनके पिता का श्राद्ध था और कई लोग घर पर आये थे। परन्तु सुभाष बाबू इतने कमजोर हो गये थे कि वे आगन्तुकों को नमस्कार भर कर सके।

ऐसी अवस्था में उनका योरोप जाना अनिवार्य हो गया। १० जनवरी सन् १९३५ को वे विक्टोरिया नामक जहाज द्वारा वियना के लिए रवाना हो गये। वहाँ उनके आपरेशन का सब प्रबन्ध हो चुका था। पिछली बार जब सुभाष बाबू विलायत गये थे तो उनकी दिनचर्या काफी व्यस्त थी फिर भी जो थोड़ा-बहुत अवकाश मिल सका था, उसका उपयोग कर उन्होंने एक अमूल्य पुस्तक की रचना की थी। उसका नाम था—'The Indian Struggle'। यह पुस्तक अंग्रेजी में थी....पृष्ठ संख्या लगभग ३५० थी। पुस्तक में भारत के स्वातन्त्र्य संग्राम की विषद विवेचना थी।

जब सुभाष बाबू विलायत से लौटकर करांची में उतरे थे तो उसकी एक हस्तलिखित प्रति उनके पास ,थी। यहाँ पर सरकार ने उनकी तलाशी लेकर उक्त पुस्तक जब्त कर ली थी। सौभाग्यवश उस पुस्तक की टाईप की हुई एक दूसरी प्रति इङ्गलैण्ड की विशार्ट कम्पनी के पास थी, जिसे उसने प्रकाशनार्थं ले लिया था। विशार्ट कम्पनी ने यह पुस्तक प्रकाशित की और देखते-देखते इङ्गलैण्ड तथा अमेरिका में उक्त पुस्तक की धूम मच गई। पुस्तक की प्रशंसा सुप्रसिद्ध विद्वानों ने मुक्त कण्ठ से की। रोम्या रोला ने सुभाष बाबू को लिखा था—"आपकी पुस्तक के अध्ययन से भारत की परिस्थिति के विषय में पूर्णतः ज्ञान प्राप्त हो जाता है...."

जार्ज लैन्सवरी ने सुभाष बाबू को बधाई देते हुए लिखा था—"आपकी पुस्तक मैं ध्यान से पढ़ रहा हूँ। विश्व साहित्य की यह अमूल्य वस्तु है—बहुत सुन्दर है यह पुस्तक। ऐसी अद्वितीय रचना के लिए आप बधाई के पात्र हैं...."

उक्त पुस्तक में भारत की अपनी कहानी के अतिरिक्त और कुछ नहीं था। परन्तु भयभीत सरकार को ऐसा लगा कि उक्त पुस्तक से शायद इङ्गलैण्ड और अमेरिका की सरकार भी विरुद्ध

न हो जाय। अतः शीघ्र ही पुस्तक की जब्ती की आज्ञा निकाली और देखते-देखते वह अमूल्य पुस्तक सरकार की निर्दयता का शिकार हो गई। इस पुस्तक की जब्ती का विरोध बड़े-बड़े विद्वानों ने किया। अर्लरसेल, बर्नाड शॉ, एच० जी० वेल्स आदि विद्वानों ने सरकार की इस आज्ञा के विरुद्ध अपने विचार प्रकट किए। भारतीय असेम्बली तथा पार्लियामेंट में खूब आन्दोलन हुआ। लेकिन सरकार की ओर से सर होर ने अपना वही पूर्व परिचित उत्तर दिया—"इस पुस्तक से क्रान्ति को प्रोत्साहन मिलेगा, जो ब्रिटिश शासन के लिए अहितकर होगा...."

पहली बार विलायत जाकर सुभाष बाबू ने कांग्रेस का खूब प्रचार किया था। इस बार भी वे वहाँ जाकर चुपचाप बैठे नहीं। जरा तबीयत ठीक होते ही वे पुनः कार्यों में तल्लीन हो गये। जहाँ भी वे गये, वहाँ अपने देश को विदेशियों की दृष्टि में ऊँचा उठाया। भारत के विरुद्ध विदेशों में होनेवाले मिथ्या सरकारी प्रचार का खण्डन किया—भारत की वास्तविक राजनीति तथा आर्थिक परिस्थिति से संसार के सभ्य लोगों को परिचित कराया। लोगों को यह भी बताया कि स्वराज्य संग्राम का महत्व क्या है? दर्शन, साहित्य, कला एवं संस्कृति में भारत कितना अग्रणी है, यह भी विदेशियों के सम्मुख उन्होंने प्रदर्शित किया।

वे जर्मनी की राजधानी बर्लिन गये तो वहाँ के मेयर ने कलकत्ते के भूतपूर्व मेयर सुभाष बाबू के लिए एक सन्देश भेजा, जिसमें उनके बर्लिन पधारने पर हार्दिक हर्ष प्रकट किया गया था बर्लिन के मेयर ने लिखा था—"हम लोग बर्लिन में कलकत्ते के मेयर सुभाष बाबू का स्वागत करते हुए हार्दिक प्रसन्नता प्रकट करते हैं। हमें यह जानकर परम सन्तोष हुआ है कि कलकत्ता उन्नति कर रहा है...." ३ फरवरी सन् १९३६ को श्री सुभाषचंद बोस पेरिस होते डबलिन पहुँचे। आयरलैण्ड में उनका समारोह के साथ स्वागत हुआ। 'आयरिश प्रजातन्त्र' के प्रधान श्री डी० बेलेरा तथा 'आयरिश भारत स्वतन्त्रता संघ की प्रधान' मैडम

मैकब्राइडा ने उनकी अभ्यर्थना की।

श्री डी० बेलेरा के मुखपत्र 'आयरिश प्रेस' ने सुभाष बाबू के डबलिन यात्रा के सम्बन्ध में आकर्षक शीर्षक देकर समाचार छापा। निर्वासित भारतीय राजदूत का 'मिशन' शीर्षक में उसने सुभाष बाबू की बड़ी प्रशंसा की। आयरिश ब्राडकास्टिंग कार्पोरेशन ने सुभाष बाबू को भारत पर भाषण देने के लिए आमन्त्रित किया। आयरलैण्ड के महान व्यापारियों ने आपसे कई सभाओं में भाषण करने का अनुरोध किया। श्री डी० बेलेरा ने सुभाष बाबू का स्वागत करते हुए उनसे गवर्नमेंट हाउस के प्राइवेट कमरे में आधे घण्टे तक बात-चीत की और भारतीय स्वातन्त्र्य संग्राम के प्रति अपनी आन्तरिक सहानुभूति प्रदर्शित की। सुभाष बाबू ने कहा कि भारतीयों को आयरिश आन्दोलन से बहुत बड़ी प्रेरणा प्राप्त हुई है। लन्दन में बैठा 'जानबुल' सुभाष बाबू की गतिविधियों पर गृद्ध दृष्टि लगाये था। उसे भय था कि ब्रिटिश साम्राज्य के ये दो प्रबल विध्वंसक न जाने क्या षड़यन्त्र रच रहे हैं। 'जानबुल' ने खुफियों का एक दल सुभाष बाबू के पीछे लगा दिया था, परन्तु वीर सुभाष को इसकी परवाह ही क्या थी ?

सुभाष बाबू लन्दन जाना चाहते थे और इसके लिए उन्होंने सरकार से यह प्रार्थना की कि वह उन्हें एक पासपोर्ट लन्दन जाने के लिए प्रदान करे। बड़े-बड़े लोगों ने सुभाष बाबू की इस बात का समर्थन किया था, परन्तु जिस विद्रोही शेर ने समग्र योरोप में घूम-घूम कर ब्रिटिश साम्राज्यवाद का नग्न चित्र लोगों के सामने खींच अभागे भारत की स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए तड़पती हुई दशा का करुण वर्णन किया था उसे सरकार इङ्गलैण्ड जाने की क्यों अनुमति देती। वह जानती थी कि विद्रोही सुभाष की वाणी में जादू है, जो स्वयं उसकी प्रजा को विद्रोहिणी बना देगा। अतः कटु आलोचनाओं के बावजूद भी सुभाषबाबू इङ्गलैन्ड जाने के लिए पासपोर्ट नहीं प्राप्त कर सके।

सुभाष बाबू का स्वास्थ्य ठीक हो चला था। उनकी अन्तरात्मा भारतभूमि का दर्शन करने को तड़फड़ा रही थी। उन्होंने सरकार से भारत लौटने की अनुमति मांगी परन्तु काले हृदय और गोरी चमड़ीवाली सरकार ने उन्हें साफ-साफ उत्तर दे दिया—"यदि भारत में रहना चाहते हो तो जेल में रहो।"

अब सुभाष बाबू के सामने दो ही समस्यायें थी—या तो वे जीवन भर खानाबदोश बनकर संसार भर की खाक छानते फिरें या जेल के सीखचों में बन्द रह देशवासियों की करुण पुकार सुनें। सुभाष बाबू ने खानाबदोशी के स्थान पर जेल में प्राण-त्याग करना उत्तम समझा। अतएव वे अपनी इस काल्पनिक स्वतन्त्रता को लात मारकर भारत चल पड़े। सरकार सुभाष बाबू का आगमन सुनकर कांप उठी।

८ अप्रैल सन् १९३६। बम्बई में जनसमूह उमड़ पड़ा था, अपने निर्वासित नेता का स्वागत करने के लिए। सुभाष को देखते ही जनता ने गगनभेदी नारे लगाकर उनका स्वागत किया।

सुभाष बाबू ने सबसे पहले महात्मा गांधी एवं जवाहरलाल नेहरू का कुशल-क्षेम पूछा। जहाज से नीचे पैर रखते ही, पुलिस कमिश्नर ने उन्हें गिरफ्तार कर लिया। उस समय सुभाष बाबू ने व्यग्र जनता के समक्ष यह सन्देश दिया—

"स्वातन्त्र्य संग्राम की पताका सदैव ऊँची रखो। अपने मार्ग में पड़े हुए तुच्छ कंकड़ों का ख्याल न करो..." पुलिस ने सुभाष बाबू को आर्थर रोड जेल पहुँचा दिया। उनकी गिरफ्तारी से सर्वत्र क्षोभ छा गया और प्रमुख शहरों में हड़ताल हो गई।

उस साल कांग्रेस का अधिवेशन लखनऊ में था—और राष्ट्रपति थे पं० जवाहरलाल नेहरू। सुभाष बाबू ने बहुत प्रयत्न किया कि वे भी उक्त अधिवेशन में सम्मिलित हो सकें परन्तु सरकारी तलवार ने उनकी अभिलाषा का गला काट दिया।

कांग्रेस कार्य समिति ने उनकी गिरफ्तारी के विरोध में यह प्रस्ताव पास किया था—"यह घटना इस बात की प्रबल प्रमाण

है कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने शान्तिपूर्ण राजनीतिक तथा व्यक्तिगत जीवन को नष्ट करने के लिए दमन के हथियारों का प्रयोग करना बन्द नहीं किया।"

उस समय महात्मा गांधी कांग्रेस से अलग हो गये थे, अतः उन्होंने किसी भी विषय पर अपना कोई विचार प्रकट नहीं किया, परन्तु राष्ट्रपति जवाहरलाह नेहरू के गम्भीर गर्जन से लखनऊ कांग्रेस का वृहद् पंडाल गूंज उठा। राष्ट्रपति ने कहा—"हम आराम नहीं कर सकते, क्योंकि आराम करना उन लोगों को धोखा देना है जो चले गये और जाते-जाते आजादी की जलती हुई मशाल हमारे हाथों में पकड़ा गये। यह धोखा है उस काम को, जिसे हमने अपनाया है, उस प्रतिज्ञा को जो हमने की है। यह धोखा देना है उन करोड़ों को जिनकी व्यग्र आँखें रात-दिन हमारी ओर लगी हुई हैं और जो अपने आराम त्याग कर हमारे पीछे चल रहे हैं। भारत के राष्ट्रवाद में और ब्रिटिश साम्राज्यवाद में मेल-मिलाप की कोई गुन्जाइश नहीं। अगर हम साम्राज्यवाद के फन्दे में फँसे रहेंगे तो हमारा नाम, हमारी हैसियत चाहे जो रहे, चाहे जितनी राजनीतिक स्वतन्त्रता हमें मिल जाय परन्तु हम परतन्त्र ही रहेंगे। पीछे घसीटने वाली ताकतों से हमारा सम्बन्ध बना रहेगा और पूँजीवाद का आर्थिक स्वार्थ हमें दबाता रहेगा। आम जनता की बरबादी इसी तरह जारी रहेगी। हमारा कोई जरूरी मसला हल नहीं हो सकेगा। सच्ची राजनीतिक आजादी भी हमें कभी नहीं मिल सकेगी। मुझे विश्वास है कि भारत के वर्तमान प्रश्न को हल करने के लिए समाजवाद ही श्रेष्ठ है। समाजवाद ही भारतीयों की गरीबी, बेकारी तथा गिरी हुई दशा एवं गुलामी दूर कर सकता है। मैं हिन्दुस्तान की आजादी के लिए कोशिश इसलिए करता हूं मेरे अन्तराल का 'पुरुष' इस विदेशी शासन को बर्दाश्त नहीं कर सकता। स्वराज्य प्राप्ति के लिए मेरा प्रयत्न सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था में आमूल परिवर्तन करने के लिए अत्यन्त आवश्यक है....

मैं चाहता हूँ कि कांग्रेस समाजवादी संस्था बन जाय और अब अपने ध्येय की पूर्ति के लिए आगे पग उठाये...."

× × ×

सुभाष बाबू के चिकित्सक डा० रुडोल्फ डेमेल ने कहा था कि यदि स्वास्थ्य की ठीक से रक्षा न की गई तो उनकी पुरानी बीमारी फिर से उभर सकती है। सरकार जानती थी कि पुनः नजरबन्दी से सुभाष बाबू का स्वास्थ्य खराब हो जायगा, परन्तु उसे इस बात की क्या चिन्ता थी। उसे तो चिन्ता यह थी कि यदि सुभाष बाबू जेल के बाहर रहे तो क्रान्ति को अवश्य प्रोत्साहन देंगे और तब सरकार का अन्यायपूर्ण शासन नष्ट हुए बिना नहीं रहेगा। उसने उन्हें बन्दी बनाये रखने में ही लाभ सोचा। कुछ दिनों के बाद वे यरवदा जेल भेज दिए गये। उनकी अवस्था पुनः गिरने लगी।

अप्रैल का महीना। गर्मी अपने यौवन पर थी। जेल की सुदृढ़ दीवारें तप्त तवे-सी गर्म हो जाती थीं। सुभाष अपना जीर्ण शरीर लिए हुए पड़े रहते थे। उनको जेल की उष्णता असह्य थी इसके अतिरिक्त उन्हें रात्रि में एक बन्द कोठरी में ताले के अन्दर रखा जाता था, जिसमें कहीं से हवा जाने का रास्ता न था। वे उस अस्वास्थ्यकर वातावरण में रहकर, अपने पुराने रोग का क्रमशः उभरना देख रहे थे। कुछ दिनों बाद उनकी चिन्ताजनक अवस्था का ख्याल कर सरकार ने उन्हें कुर्सियांग भेज दिया। वहाँ वे अपने भाई के मकान में नजरबन्द रखे गये, परन्तु उनका रोग बढ़ता ही गया। उन्हें ज्वर रहता – अपच थी और हृदयशूल से कभी-कभी वे अत्यन्त बेचैन हो उठते थे। जब असेम्बली में सुभाष बाबू के स्वास्थ्य को लेकर भीषण चर्चा चली तो बाध्य होकर सरकार ने डाक्टर नील रतन तथा मेजर ड्रमण्ड को उनकी परीक्षा के लिए भेजा। उक्त डाक्टरों की रिपोर्ट से सुभाष बाबू को एक्सरे परीक्षा के लिए कलकत्ता मेडिकल कालेज में लाया गया।

सुभाष बाबू के प्रति सरकार के इस बर्बरतापूर्ण व्यवहार से

समग्र भारत क्रोधित था। राष्ट्रपति की आज्ञानुसार समग्र भारत में १० मई सन् १९३६ को सुभाष दिवस मनाया गया। सभायें हुईं और सरकारी दमन नीति की तीव्र निन्दा की गई। जनता ने सरकार के उस व्यवहार पर अपना रोष प्रकट किया—जो उसने श्री सुभाष चन्द बोस को उन पर बिना अभियोग प्रमाणित किए बन्दी बना रखा था। राष्ट्रपति नेहरू ने प्रयाग की सभा में एक ओजस्वी भाषण देते हुए कहा था—"सुभाषचन्द्र बोस की गिरफ्तारी ने एक सिद्धान्त का रूप धारण कर लिया है। हम तब तक चुप नहीं रह सकते, जब तक सरकार से अपने इस अपमान का बदला न ले लें—सुभाष बाबू को अकारण जेल में बन्द रखना समग्र राष्ट्र का अपमान करना है। सरकार ऐसा निन्दनीय कार्य करके हमारी आत्माओं में विद्रोह का संचार कर रही है।

आतंकवाद की सृष्टि स्वयं सरकार कर रही है, न कि सुभाष बाबू! हम सरकार को बता देना चाहते हैं कि हमारी रगों का खून सदियों तक ठण्ढा रहने के बाद अब उबाल लेने लगा है। हम प्रतिशोध लेने के लिए प्रत्याक्रमण करें तो इस बात की सारी जिम्मेदारी इस निकम्मी सरकार पर होगी...."

सुभाष बाबू की बन्दी को लेकर राष्ट्र भर में काफी हलचल मची, आन्दोलन हुआ, सरकार की भर्त्सना की गई, मगर उसके कान देश की पुकार न सुन सके। सब कुछ सुनकर भी देशवासियों की प्रबल पुकार की उपेक्षा की, कोई स्पष्ट उत्तर देने का कष्ट न किया। सदैव टाल-मटोल करती रही वह। आश्चर्य की बात यह थी कि सरकार न तो सुभाष बाबू पर मुकदमा चलाकर उनके अपराध प्रमाणित करती थी और न उन्हें मुक्त ही करना चाहती थी। इङ्गलैंड के प्रसिद्ध पत्र 'मैनचेस्टर गार्जियन' ने विचारपूर्ण टिप्पणी लिखी थी—"हम भाषण और विचारों की स्वतन्त्रता के प्रति अपनी उदार नीति का ढोल विश्व भर में पीटते हैं। तब भी हमारे साम्राज्यवाद के अन्तर्गत कितने ही राष्ट्र ऐसे हैं जिन्हें उक्त सुविधा प्राप्त नही हैं। क्या० मिस्टर सुभाषचन्द्र बोस के साथ

भारतीय सरकार जो दुर्व्यवहार कर रही है। वह अंग्रेजी न्याय के अनुकूल है ?....अथवा यह वही वस्तु है, जिसके लिए अंग्रेज लोग विदेशियों की सभ्यता पर कटाक्ष करते हैं...."

विश्व भर से आवाजें आ रही थीं—"सुभाष बोस को रिहा करो...." सारा संसार ही सुभाष बोस को जेल से बाहर खड़ा देखने को उत्सुक था। अब सरकार को भी यह भली प्रकार विदित हो गया था कि यदि वह शीघ्र ही सुभाष बाबू को आजाद नहीं करती तो सारे संसार में उसकी तीव्र निन्दा होने लगेगी।

अतः उसने सुभाष बाबू को १७ मार्च सन् १९३७ को बिना किसी शर्त के छोड़ दिया। १७ मास के कठोर बन्धन के बाद उन्होंने आजादी की किरण देखी। घर पहुँचने पर प्रमुख कांग्रेसी नेताओं ने सुभाष बाबू का स्वागत किया। वे अत्यन्त शिथिल हो गये थे। वजन भी बहुत घट गया था। शाम को शरीर अतिशय गर्म हो जाया करता था। सुभाष बाबू की यह रिहाई सरकार की कोई उदारता नहीं प्रकट करती थी। वरन् सरकार ने कांग्रेस के बढ़ते हुए प्रभाव को देखकर ही उन्हें रिहा किया था। सरकार क्यों न भयभीत होती ? उस समय भारत के अधिकांश प्रान्तों में कांग्रेसी मन्त्रिमन्डल स्थापित हो चुके थे और देश की समग्र भूमि पर कांग्रेस का शासन था। अब सरकार नये विधान को चालू करने के ख्याल से कुछ नरम बनना चाहती थी।

कुछ दिनों बाद कलकत्ते के श्रद्धानन्द पार्क में समग्र बंगाल की ओर से सुभाष बाबू को अभिनन्दन पत्र दिया गया। इस अभिनन्दन पत्र के उत्तर में उन्होंने अत्यन्त मार्मिक तथा भावपूर्ण स्वर में कहा—"अपने देश की किसी खास समस्या का हल चाहे जो कुछ भी हो किन्तु बातें ऐसी हैं जो सभी के लिए आवश्यक हैं। आज सारा संसार एकाकार हो रहा है और हमारे देश का भाग्य संसार के अन्य-अन्य देशों के साथ जुड़ा हुआ है। आज संसार की क्या स्थिति है और कल क्या होगी ? इस बात का पूर्ण ज्ञान लेकर तब राष्ट्रीय आन्दोलन का संचालन करना चाहिए।

साम्राज्य चाहे जिस रूप में हो, वह नागरिकों की स्वतन्त्रता तथा शान्ति के लिए बाधक है। अतएव स्वतन्त्रता और शान्ति रक्षार्थ हमें साम्राज्यवाद का तीव्र विरोध करना आवश्यक है।

भारतवर्ष एक राष्ट्र है और यदि हम चाहते हैं कि देशवासियों का शीघ्र उद्धार हो जाय तो समस्त भारतीय जनता को भेद-भाव त्यागकर जात-पाँत, ऊँच-नीच की भावना का विस्मरण कर एक राष्ट्रीय झंडे के नीचे एकत्रित होना चाहिए। हमें अपना आन्दोलन इस प्रकार चलाना चाहिए कि हम मजदूरों, किसानों, दलितों तथा मध्यम वर्ग की पूर्ण सहानुभूति प्राप्त कर सकें और हम सब मिल कर साम्राज्यवाद के विरुद्ध जेहाद करें। इस समय सबसे आवश्यक यह है कि हमारे भूखे और गुलाम देशवासियों के आर्थिक एवं राजनैतिक विकास के लिए कांग्रेस की अधीनता में सभी साम्राज्य विरोधिनी शक्तियों का एकीकरण कर सम्मिलित मोर्चा कायम किया जाय और हमारे संघर्ष का मार्ग अहिंसात्मक रहे। आज मैं इस परिस्थिति में नहीं हूँ कि भविष्य का कार्यक्रम बता सकूँ परन्तु यह बिलकुल स्पष्ट है कि आगे मैं अपने समय और शक्ति का अधिकांश भाग अखिल भारतीय कार्यों में लगाना चाहता हूँ। क्षेत्र चाहे राजनैतिक हो अथवा सामाजिक... हमारी मुक्ति उस संघर्ष पर निर्भर है, जो सारे भारत को एकता के बल पर साम्राज्यवाद की शोषण-नीति का मुकाबला करने के लिए चलाया जायगा...."

अन्त में भाषण करते हुए सुभाष बाबू ने कहा—"आप सब लोगों ने मेरे प्रति अपनी जिस हार्दिक सहानुभूति का परिचय दिया है, उसके बदले मेरे पास ऐसा कुछ नहीं जो मैं दे सकूँ। हाँ, इस घटना की पवित्र स्मृति मेरे हृदय में सुरक्षित रहेगी और संकट के समय यह सहानुभूति ईश्वरीय प्रेरणा का काम करेगी....मैं पुनः अपने अटल संकल्प को दुहराता हूँ कि जननी जन्मभूमि की सेवा में उसकी राजनैतिक तथा आर्थिक मुक्ति के लिए मेरे पास जो कुछ है तन-मन-धन से समर्पण है...."

कुछ दिनों के बाद सुभाष बाबू अपने डाक्टर श्री धर्मवीर की

देख-रेख में अपना स्वास्थ्य सुधारने के लिए डलहौजी चले गये।

अपने राजनीतिक जीवन में कई बार सुभाष बाबू ने महात्मा गांधी की आलोचना की थी। अपनी पुस्तक 'भारतीय युद्ध' में भी उन्होंने यही दिखाया था कि महात्मा गांधी की धार्मिक प्रवृत्ति के ही कारण कांग्रेस को असफलता मिल रही है। परन्तु इस बार जेल से छूटते ही उनके विचारों में महान परिवर्तन हो गया। वे अहिंसा के प्रबल पुजारी बन गये। बंग प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के सभापति की हैसियत से उन्होंने बङ्गाल की सभी कांग्रेस कमेटियों को निम्नलिखित सन्देश भेजा—"कांग्रेस शान्तिपूर्ण उपायों से स्वराज्य प्राप्त करना चाहती है। कांग्रेस संस्थाएँ जनता में सदैव अहिंसा का प्रचार करती रहती हैं। देश में इसका प्रभाव अत्यंत संतोषजनक हुआ है। परंतु शोक है कि पिछले समय बंगाल में कुछ हिंसात्मक घटनायें हो चुकी हैं। इनके कारण सरकार को भी जनता पर अपनी हिंसात्मक प्रवृत्ति दिखाने का पूर्ण अवसर मिल गया है। हमें अहिंसा-प्रचार का कार्य करते रहना चाहिए। हमारा कर्तव्य है कि भविष्य में हिंसात्मक कार्यों की सम्भावना दूर करने के लिए यथाशक्ति प्रयत्नशील रहें।"

सुभाष बाबू का स्वास्थ्य सुधरा नहीं। डाक्टरों ने उन्हें पुनः योरोप जाने की आज्ञा दी। इस बार उन्हें पासपोर्ट भी सरलता-पूर्वक मिल गया। उनके आगमन पर ब्रिटिश साम्राज्य की वह वैभवपूर्ण राजधानी लन्दन—'इन्कलाब जिन्दाबाद' के गगनभेदी नारों से गूंज उठी। सैकड़ों भारतीयों ने उनका विक्टोरिया स्टेशन पर स्वागत किया।

भारतीय विद्यार्थी संघ की ओर से उनका अभिनन्दन किया गया। लन्दन पहुँचते ही ब्रिटिश पत्रकारों ने उन्हें घेर लिया।

सुभाष बाबू ने अपने वक्तव्य में कहा—"जब तक सारे विधान को फिर से दुहराया नहीं जाता, तब तक कांग्रेस अपना मंत्रि-मण्डल होते हुए भी कोई बड़ा कार्य करने में असमर्थ है।"

सुभाष बाबू लन्दन में एटली, लैन्सबरी, लार्ड स्नेल आदि से

मिले। लन्दन की जनता अब तक असत्य प्रचार के कारण सुभाष बाबू को प्रबल विद्रोही तथा अंग्रेजों का खूनी समझती थी—परन्तु उनकी सौम्य आकृति देखकर वह सोचने लगी—"क्या यही है अंग्रेजों का विनाशकारी शत्रु ?....क्या यही है ब्रिटिश साम्राज्य का विध्वंसक। यह विद्रोही सुभाष !

कई महीने तक विलायत में रहने के बाद जब सुभाष बाबू की तबीयत कुछ सुधर गई तो उनकी अन्तरात्मा अपने देश के निवासियों का दु:ख-दर्द दूर करने के लिए तड़फड़ा उठी। फलतः वे थोड़े ही दिनों में भारत लौट आये।

देशवासियों ने सुभाष बाबू के अपूर्व त्याग तथा देशभक्ति का बदला, उनको अपना राष्ट्रपति बनाकर चुकाया।

उस साल कांग्रेस का ५१ वां अधिवेशन सूरत जिले के हरिपुरा गाँव में हुआ था। सुभाष बाबू ने राष्ट्रपति का गौरवपूर्ण पद अपने अपूर्व त्याग, प्रबल देशभक्ति और अनुभव, जनसेवा के प्रचंड उत्साह से प्राप्त किया था। उस समय भारतवर्ष जिस क्रान्ति मार्ग पर अग्रसर हो रहा था उसके संचालन के लिए उनके जैसे क्रियाशील नेता को ही राष्ट्रपति पद ग्रहण करना आवश्यक था। उस समय देश में कांग्रेस मन्त्रिमण्डल के पदत्याग से जो वैधानिक संकट उपस्थित हो गया था और जिसके कारण भारत का उज्ज्वल भविष्य अन्धकारपूर्ण दिखाई देने लगा था, उन सबका सामना करने के लिए उनके जैसे नायक की ही आवश्यकता थी।

राष्ट्रपति के पद से श्री सुभाषचन्द बोस ने जो सारगर्भित वक्तृता दी, उसका कुछ अंश यों है—"मित्रों! आज हमारी अवस्था अत्यन्त चिन्ताजनक है। कांग्रेस के भीतर अहिंसा और उग्र पक्षों में ऐसा मतभेद हो गया है कि उसकी उपेक्षा करना व्यर्थ है। आज ब्रिटिश साम्राज्यवाद हमें चुनौती दे रहा है। ऐसे विपत्तिकाल में हमारा कर्तव्य क्या है यह कहने की आवश्यकता नहीं। हमें दृढ़ता के साथ इस तूफान का सामना करना चाहिए और अपने निर्दयी शासकों की दुर्नीति को असफल बनाते रहना चाहिए।

स्वतन्त्रता युद्ध के लिए आज कांग्रेस ही उत्तरदायी साधन है। उसमें उग्र-पंथी भी हो सकते हैं और अहिंसावादी भी। परन्तु दोनों को कांग्रेस की छत्र-छाया में खड़े होकर साम्राज्य-विरोधिनी शक्तियों का एकीकरण करना चाहिए। अन्त में मैं यह कहकर आप सबको आन्तरिक भाव प्रकट करूंगा कि महात्मा गांधी दीर्घजीवी हों, और हमारा देश बहुत दिनों तक उनके नेतृत्व में आगे बढ़ता रहे। यही समस्त भारत की हार्दिक कामना है। भारत महात्मा गांधी को खोना नहीं चाहता, खासकर ऐसे समय में जबकि सब लोगों में ऐक्य स्थापित करने के लिए हमें उनकी आवश्यकता है। क्या अपने युद्ध को कटुता और घृणा से बचाये रखने के लिए हम उन्हें चाहते हैं? स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए हम उन्हें चाहते हैं। हमारा युद्ध केवल ब्रिटिश साम्राज्यवाद से नहीं है, वह संसार भर के साम्राज्य-वाद से है। हम केवल भारत ही के लिए नहीं मनुष्य-मात्र के हित के लिए लड़ रहे हैं। भारत की स्वतन्त्रता का अर्थ है, समस्त मानव जाति का भय से मुक्त हो जाना।"

हरिपुरा कांग्रेस के बाद सुभाष बाबू अपने पन्द्रह साथियों के साथ टीपरा नामक जिले का दौरा करने गये। टीपरा के अधिकांश मुसलमान कांग्रेसी विचार के थे। उन राष्ट्रीय मुसलमानों ने अपूर्व उत्साह और समारोह के साथ उनका स्वागत किया। इस बात से मुस्लिमलीग वालों को बड़ी जलन हुई और उन लोगों ने सुभाष बाबू के स्वागत में विघ्न डालने का प्रयत्न किया। उनके स्वागत के लिए जनता की अपार भीड़ खड़ी थी और उसके पीछे केवल कुछ शरारती मुस्लिम लीगी काले झण्डे लिए खड़े थे। सबेरे ब्राह्मण बरिया की ओर से सुभाष बाबू का स्वागत हुआ और जलूस निकला। जब जलूस स्टेशन रोड से बाहर बढ़ा, मुस्लिम लीग वालों की भीड़ ने ईंट-पत्थर फेंकना आरम्भ कर दिया, जिससे

पन्द्रह आदमी घायल हो गये। सुभाष बाबू को हल्की चोट आई। एक सभा में भाषण करते हुए सुभाष बाबू ने कहा—

"मैं देखता हूँ, भारत के कुछ प्रान्तों में स्थिति इतनी गम्भीर हो गई है कि उसके लिए चेतावनी देना आवश्यक हो गया है। मैं इस प्रकार के कार्यों से सम्बन्ध रखने वाले व्यक्तियों को यह साफ-साफ कह देना चाहता हूँ कि यह ईंट-पत्थर हम लोगों को अपने पवित्र पथ से विचलित न कर सकेंगे। मेरा अनुमान है कि ज्यों-ज्यों जनता की शक्ति बढ़ रही है, त्यों-त्यों मुस्लिम लीग वाले हताश होते जा रहे हैं और वे एक प्रकार से पागल हो उठे हैं। किन्तु हम लोगों को उनके रोष का सामना शान्ति से, गुण्डेपन का सामना अपनी सहनशीलता से और घृणा का सामना अपने प्रेम से करने का ही संकल्प लेना चाहिए। ऐसा करने से ही हम लोग सत्य, अहिंसा तथा धर्म के प्रति अपने को सच्चा प्रमाणित कर सकेंगे...."

× × ×

हरिपुरा कांग्रेस के बाद सुभाष बाबू ने जिस मनोयोगपूर्वक स्वातन्त्र्य संग्राम का संचालन किया, उससे समस्त देश की श्रद्धा उनके प्रति द्विगुणित हो उठी। एक दिन के लिए उन्हें विश्राम न था। बड़े-बड़े नेता भी उनकी कर्मनिष्ठा देखकर अवाक् रह गये। सुभाष बाबू संघ-शासन योजना के पक्षपाती नहीं थे। उन्होंने स्पष्ट स्वर में कहा—"मैं जानता हूँ कि कार्यसमिति के अधिकांश सदस्य इस घृणित योजना के पक्षपाती हैं परन्तु मेरे विचार से वे भूल पर हैं।"

जलपाईगुड़ी में होने वाले राजनैतिक सम्मेलन में सुभाष बाबू

ने अपनी नवीन योजना देश के सामने रखी। उन्होंने कहा—"आगामी कांग्रेस अधिवेशन में हमें यह घोषित कर देना चाहिए कि हम 'संघ-शासन-योजना' से सन्तुष्ट नहीं हो सकते। यदि सरकार हमें ६ महीने के भीतर पूर्ण स्वाधीनता प्रदान नहीं करती तो हम उसके विरुद्ध सभी शक्तियों का एकीकरण करके भयानक स्वातंत्र्य संग्राम की सृष्टि करेंगे और हमारा नारा होगा—"अंग्रेजों भारत छोड़ दो...."

राष्ट्रपति के चुनाव का समय आ गया। सुभाष बाबू पुनः उसके लिए खड़े हुए।

उधर गांधीजी का महान बल पाकर डाक्टर पट्टाभि सीतारमैया भी खड़े हो गये थे। कांग्रेस के इतिहास में यह संघर्ष अभूतपूर्व घटना थी। दोनों ओर से चुनाव के लिए वृहद् आन्दोलन हुए। राष्ट्रपति के चुनाव में बहुत बड़ी-बड़ीशक्तियाँ सुभाष बाबू के विपक्ष में कार्य कर रही थीं। कांग्रेस कार्यसमिति के सात सदस्यों ने, सरदार बिट्ठल भाई के नेतृत्व में सुभाष बाबू के विरुद्ध अपनी पूरी शक्ति लगा दी थी। पण्डित जवाहरलाल नेहरू भी सुभाष बाबू के खड़े होने के विपक्ष में थे। सुभाष बाबू के राष्ट्रपति होने में महान शङ्का उठ खड़ी हुई। समग्र देश भयभीत दृष्टि से अपने नेताओं का संग्राम देख रहा था।

२६ जनवरी सन् १६३८ ई० को हर प्रान्त में राष्ट्रपति के चुनाव के लिए वोट पड़े। ३३०७ प्रतिनिधियों ने इस चुनाव में भाग लिया था, जिसमें ३३० तटस्थ रहे। शेष २६७७ प्रतिनिधियों में से किसी ने सुभाष बाबू को वोट दिया और किसी ने डाक्टर पट्टाभि सीतारमैया को। आगे की तालिका से यह स्पष्ट हो जायगा कि किस स्थान पर कितने वोट सुभाष बाबू को मिले और कितने पट्टाभि सीतारमैया को।

स्थान	सुभाष	पट्टाभि	स्थान	सुभाष	पट्टाभि
अजमेर	२०	६	आसाम	३४	२२
बङ्गाल	४४०	७४	बर्मा	८	६
दिल्ली	१०	५	कर्नाटक	१०६	४१
केरल	८०	१८	पंजाब	१८२	८६
तामिलनाड	११०	१२०	संयुक्तप्रान्त	२५९	१८५
बम्बई	१२	४	महाकोशल	६७	६८
महाराष्ट्र	७७	८६	नागपुर	२२	१७
सीमाप्रान्त	१८	२३	सिन्ध	१३	१२
बरार	११	२१	उड़ीसा	४४	९९
बिहार	७०	१८७	आन्ध्र	२८	१८१
गुजरात	५	१००			
	८५३	६४४		७६३	७१७

बहुमत से सुभाष बाबू विजयी हुए। कांग्रेसजनों ने बाध्य होकर राष्ट्रपति का पद सुभाष बाबू को समर्पित किया।

सुभाष बाबू की विजय से देश के बड़े-बड़े नेताओं को यह विदित हो गया कि भारतवासी अपने स्वातन्त्र्य संग्राम का संचालन क्रान्ति के प्रबल पुजारी सुभाष बाबू द्वारा कराना चाहते हैं।

सुभाष बाबू की महान विजय से महात्मा गान्धी जैसे आदर्श व्यक्ति भी विक्षुब्ध हो उठे। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में अपनी आन्तरिक व्यथा प्रकट की—"डाक्टर पट्टाभि सीतारमैया की हार मेरी हार है...." आगे चलकर उन्होंने कांग्रेस कार्यसमिति से कहा कि उसके वर्तमान सदस्य त्यागपत्र दे दें और सुभाष बाबू अपनी नीति मानने वाले सदस्यों द्वारा कार्य समिति का निर्माण करें।

गांधीजी ने अपनी इस हार से विक्षुब्ध होकर अपने महान व्यक्तित्व की बाजी लगा दी थी। सुभाष बाबू के चुनाव ने कार्यसमिति के सदस्यों में खलबली डाल दी। २ फरवरी सन् १९३९ के दिन कांग्रेस कार्यसमिति के सदस्यों ने त्यागपत्र दे दिया।

सरदार विट्ठल भाई पटेल, मौलाना अब्दुल कलाम आजाद, डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद आदि भी उन त्यागपत्रदाताओं में थे। पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने त्यागपत्र नहीं दिया था फिर भी उस समय जो वितण्डावाद उपस्थित हो गया था वह उन्हें नापसन्द था।

कांग्रेस कार्यसमिति के त्यागपत्र दे देने से सुभाष बाबू चिन्तित हो उठे। वे जानते थे कि कांग्रेस के महान कर्णधारों को उनका राष्ट्रपति होना स्वीकार नहीं है। परन्तु वे क्या करते? भारत की जनता ने अपनी अटूट श्रद्धा और भक्ति से उनके गले में जो विजय की माला पहनाई, उसे सुभाष बाबू निकाल कर फेंक भी तो नहीं सकते थे। कांग्रेस के अन्तर्गत दिनोंदिन मनोमालिन्य बढ़ता जा रहा था। त्रिपुरा कांग्रेस अधिवेशन भी नजदीक आ गया। सुभाष बाबू की मानसिक चिन्ता ने उनके जर्जर स्वास्थ्य पर बहुत बुरा प्रभाव डाला और वे रोग-शैय्या पर पड़ गये।

सुभाष बाबू ने सोचा था कि कांग्रेस अधिवेशन का समय आते-आते उनका स्वास्थ्य ठीक हो जायगा परन्तु वे इतने ज्यादा बीमार पड़ गये कि बोलना तक मुश्किल हो गया। अन्त में उन्होंने बीमारी की ही अवस्था में त्रिपुरा जाने का विचार किया। डाक्टरों ने उनके इस निश्चय पर असहमति प्रकट की। स्वयं महात्मा गांधी ने भी उनसे त्रिपुरा न जाने का अनुरोध किया। मगर देश भक्त वीर सुभाष कब मानने वाले थे।

५ मार्च सन् १९३९ को बम्बई मेल से सुभाष बाबू कलकत्ते से चल पड़े। घर से हबड़ा स्टेशन तक उन्हें ऐम्बुलेंस कार में लाया गया। इसी से उनकी बीमारी की चिन्ताजनक अवस्था प्रकट हो जाती है। ट्रेन में उनके लिए रोगियों का डब्बा अलग से जोड़ा गया। उनके साथ डाक्टर तथा घर के अन्य लोग भी थे।

६ मार्च १९३९ को वे जबलपुर स्टेशन पर पहुँचे। वहाँ पर स्वागताध्यक्ष तथा अन्य नेताओं ने राष्ट्रपति का स्वागत किया।

स्टेशन से सुभाष बाबू ऐम्बुलेंस कार पर त्रिपुरा गये। वहाँ

पहुँचने पर आपको १०३ डिग्री बुखार था। शिविर में पहुँचते ही सरदार पटेल आदि नेताओं ने आपकी अभ्यर्थना की और शोकित हृदय से आपकी तबीयत का हाल पूछा। १० मार्च १६३६ ई० को प्रातःकाल ५२ सुसज्जित हाथियों का शानदार जलूस निकला, जो चार मील घूमकर विष्णुदत्त नगर में समाप्त हुआ।

अस्वस्थता के कारण राष्ट्रपति सुभाष बाबू उस जलूस में सम्मिलित नहीं हो सके। रथ पर उनका बड़ा-सा फोटो रखा हुआ था। प्रत्येक हाथी पर कांग्रेस के पुराने अध्यक्षों का चित्र था।

त्रिपुरा में कांग्रेस का ५२ वाँ अधिवेशन १० मार्च सन् १६३६ को प्रारम्भ हुआ। राष्ट्रपति के निर्वाचन के कारण जो मतभेद उपस्थित हो गया था वह यहाँ पर तीव्रतर हो गया।

राष्ट्रपति के रोगशैय्या पर रहने के कारण वातावरण और भयावह प्रतीत हो रहा था। सुभाष बाबू इतने अशक्त हो रहे थे कि स्वयं मुँह से दो-चार शब्द बोल भी नहीं सकते थे। उनके अभिभाषण को अंग्रेजी में श्री शरदचन्द्र बोस ने पढ़कर सुनाया और हिन्दी में आचार्य नरेन्द्रदेव ने।

सुभाष बाबू ने अपने अभिभाषण में कहा था—"अब हमें 'संघ योजना' की ओर आँखें गड़ाये चुपचाप बैठे रहना न चाहिये बल्कि अपने स्वराज्य का दावा ब्रिटिश सरकार के सामने उपस्थित करके निश्चित अवधि के भीतर सन्तोषजनक उत्तर न मिले तो सारे भारत में सत्याग्रह प्रारम्भ कर देना चाहिए। देशी राज्यों की प्रजा अपनी स्वतन्त्रता अथवा उत्तरदायी शासन के सम्बन्ध में जो आन्दोलन कर रही है उसका नेतृत्व अब कांग्रेस कार्य-समिति के हाथों में दे देना चाहिए..."

११ मार्च सन् १६३६ को सुभाष बाबू की अवस्था अत्यन्त चिन्ताजनक हो गई। ज्वर १०५ डिग्री हो गया। सभी नेता तथा कितने डाक्टर और सिविल सर्जन सुभाष बाबू के शिविर में आ गये। सिविल सर्जन तथा डाक्टर गिल्डर ने सुभाष बाबू की परीक्षा की और उनसे तुरन्त जबलपुर अस्पताल जाने का अनुरोध किया

परन्तु यह बात उन्होंने स्वीकार न की। पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने सुभाष बाबू को बहुत समझाया तो उन्होंने कहा—"मैं जबलपुर के अस्पताल में जाने के लिए नहीं आया हूँ ...दूसरी जगह जाने के बजाय यदि इस पवित्र स्थान पर पूज्य नेताओं की गोद में मेरी मृत्यु हो जाय तो मुझसे बढ़कर भाग्यशाली कौन होगा।"

राष्ट्रपति श्री सुभाषचन्द बोस की अस्वस्थता के कारण त्रिपुरा में विघटित कार्यसमिति का पुनर्निर्वाचन न हो सका। कार्यसमिति का प्रश्न विकट हो चला था। न इसका निर्वाचन होता था और न कांग्रेस का कार्य ही हो पाता था। इस विषय में राष्ट्रपति तथा महात्मा गांधी के बीच बराबर पत्र-व्यवहार हो रहा था। लोग समझने लगे थे कि महात्मा गांधी और सुभाष बाबू में सहयोग दुष्कर है। कविवर रविन्द्रनाथ टैगोर तथा आचार्य प्रफुल्ल चन्द राय ने गांधीजी और सुभाष बाबू से प्रार्थना की कि आप दोनों आपसी मतभेद के निवारणार्थ एक बार अवश्य मिलें।

पं० जवाहरलाल नेहरू ने भी सुभाष बाबू से मिलकर इसके लिए अनुरोध किया था। फलतः २७ और २८ अप्रैल को कलकत्ते में महात्मा गांधी और सुभाष बाबू का मिलन हुआ।

सुभाष बाबू चाहते थे कि कार्यसमिति के पुनर्गठन के लिए महात्मा गांधी ही नाम पेश करें परन्तु गांधी ने कहा—"जानता हूँ कि हमारे और आपके तथा कांग्रेस जनों के मध्य सैद्धान्तिक मतभेद है। मैं यह नहीं चाहता कि अपनी ओर से सदस्यों के नाम प्रस्तावित करके आप पर बलपूर्वक दबाव डालूँ। आप अपनी इच्छानुसार निर्वाचन करने के लिए स्वतन्त्र हैं...."

महात्मा गांधी का यह उत्तर सुनकर सुभाष बाबू को चिंता हो आई। कांग्रेस में बढ़ती हुई फूट की मात्रा वे स्पष्ट देख रहे थे और वे नहीं चाहते थे कि केवल उन्हीं के कारण, इतने दिनों का वह विशाल संगठन धूल में मिल जाय। अतः सुभाष बाबू ने बहुत सोच-विचार के बाद पदत्याग करना ही निश्चय किया।

२६ अप्रैल १६३६ को कलकत्ते में कांग्रेस कमेटी की बैठक

हुई जिसमें सुभाष बाबू ने पदत्याग कर दिया। पं० जवाहरलाल नेहरू आदि नेताओं ने उनसे बहुत अनुरोध किया परन्तु सुभाष बाबू अपना त्यागपत्र वापस लेने को प्रस्तुत न हुए। घटनाचक्र ने जो मार्ग पकड़ा उसमें सभी देश-प्रेमी दुखी हुए बिना न रह सके। आशा की जाती थी कि सुभाष बाबू और महात्मा गांधी मिलकर इस झगड़े का अन्त कर देंगे और कार्य सुचारू रूप से चलने लगेगा, परन्तु गांधी-सुभाष मिलन से यह समस्या सुलझ न सकी।

हिन्दी के सुप्रसिद्ध दैनिक 'आज' के सम्पादक ने टिप्पणी लिखकर अपना खेद प्रकट किया। माननीय सम्पादक ने लिखा था—"हमारे आदरणीय, पुराने और पूज्य नेताओं को उदारता से काम लेना चाहिए था। गांधीजी राष्ट्र के हृदय में जिस ऊंचे स्थान पर हैं, उसकी मर्यादा की रक्षा इस बात में थी कि उनके दल के कहे जाने वाले लोग उदार हृदय से काम लेते....ऐसा नहीं हुआ, इसी का खेद है। जो हुआ वह न केवल अहितकर बल्कि पुराने नेताओं और गांधीजी के पद के लिए हानिकारक भी है?"

अन्त में कार्यसमिति को सुभाष बाबू का त्याग-पत्र स्वीकार करना पड़ा। उसी के बाद नई कार्यसमिति का निर्वाचन हुआ।

अपना नाम लिए जाने पर पं० जवाहरलाल नेहरू ने नई कार्यसमिति में रहने से इनकार कर दिया। उन्होंने कहा कि कार्यसमिति से बाहर रहकर वह अधिक कार्य कर सकेंगे।

× × ×

६ मई सन् १६३६ को कलकत्ते के हाजरा पार्क में एक विशाल सभा हुई। सभापति थे कलकत्ता के मेयर।

सभा में सुभाष बाबू ने कहा—"मैं राष्ट्रपति तभी बना रह सकता था, जब पुरानी कार्य-समिति को बिना किसी परिवर्तन के फिर से नियुक्त करना स्वीकार किया जाता। मगर मुझ पर पाबन्दियां लगाई गईं, जो मुझे मंजूर न थीं। मैं नहीं चाहता था

कि काठ का पुतला बनकर कार्यसमिति के हाथों का खिलौना न बनूं...."

इसके बाद सुभाष बाबू ने उग्रपन्थियों की एक संस्था फारवर्ड ब्लाक नाम से स्थापित करने की घोषणा की। इस संस्था का उद्देश्य था, शीघ्र से शीघ्र सरकार से पूर्ण स्वराज्य प्राप्त करना। इसके लिए सुभाष बाबू ने एक लाख रुपये एकत्रित करने की घोषणा की। तुरन्त ही एक चन्दा-संग्रह कर्ता कमेटी बनाई गई।

कुछ दिनों बाद नेशनल हेरल्ड में पं० जवाहरलाल नेहरू ने लिखा था—"सुभाष बाबू की अनेक बातों से मैं सहमत न था किन्तु मुझे विश्वास था कि वे त्रिपुरा के निर्णयों को मानते हुए कांग्रेस का चुनाव सुचारु रूप से चलाने की कोशिश कर रहे थे। दोनों पक्षों में समझौता क्यों नहीं हो सकता था यह बात मेरी समझ में न आई। विरोध हुआ, जिसके लिए कोई न्यायसंगत कारण नहीं था और सुभाष बाबू को पदत्याग करना पड़ा।

मुझे इससे बहुत खेद हुआ। सुभाष बाबू के पदत्याग से मत-भेद की खाई और गहरी हो गई। पुरानी कार्य-समिति के सदस्यों से मेरा मन बहुत पहले से नहीं मिलता था किन्तु व्यापक हित की दृष्टि से मैं उसका सदस्य बना हुआ था। कलकत्ते की बैठक के बाद मैंने बाहर रहना ही ठीक समझा। यद्यपि कार्यसमिति का विरोध या उससे असहयोग करने का मेरा इरादा न था।"

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि पं० नेहरू कांग्रेस के हिमायती होते हुए भी सुभाष बाबू के कार्यक्रम को पसन्द करते थे।

जवाहरलाल नेहरू ने अग्रगामी दल (फारवर्ड ब्लाक) के सम्बन्ध में लिखा था—"सुभाष बाबू ने जो अग्रगामी दल बनाया है, वह हाल की घटनाओं का परिणाम है किन्तु इतना होते हुए भी वह वांछनीय नहीं कहा जा सकता। अभी तक जो कुछ मालूम हो सका है, यह दल उन विरोधियों को लेकर बनाया जा रहा है जिनमें एकता स्थापित करने वाली एक ही बात है—अर्थात् कांग्रेस का संचालन करने वाले व्यक्तियों का विरोध करना।

इसका द्वार सबके लिए खुला है। इसमें कोई रुकावट नहीं, जिससे अवांछनीय लोगों को इसमें होने से रोकना असम्भव हो सके।

मुमकिन है, इस दल में फासिस्ट और साम्प्रदायिक प्रवृत्ति के लोग भी सम्मिलित हो जायँ और कांग्रेस को हानि पहुँचाते हुए अपने उद्देश्यों की पूर्ति का प्रयत्न करें। यदि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाय तो सुभाष बाबू उसका सामना किस तरह करेंगे?" इससे प्रकट है, पण्डित नेहरू अग्रगामी दल के विरोधी नहीं थे, सुभाष बाबू की कार्य-प्रणाली उन्हें लाभप्रद नहीं प्रतीत होती थी, उन्हें आशङ्का थी कि कहीं इस दल से कांग्रेस को हानि न पहुँचे।

२७ मई सन् १६३६ तक सुभाष बाबू की तबीयत विशेष सुधर न सकी। डाक्टरों ने उनसे मिलने की मनाही कर दी परंतु सुभाष बाबू को पलङ्ग पर पड़े रहना स्वीकार न था। वे दल के प्रचारार्थ समग्र भारत का दौरा करते रहे। १ जुलाई को कांग्रेस कमेटियों के सम्बन्ध में दो प्रस्ताव पास हुए। सुभाष बाबू ने लंबा वक्तव्य निकालकर समग्र जनता से अपील की कि वे उन प्रस्ताओं के विरुद्ध प्रदर्शन करें। इस विरोध प्रदर्शन के लिए ६ जुलाई सन् १६३६ का दिन निश्चित किया गया।

पहले तो मानवेन्द्रनाथ राय सुभाष बाबू के पक्ष में थे। परन्तु उनका यह विरोध प्रदर्शन उन्हें पसन्द न आया। श्री राय ने पण्डित नेहरू के पास तार भेजकर उनसे प्रार्थना की कि सुभाष बाबू को विरोध प्रदर्शन न करने के लिए समझायें। राष्ट्रपति डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद ने कहा कि कांग्रेस कमेटी के निर्णय के विरुद्ध कोई भी प्रदर्शन न्यायसंगत नहीं।

राजेन्द्र बाबू के इस कथन पर सुभाष बाबू ने एक तगड़ा वक्तव्य दिया। उन्होंने कहा—"कांग्रेसजनों का बहुमत अपनी ओर करने के लिए जो हमारा वैधानिक और लोकतान्त्रिक अधिकार है, वह राजेन्द्र बाबू अपने वक्तव्य में हमसे छीन रहे हैं। सार्वजनिक प्रचार ही एक ऐसा मार्ग है जिससे बहुमत अपनी ओर किया जा सकता है। सार्वजनिक विरोध सभायें करना प्रचार का

सबसे न्यायपूर्ण ढङ्ग है। क्या कांग्रेस या भारतीय कांग्रेस कमेटी में एक बार जो प्रस्ताव पास हो जाय, उसको बदलने का कोई प्रयत्न न करना चाहिए। अगर हम राजेन्द्र बाबू की यह बात मान लें तो कांग्रेस के प्रस्तावों के विरुद्ध हमारा मुँह हमेशा के लिए बन्द हो जायगा। हम राजेन्द्र बाबू से प्रार्थना करते हैं कि अनुशासन के नाम पर कांग्रेस के अन्दर लोकतन्त्र को धक्का न पहुँचायें। १६१६ के बाद जितने सत्याग्रह संग्राम हुए हैं, उनकी वे जांच करें और हमें बताने की कृपा करें कि उनमें कितनी बार प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी की अनुमति पहले से प्राप्त कर ली गई थी। दूसरे प्रस्ताव में, प्रान्तीय मन्त्रिमण्डलों पर नजर रखने का प्रांतीय कांग्रेस कमेटियों का अधिकार छीना गया है। इन प्रस्तावों से जो परिस्थिति उत्पन्न हो गई है, उसके विरोध में कांग्रेसजनों का सहयोग प्राप्त करना हमारा कर्तव्य है। हम आशा करते हैं कि राजेन्द्र बाबू हमारा दृष्टिकोण मान लेंगे और देश भर के कांग्रेसजन ६ जुलाई को विरोध दिवस सफलतापूर्वक मनाने में हमारा साथ देंगे।

सुभाष बाबू को कांग्रेस कमेटी का वह प्रस्ताव स्वीकार नहीं था जिसमें कहा गया था कि बिना प्रांतीय कांग्रेस कमेटी की अनुमति के कोई भी व्यक्ति सत्याग्रह संग्राम में भाग नहीं ले सकता। आचार्य नरेन्द्रदेव ने अपने एक वक्तव्य में कहा था—"कांग्रेस कमेटियों और पदाधिकारियों को इस विरोध प्रदर्शन में भाग नहीं लेना चाहिए। पर कांग्रेसजन व्यक्तिगत रूप से कांग्रेस की नीति के विरुद्ध मत प्रदर्शन कर सकते हैं।"

परिडत नेहरू ने इस विरोध प्रदर्शन को उच्छृङ्खलता कहते कहते हुए अपना वक्तव्य दिया—"कांग्रेस संगठन के विरुद्ध कोई भी प्रदर्शन, कांग्रेस के लिए खुली चुनौती है। यदि हमने यही मार्ग अपनाया तो हमारी संस्था नष्ट-भ्रष्ट हो जायगी, साम्राज्य-विरोधी युद्ध पीछे पड़ जायगा और वर्ग की वृहद लड़ाई, पार्टी-बन्दी तथा दलगत संघर्षों में परिवर्तित हो जाएगी। इस प्रकार हम

उस सङ्कट का मुकाबला करने तथा राष्ट्रीय माँग के निश्चय को कार्यान्वित करने के लिए अपनी तैयारी कर रहे हैं...."

सुभाष बाबू के इस कार्य के विरुद्ध देश के सभी नेता थे—परन्तु सुभाष बाबू हार मानने वाले प्राणी न थे। उन्होंने बम्बई श्री जिना तथा श्री अम्बेडकर से भेंट की। बम्बई में सुभाष बाबू ने अग्रगामी दल के दफ्तर का उद्घाटन किया। उस समय उन्हें १० हजार रुपये की थैली भेंट की गई। बम्बई से सुभाष बाबू जबलपुर आये। वहाँ उन्होंने महाकौशल युवक सम्मेलन के सभापति का पद ग्रहण किया।

सुभाष बाबू की वाणी में ऐसी आकर्षण शक्ति थी कि जहाँ कहीं वे गये, वहाँ के लोगों पर जादू का प्रभाव पड़े बिना नहीं रहा। अग्रगामी दल की कार्यकारिणी समिति का गठन शीघ्र हो गया। सुभाष बाबू अध्यक्ष और शार्दूलसिंह कवीश्वर उपाध्यक्ष बनाए गए। प्रधान मन्त्री लाला शङ्करलाल हुए और सहायक मन्त्री हुए विश्वम्भरदयाल त्रिपाठी तथा श्री के० एफ० नरीमैन। श्री नाथालाल डी० पारिख कोषाध्यक्ष बनाये गये। सदस्य निर्वाचित हुए सर्वश्री अकबर शाह, वकील नौशेरा, डा० सत्यपाल एम० एल० ए०, रामकृष्ण, आर० एस० रुइकर, एन० दत्त मजुमदार, सेठ दामोदर स्वरूप, इन्दुलाल याज्ञिक और अब्दुल रहमान एम० एल० ए०।

भारतीय सिविल सर्विस से त्यागपत्र दिए हुए श्री० एच० बी० कामथ प्रचार मन्त्री नियुक्त हुए। महात्मा गांधी ने समग्र भारतीय जनता को आदेश देते हुए कहा—"जिन सभाओं में विरोध प्रदर्शन हों, वहाँ राष्ट्रीय झंडा न फहराया जाय और न तो राष्ट्रीयगीत 'बन्देमातरम्' ही गाया जाय...."

अन्त में ९ जुलाई का दिन आ ही गया। कांग्रेस के बड़े-बड़े कार्यकर्ता उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा कर रहे थे कि देखें सुभाष बाबू का विरोध प्रदर्शन कैसे सफलीभूत होता है, क्योंकि उनका विश्वास था—देश की सारी जनता कांग्रेस के साथ है।

परन्तु उनका यह विश्वास ९ जुलाई को निराधार प्रमाणित हो गया कि भारतीय जनता अब केवल अहिंसा की माला लिए चुपचाप खड़ी नहीं रहना चाहती। वह क्रान्ति चाहती है और इसके लिए उसने सुभाष बाबू जैसा विद्रोही नेता चुना है।

उस दिन देश भर में विरोध प्रदर्शन हुए। सुभाष बाबू की सफलता ने जोश की लहर लहरा दी। कांग्रेस की ओर से यह घोषणा की गई कि जिन कांग्रेसजनों ने प्रदर्शन में भाग लिया है उनके विरुद्ध अनुशासन की कार्रवाई की जायगी। इस पर सुभाष बाबू ने कहा—"मैं अनुशासन की कार्रवाई से डरता नहीं। अग्र-गामी दल कांग्रेस को क्रान्ति के मार्ग पर ले जायगा...."

पण्डित नेहरू ने कहा—"जिन पदाधिकारियों को कांग्रेस के प्रस्तावों का विरोध करना था, उन्हें पहले अपने पदों से त्यागपत्र दे देना चाहिए था....फिर भी ९ जुलाई को जिन्होंने विरोध प्रदर्शन में सहयोग दिया उनको अनुशासन भङ्ग के लिए दण्ड देना मेरे विचार से ठीक नहीं है ..." पण्डित जवाहरलाल नेहरू के वक्तव्य से यह प्रकट होता था कि वे सुभाष बाबू, नरीमैन आदि नेताओं के विरुद्ध अनुशासन भंग की कार्रवाई के विपक्ष में थे।

११ जुलाई सन् १९३९ ई० के दिन वर्धा में अखिल भारत-वर्षीय कांग्रेस कार्यसमिति की बैठक हुई। देश के बड़े-बड़े नेता, सुभाष बाबू आदि भी उपस्थित थे। सुभाष बाबू के विरुद्ध अनु-शासन भङ्ग की कारवाई की गई। फलतः उन्हें तीन वर्ष के लिए कांग्रेस से निष्कासन का दण्ड दिया गया। इन तीन वर्षों के अन्दर वे किसी भी कार्यसमिति के सदस्य नहीं हो सकते थे।

कार्यसमिति का निर्णय सुनकर सुभाष बाबू ने केवल इतना ही कहा—"बस इतनी ही सजा।" सुभाष बाबू के निष्कासन दण्ड पर पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने कहा—"मैं अधिक कुछ कहना नहीं चाहता पर मुझे बहुत खेद है...."

सुभाष बाबू के बड़े भाई श्री शरदचन्द्र बोस ने व्यङ्गपूर्ण स्वर में कहा—"कार्यसमिति को उसकी राजनीतिक समझदारी के लिए

बधाई देता हूं ?" भूतपूर्व मन्त्री श्री नौसेरअली ने कहा—"कार्य-समिति इस हद तक जायगी, ऐसा बंगालवालों का अनुमान न था। यह अहिंसा नहीं असहिष्णुता है...." श्री सुरेशचन्द्र बनर्जी ने कहा—"इससे सुभाष बाबू की कुछ भी हानि नहीं होगी...."

"मुझे सुभाष बाबू के लिए खेद है परन्तु उन्होंने स्वयं संकट का आह्वान किया...." श्री रफी अहमद किदवई ने कहा।

'आज' के विद्वान सम्पादक ने लिखा—"कार्यसमिति ने उचित ही किया, पर हम यह अवश्य कहेंगे कि दण्ड अत्यन्त कठोर है.... इतना कठोर कि उसमें प्रतिहिंसा की गन्ध आती है।"

अभिप्राय यह है कि उस समय कांग्रेस के सभी नेताओं ने दबी जबान से कांग्रेस कार्यसमिसि के निर्णय पर असन्तोष प्रकट किया था। श्री शिवप्रसाद गुप्त ने कहा—"कार्यसमिति अपने अदूरदर्शितापूर्ण कार्यों से अपनी और कांग्रेस की हत्या कर रही है। वह समय निकट है, जब अपनी जिद और अभिमान के कारण यह भी नष्ट होगी और साथ ही कांग्रेस को भी ले डूबेगी...."

१२ अगस्त १६३६ को सुभाष बाबू ने एक वक्तव्य दिया—"मैंने देश को वैध तरीकों और सुधारवाद की ओर बराबर न बहने जाने की चेतावनी दी थी—कांग्रेस की क्रान्तिकारी मनोवृत्ति को नष्ट कर देने का उपक्रम करने वाले प्रस्तावों का विरोध तथा वामपंथियों के संगठन का प्रयत्न किया था और आनेवाले संघर्ष के लिए तैयार रहने की देश से अपील की थी—बस, इसी अपराध के कारण मुझे यह दण्ड दिया गया। मुझे इसकी चिन्ता नहीं है। मैं पहले से भी अधिक निष्ठा के साथ कांग्रेस की सेवा करूंगा। राष्ट्र के एक तुच्छ सेवक के नाते मैं अब कांग्रेस और देश का कार्यकर्ता रहूंगा...."

२६ अगस्त १६३६ को सुभाष बाबू पटना आये। उनका समारोहपूर्वक स्वागत हुआ परन्तु कुछ कुत्सित मनोवृत्ति वाले, जो सुभाष बाबू को कांग्रेस का विरोधी समझते थे, अपनी चाल से बाज न आये। उन्होंने उन्हें काले झण्डे दिखाये—सभा में

ईंट-पत्थर-जूतों की वर्षा की। सुभाष बाबू ने स्थिर दृष्टि से अपना अपमान देखा, जिसके कुछ मूर्ख उत्तरदायी थे। इतनी खलबली मची कि उन्हें सभा का कार्य स्थगित कर देना पड़ा।

इसके बाद सुभाष बाबू ने जिले भर का दौरा किया। स्थान-स्थान पर जनता ने दिल खोलकर उनका स्वागत किया और अभिनन्दन-पत्र समर्पित किए गये। पण्डित नेहरू ने 'अग्रगामी दल' के विषय में जो विचार प्रकट किए थे, उस पर बम्बई में बोलते हुए सुभाष बाबू ने कहा था—"पण्डित नेहरू ने फारवर्ड ब्लाक के सम्बन्ध में कुछ बातें कही हैं। यद्यपि 'अग्रगामी दल' एक प्रगतिशील संस्था है और उसने काफी उन्नति कर ली है फिर भी दुर्भाग्य से वह अभी तक नेहरूजी की सहानुभूति न पा सकी। मैं नहीं समझता कि अच्छे और बुरे से नेहरू जी का अभिप्राय क्या है और न मैं यही समझ पा रहा हूँ कि उन्होंने अग्रगामी दल को बुरा क्यों बताने की कृपा की है? इस दल के सम्बन्ध में और चाहे जो कुछ कहा जा सके, पर इतना तो स्वीकार करना ही होगा कि इसकी नीति और कार्यक्रम बिल्कुल निश्चित हैं। वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीयता के सम्बन्ध में इसकी स्थिति एकदम स्पष्ट और असन्दिग्ध है। चाहे जो हो—इसमें तो सन्देह नहीं कि अग्रगामी दल में उस अन्तर्राष्ट्रीयता से कम ही बुराई है, जो हवा में किले बनाती है और हमें किसी लक्ष्य तक नहीं पहुँचाती...."

यह स्पष्ट था कि कांग्रेस ब्रिटिश सरकार के प्रति एकाएक आन्दोलन का सृजन नहीं करना चाहती थी परन्तु अग्रगामी दल संग्राम छेड़ देने के पक्ष में था। उन दिनों द्वितीय महायुद्ध प्रारम्भ हो चुका था और हिटलर के नाम से समग्र यूरोप काँप रहा था। अग्रगामी दल वालों की राय में यह समय अपना संग्राम छेड़ देने के लिए अत्यधिक उपयुक्त था। वे जानते थे कि हिटलर के आतंक के कारण ब्रिटिश सरकार भयभीत हो उठी है और यदि इस समय हमने स्वातन्त्र्य आन्दोलन का आरोपण किया तो सरकार हमारे वेग को सँभाल न सकेगी। परन्तु कांग्रेस कोई भी कदम उठाने के

पहले तर्क द्वारा उसकी न्यायप्रियता समझाने को बाध्य थी।

३० सितम्बर सन् १६३६ को सुभाष बाबू प्रयाग आये। लगभग दो घण्टे तक उन्होंने पण्डित जवाहरलाल नेहरू से बातचीत की। प्रयाग में उनका शानदार स्वागत हुआ। कई सभाओं में सुभाष बाबू ने अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति पर प्रकाश डालते हुए अपना दृष्टिकोण जनता के समक्ष रखा।

"हमें ब्रिटिश सरकार की वर्तमान स्थिति से अधिक लाभ उठाना चाहिए। यदि हम उसी मार्ग पर अग्रसर हों तो वह दिन दूर नहीं जब अपने लिए पूर्ण स्वराज्य प्राप्त कर लेंगे। हमारे देश के युवकों का कर्तव्य है कि वे अपने पावन-पथ से विचलित न हों और न तो देश को ही विचलित होने दें। हममें से कितने लोग जिन्हें स्थिति की पूर्ण जानकारी नहीं है, यह कहेंगे कि ब्रिटिश सरकार से जो कुछ थोड़ा-बहुत मिले, लेकर सन्तोष कर लें—परन्तु मेरा विचार है कि ऐसे समय में हमें अपनी बुद्धि द्वारा एक ऐसा मार्ग निर्धारित करना चाहिए कि हम आंशिक स्वराज्य नहीं, पूर्ण स्वराज्य प्राप्त कर सकें। हम स्पष्ट शब्दों में यह व्यक्त कर देना चाहते हैं कि वर्तमान सरकार से दया की भिक्षा-स्वरूप स्वराज्य नहीं माँगना चाहेंगे—हम अपने संगठन, क्रान्ति तथा देश-भक्ति के बल पर स्वतन्त्रता प्राप्त करेंगे। अब वह दिन दूर नहीं, जबकि गोरी सरकार स्वयं हमारे पैरों पड़कर शान्ति की भिक्षा माँगेगी और पुरष्कार स्वरूप हम स्वराज्य प्राप्त करेंगे।

सुभाष बाबू देश भर में क्रान्ति का जो सृजन कर रहे थे, उससे सरकार अत्यन्त भयभीत थी। हिटलर का भयानक स्वप्न उसे यों ही सोने नहीं दे रहा था, दूसरे सुभाष बाबू के जोशीले भाषण का भारतीय जनता पर क्या प्रभाव पड़ेगा, यह सोचकर वह और भी चिन्तित थी।

अग्रगामी दल वालों ने निश्चय कर लिया कि यदि कांग्रेस संग्राम शुरू करने में देर करे तो जनता को सूचित करके अग्रगामी दल संग्राम छेड़ देगा। सुभाष बाबू ने स्वतन्त्रता दिवस के दिन

होने वाली सभाओं के लिए आदेश दिया था कि उनमें युद्ध विरोधी भाषण दिए जायें और ये सभायें कांग्रेस की होनेवाली सभाओं से अलग हों। १६ जनवरी सन् १६४० को सुभाष बाबू काशी आये और सार्वजनिक सभा में उन्होंने एक जोशीला भाषण दिया।

महात्मा गांधी ने २ फरवरी १६४० के 'हरिजन' में सुभाष बाबू के सम्बन्ध में लिखा था—"सुभाष बाबू आगे बढ़ने के लिए उतावले हो रहे हैं। वे यह भूल जाते हैं कि मेरे जैसे आदमी के हृदय में भी देश-प्रेम की वैसी ही प्रबल भावना रह सकती है जैसी कि उनके हृदय में है—भले ही हम सुधारवादी और नम्र वृत्ति के हों....उन्हें मैं या कोई और पकड़कर नहीं रखना चाहता। उनकी परिमाणदर्शी बुद्धि ही उन्हें रोक रही है और इस माने में वे भी मेरे जैसे सुधारवादी और नम्र विचार वाले कहे जा सकते हैं ... हम दोनों में मतभेद रहते हुए भी जब सुभाष बाबू अहिंसात्मक संग्राम का नेतृत्व करने लगेंगे तो मुझे अपना अनुसरण करते पायेंगे—उसी तरह जिस तरह मैं उन्हें अपने पथ का अनुगमन करते देखूंगा, यदि मैं उनसे पहले सत्याग्रह शुरू कर दूँ—फिर भी मैं तो अभी यही आशा कर रहा हूँ कि अब और कोई संग्राम शुरू किए बिना ही हम अपना लक्ष्य प्राप्त कर सकेंगे ..."

युद्ध के कारण चीजों के दाम बढ़ने और बङ्गाल सरकार की दमन नीति का विरोध करने के लिए सुभाष बाबू ने २४ फरवरी सन् १६४० को 'दमन विरोधी दिवस' मनाने की घोषणा की। सुभाष बाबू ने आवेश के साथ कहा—"यदि सरकार उनमें गति-रोध उत्पन्न करेगी तो बङ्गाल में तुरन्त आन्दोलन आरम्भ कर दिया जायगा जो आगे चलकर राष्ट्रीय संघर्ष का रूप धारण कर लेगा।" सुभाष बाबू ने अपने दूसरे वक्तव्य में कहा—"भारतीय कांग्रेस कार्यसमिति में मतभेद होने का अर्थ यह नहीं कि बङ्गाल के कांग्रेसी गांधीजी तथा अन्य नेताओं का अपमान करें।" यह वक्तव्य उस समय दिया गया, जब महात्मा गांधी कलकत्ता पधारे थे और कुछ उच्छृङ्खल व्यक्तियों ने उनकी सभा में हुल्लड़बाजी

मचाने का प्रयत्न किया था।

कांग्रेस का आगामी अधिवेशन रामगढ़ में होना निश्चित हुआ था। सभापति पद के लिए दो नाम आये थे—मौलाना अब्दुल कलाम आजाद और मानवेन्द्रनाथ राय। मौलाना आजाद को गांधीजी का समर्थन प्राप्त था, अतः वे ही राष्ट्रपति निर्वाचित हुए। उन्हें १८५४ वोट मिले और मानवेन्द्रनाथ राय को केवल ८३। ६-७ और ८ मार्च को मिर्जापुर के लालगंज नामक स्थान पर चतुर्थ जिला राजनीतिक सम्मेलन हुआ। सभापति थे श्री रफी अहमद किदवई। सुभाष बाबू भी पधारे थे। उनका जो वृहद स्वागत हुआ, वह आज भी ताजा है। सुभाष बाबू के अपूर्व स्वागत का श्रेय स्वर्गीय युसुफ इमाम बैरिस्टर को था जो मिर्जापुर के अग्रणी नेता थे। सुभाष बाबू ने भावपूर्ण भाषण दिया। इसके बाद वे अपने शिविर में आये तो किसी कांग्रेसी कार्यकर्ता ने उन्हें सूचित किया कि एक हस्तरेखा विशारद महोदय आये हुये हैं और उनका हाथ देखना चाहते हैं। सुभाष बाबू हँस पड़े—"मुझे कोई एतराज नहीं, आप उन्हें लिवा लाइये।"

हस्त रेखा विशारद महोदय उनके सामने लाये गये। उन्होंने अपनी खुर्दबीन निकालकर उसकी सहायता से सुभाष बाबू का हाथ देखा—गम्भीर स्वर में बोले—"आप शीघ्र ही जेल जाने वाले हैं, परन्तु अधिक दिनों तक जेल में रहेंगे नहीं। जेल से निकलने के बाद आप भारत की स्वतन्त्रता के लिए एक आश्चर्य-जनक कार्य करेंगे और राजा भी बनेंगे...." सुभाष बाबू तथा अन्य लोग हँसने लगे तो उन्होंने कहा—"आप चाहे जितना हँस लें परन्तु यदि यह प्राचीन विद्या सत्य है तो आप लोग देख लीजियेगा कि यह बात सत्य होकर रहेगी...."

"यह भविष्यवाणी कब सत्य होगी?" किसी ने पूछा।

"तीन साल के अन्दर...." हस्तरेखा विशारद महोदय बोले।

कौन जानता था कि नश्वर मनुष्य के मुख से निकली हुई वह वाणी देववाणी का रूप धारण कर लेगी और सुभाष बाबू के

जीवन में सत्य घटनायें उपस्थित करेगी ? कांग्रेस का रामगढ़ अधिवेशन १९ २० २१ मार्च १९४० को होने वाला था। कांग्रेस की ओर से नगर का निर्माण द्रुतगति से हो रहा था।

सुभाष बाबू तथा अग्रगामी दल के अन्य नेताओं ने कांग्रेस अधिवेशन के साथ अपनी ओर से 'समझौता विरोधी कांफ्रेंस' करने का निश्चय किया। फल यह हुआ कि कांग्रेस पण्डाल की बगल में अग्रगामी दल का भी पण्डाल बन गया। कांग्रेस नेताओं ने आश्चर्य से सुभाष बाबू की ओर देखा। उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि यह विद्रोही युवक क्या करना चाहता है ?

उधर मौलाना अब्दुल कलाम आजाद के सभापतित्व में कांग्रेस अधिवेशन प्रारम्भ हुआ और इधर सुभाष चन्द बोस की अध्यक्षता में समझौता विरोधी कांफ्रेंस। दोनों ओर खूब भीड़ थी। बड़ी बकझक मची। कांग्रेस के इतिहास में यह नवीन घटना थी।

विश्वमित्र के सम्पादक ने इस विषय में अपने जो विचार व्यक्त किये थे, वह यों है "रामगढ़ में श्री सुभाषचन्द्र बोस के समझौता विरोधी कांफ्रेंस का तमाशा आखिर हो ही गया। श्री बोस अग्रगामी दल के नेता तो हैं ही, कांफ्रेंस का कार्य प्रारम्भ होने में भी उन्होंने सचमुच अग्रगामी होने का परिचय दिया। कांग्रेस का अधिवेशन प्रारम्भ होने से पहले ही उन्होंने अपनी कांफ्रेंस आरम्भ कर दी। कांफ्रेंस में प्रवेश के लिए टिकट भी नहीं रखा गया था। परिणाम यह हुआ कि आरम्भ से कांफ्रेंस में कई हजार आदमी जमा हो गये परन्तु जब कांफ्रेंस का समय नजदीक आने लगा और लोगों ने देखा कि श्री बोस वही बेसुरा राग अलाप रहे हैं तब वे वहाँ से उठकर जाने लगे और कुछ समय में कांफ्रेंस का तमाशा उजड़ गया...."

यह सच है कि उस समय देश के समग्र नेता तथा कांग्रेसी पत्र सुभाष बाबू के विरुद्ध थे। उन्होंने व्यङ्गपूर्ण शब्दों द्वारा सुभाष बाबू के कार्यों पर असन्तोष प्रकट किया था। कुछ ही दिनों बाद भाषणों द्वारा आतङ्क की सृष्टि करने, जनता को

आन्दोलन के लिए उत्तेजित करने तथा बङ्ग-प्रान्तीय सत्याग्रह संग्राम के कारण सुभाष बाबू गिरफ्तार कर लिए गये। उन्हें कुछ दिनों तक जेल में रखा गया, तत्पश्चात् वे अपने मकान पर ही नजरबन्द कर दिए गये।

उनके मकान के चारों ओर पहरा बिठा दिया गया।

× × ×

कलकत्ते की बीडन स्ट्रीट में खड़ा हुआ एक पक्का दो मंजिला मकान और उसके दरवाजे के सामने खड़ा एक कृषकाय युवक! ऐसा प्रतीत हो रहा था कि वह गरीब युवक भिक्षा की लालसा लेकर उस मकान के द्वार पर खड़ा था। द्वार बंद था।

परन्तु उस युवक को पुकारने का साहस नहीं हो पा रहा था। वह कुछ सोचता हुआ-सा खड़ा था। दीनता उसके अङ्ग-अङ्ग से फूट रही थी। उसका बदन जैसे केवल हड्डियों का ढाँचा भर था। युवक ने एक बार इधर-उधर दृष्टि डाली और आगे बढ़कर साहसपूर्वक मकान का दरवाजा खटखटाया। एक-दो मिनट तक निस्तब्धता रही और तब मकान का दरवाजा खुला। पचास-साठ साल की एक बुढ़िया थी। आकृति बड़ी क्रूरतापूर्ण थी उसकी। बुढ़िया ने एक बार सर से पैर तक उस भिखारी युवक को देखा और क्रोधपूर्ण स्वर में पूछी—"क्या चाहता है रे तू?"

"श्रीमती नीरा मल्लिक घर में हैं?" युवक ने पूछा।

"हैं तो!" निर्मम स्वर में बुढ़िया बोली—"क्या काम है?"

"उनसे जाकर कह दीजिए कि बसन्त आया है...." युवक ने नम्र स्वर में बुढ़िया से प्रार्थना की।

परन्तु बुढ़िया तो भाप की तरह उबल पड़ी।

बोली—"कौन बसन्त है तू!....जा-जा ऐसे बसन्त-फसन्त तो आते ही रहते हैं। देवीजी नहीं मिलेंगी .. भाग जा!...."

युवक जानता था कि यह बुढ़िया कोई नौकरानी है फिर भी उसका व्यवहार अत्यन्त अभद्रतापूर्ण था। युवक का मुँह उतर

गया। वह निराश होकर जाने के लिए घूमा।

"कौन है जी!....कौन मुझे पूछ रहा था?...." तुरन्त बीस-इक्कीस साल की एक युवती ने अन्दर से आकर पूछा।

युवती के शरीर पर सौन्दर्य लहरा रहा था और उस सौन्दर्य को मूल्यवान वस्त्रों ने द्विगुणित कर रखा था।

"कोई बसन्त आया था तुमसे मिलने मालकिन!..." बुढ़िया ने कहा—"वह जा रहा है....बुला लूँ!...."

युवती ने उधर देखा, जिधर वह भिखारी युवक धीरे-धीरे चला जा रहा था—"बसन्त भैया!...." पुकारा उसने।

जाते-जाते चौंककर पलट पड़ा वह युवक।

और लौटकर युवती के सामने आ खड़ा हुआ।

"नीरा!..." शिथिल स्वर निकला उसके मुख से।

"बसन्त भैया!...." युवती ने कहा।

वह आश्चर्य के साथ उस युवक की ओर देख रही थी। उफ्! उसका भैया आज ऐसी दशा में पहुँच गया है! नीरा की आँखों में आँसू उमड़ आये—बसन्त कुमार की दुर्दशा देखकर।

एक दिन वह था, जबकि वे दोनों भाई-बहन अपनी गरीबी में ही खुश थे और मजदूरी करके अपना पेट चला रहे थे। बसन्त किसी सेठ के यहाँ नौकर था और नीरा भी एक खुफिया पुलिस इन्सपेक्टर के यहाँ नौकरी करती थी।

इन्सपेक्टर का नाम था जनरंजन राय। नीरा का लावण्य देखा तो लट्टू हो गया। नीरा अबोध थी। उसने जनरंजन को आत्म-समर्पण कर दिया। जनरंजन ने नीरा से सामाजिक रीति के अनुसार विवाह कर लिया। जिस दिन नीरा दुलहन बनकर जनरंजन के घर आई, उसी दिन उसने सुना कि उसका भाई सेठ के घर से रुपये चुराने के अपराध में पकड़ लिया गया है। तब से उसे बसन्त का कोई पता नहीं लगा।

आज वह कई सालों पर बसन्तकुमार की सूरत देख रही थी, सो भी ऐसी करुणाजनक अवस्था में कि उसे रोना आ रहा था।

नीरा को किसी बात की कमी न थी परन्तु आज उसे अपने ऐश्वर्य पर न जाने क्यों घृणा-सी हो आई।

जब नीरा झपट कर बसन्तकुमार के गले जा लगी तो बुढ़िया नौकरानी नाक सिकोड़ती हुई दूसरी ओर चली गई।

दोनों एक-दूसरे के गले लगकर, असहाय प्राणी की तरह रोते रहे तत्पश्चात् नीरा बसन्त को लेकर अपने कमरे में आई।

कमरे की सजावट देख बसन्त की ग्लानि कुछ कम हुई।

"मुझे खुशी केवल इस बात की है...." बसन्त बोला—"कि तू सुखी है नीरा!...."

"तुमने अपनी यह क्या दशा बना रखी है बसन्त भैया!...."

"ईश्वर यही चाहता था नीरा...."

"तुम इतने दिनों तक कहाँ थे?....कहाँ से आ रहे हो?"

"सुबह जेल से छूटा हूँ...." बसन्त बोला—"तुम्हारे पास आने की इच्छा न थी मगर बहन का प्रेम खींच ही लाया।"

"तुम जेल से आ रहे हो इस वक्त...." नीरा आश्चर्यपूर्ण स्वर में बोली—"क्या मेरी शादी के बाद से अब तक तुम उसी चोरी की सजा भुगत रहे थे।"

"नहीं नीरा, नहीं..." विषादपूर्ण हँसी हँसकर बोला बसन्त—"तब से मैं आठ बार जेल गया-आया हूँ।"

"आठ बार....हे ईश्वर! यह मैं क्या सुन रही हूँ।"

"नीरा! जेल-जीवन कोई बुरा नहीं...." बसन्त ने कहा—"अब तो मैं उसका अभ्यस्त हो गया हूँ।"

नीरा के मुख पर प्रेम का स्थान घृणा ने ले लिया था।

उफ्—उसका भाई चोर है, गिरहकट है।

"चुप रहो बसन्त भाई...." गरज कर बोली नीरा—"तुम्हें ऐसा कहते हुए लज्जा नहीं आती....तुम पुरुष होकर भी कायर पुरुषों का काम करते हो....इतने नीच तुम पहले नहीं थे...."

बसन्त नीरा के क्रोध से कुछ भी प्रभावित न हुआ। बोला—"पहले मैं ऐसा नहीं था नीरा, ठीक कहती हो! मगर तुम्हीं

बताओ, हमारी दुर्दशा का कारण कौन है ?"

"स्वयं तुम हो ...और कौन है ?...."

"मैं नहीं, मेरी दुर्दशा का कारण वे अमीर हैं जो गरीबों के गले पर छूरियां चलाते हैं...वे धनवान हैं, जो हमारे रक्त मांस से अपनी थैलियां भरते हैं....वे न्यायाधीश हैं, जो पैसे के गुलाम बन कर न्याय का गला घ टते हैं, वे पुलिस के कुत्ते हैं, जो दस रुपये की नौकरी करके बादशाह के नाती बन बैठे हैं...."

नीरा कुछ न बोली। बसन्त आवेश में आ गया था।

"नीरा !" बोलता रहा वह—"इन अमीरों को क्या अधिकार है कि एक गरीब के बहन की शादी होती रहे और उसे रुपये की जरूरत रहे....मगर उनकी थैली न खुले...."

बसन्त की इस बात से चौंक पड़ी नीरा।

"बसन्त भाई...." उसने तीव्र स्वर में पूछा।

"कहो, क्या कहती हो ? ..." शान्त था बसन्त।

"तो तुमने सचमुच उस सेठ के यहाँ से रुपये चुराये थे...."

"हाँ !....मांगने से न मिला तो जबरदस्ती ही सही...."

"तुम इतने पतित हो बसन्त भाई !...."

"अब भी तुम मुझे पतित कहती हो नीरा !" आवेश में भर उठा बसन्त—"जरा दुनिया की ओर देखो, अपनी कीमती साड़ी के आंचल से अपना मुंह निकाल कर देखो। तड़पते हुए, सिसकते हुए, मरते हुए गरीबों को देखो। अकाल पीड़ित नर-कङ्कालों को देखो ! एक-एक दाने अनाज के कारण अपनी जवानी बेचनेवाली लड़कियों को देखो। मुरदों का मांस खाने वाले क्षुधित भिखमंगों को देखो ...और तब देखो, रुपयों और अनाजों से भरी हुई सेठों के कोठियों को ओर....और तब कहो मुझे पतित !...."

"चाहे जो कुछ भी हो, मगर मनुष्य अपने नैतिक पतन का स्वयं जिम्मेदार है ..." नीरा ने कहा—"नहीं जानती थी कि तुम्हारे शरीर के अन्दर इतनी पतित आतमा है, नहीं तो उस भयानक बाढ़ के अन्दर डूबे तुम्हारे शरीर के लिए उस देवता से

प्रार्थना न करती। तुम डूब जाते भले ही....तुम मर जाते भले ही....तुम्हें बचाकर उस देवता ने अपने हाथ कलङ्कित कर लिए।"

बसन्त का आवेश विलीन हो चुका था। आँखों से आँसुओं की धारा बह निकली थी। बहन के कटु वाक्य सुनकर भाई के नयन बह उठे थे। एकाएक वह उठ खड़ा हुआ और बिना एक शब्द बोले कमरे से बाहर हो गया। नीरा उसके पीछे लपकी मगर तब तक वह मकान के बाहर निकलकर न जाने कहाँ ओझल हो गया। नीरा धम्म से पलङ्ग पर आकर गिर पड़ी।

उसी समय उसके पति जनरंजन राय ने वहाँ प्रवेश किया।

जनरंजन २५-२६ वर्ष का युवक था। आकृति से क्रूरता की झलक स्पष्ट दिखाई पड़ती थी। नीरा को यद्यपि अभाव न था परन्तु उसका वैवाहिक जीवन सुखकर न था। इसका कारण था जनरंजन और नीरा के मनोभावों में महान अन्तर।

जनरंजन था ब्रिटिश सरकार का पृष्ठपोषक और नीरा थी एक आदर्श पत्नी। नीरा नहीं चाहती थी कि उसका पति जासूसी करके अनायास ही लोगों को दण्ड दिलवाता फिरे। जब जनरंजन ब्रिटिश सरकार का गुणगान करने लगता तो नीरा का हृदय घृणा से भर उठता, अपने पति की गुलाम मनोवृत्ति देखकर।

"आज तुम बहुत चिन्तित हो?" पूछा जनरंजन ने।

"हाँ, बसन्त भाई आये थे...." नीरा ने कहा—"मेरी बातों से रूठकर चले गये! शायद आज ही जेल से छूटे थे...."

"अच्छा हुआ वह चला गया!...." घृणायुक्त स्वर में बोला जनरंजन—"उस आवारे का न आना ही अच्छा है। देखना, गहने वगैरह बचाकर रखना। ऐसा न हो कि वह ले भागे...."

नीरा को पति की बातें बहुत बुरी लगीं। वह बसन्त से घृणा कर सकती थी मगर यह नहीं देख सकती थी कि दुनिया के अन्य लोग भी उसके भैया से घृणा करें, उसे आवारा कहें, चोर समझें।

"आजकल मैं बहुत व्यस्त हूँ...." बोला जनरंजन—"बेहूदों

ने आन्दोलन शुरू कर दिया है। पता नहीं इनका दिमाग किस आसमान पर जा पहुँचा है....''

नीरा चुप रही।

• •

भारत का वह भयानक शेर सीखचों के अन्दर बन्द था।

सरकार ने सुभाष बाबू की सारी स्वतन्त्रता अपहरण कर ली थी। कहने को वे अपने मकान में नजरबन्द थे परन्तु उन्हें तनिक भी सुविधायें प्राप्त न थीं। मकान के चारों ओर सशस्त्र पुलिस नियुक्त थी। दरवाजे पर भी पहरेदार थे। सरकार ने कितने ही जासूस छोड़ रखे थे। उन्हें घर से बाहर चहारदीवारी तक जाने की आज्ञा न थी। वे किसी आदमी से मिल नहीं सकते थे, चाहे वह उनका रिश्तेदार ही क्यों न हो।

वे किसी को पत्र भी न लिख सकते थे। बाहरी पत्र सरकार द्वारा पढ़ लिए जाने के पश्चात् उन्हें मिला करते। कितने ही पत्र अनावश्यक तथा विरोधपूर्ण बताकर रोक लिए जाते थे। जो चीज मकान के अन्दर आती थी या मकान से बाहर जाती थी, उसका निरीक्षण किया जाता था। सरकार ने सुभाष को पूर्णतया बन्धन में जकड़ रखा था। इस बार उन पर बहुत कड़ा नियन्त्रण था। सुभाष बाबू परेशान थे। वे यह भी नहीं जान सकते थे कि उनके मकान की चहारदीवारी के बाहर कौन-कौन-सी घटनायें हो रही हैं।

सुभाष बाबू अत्यन्त चिन्तित थे। यही तो उनके कार्य करने का समय था परन्तु सरकार उन्हें बेड़ियां डाल रखी थी। रह-रह कर उनका मन बाहर की दशा देखने को उत्सुक हो उठता था।

उनके देशवासियों पर इस समय क्या गुजर रहा होगा... स्वातन्त्र्य आन्दोलन का इस समय क्या हाल है। सरकार का दमन किस पाशविक सीमा पर पहुँच चुका है—आदि बातें सोचते-सोचते व्याकुल हो उठते थे सुभाष बाबू। उनके अन्तराल का मानव, उनके हृदय की विद्रोही भावनायें, उनकी स्वतन्त्रता प्राप्ति

की उद्दाम लालसा—ये सब बेचैनी से छटपटा रही थी। कभी-कभी हृदय प्रबल विद्रोह से भर उठता था। आत्मा चिल्ला उठती थी—"सुभाष उठो !....भागो....किसी पहरेदार की पिस्तौल छीन कर शासन सत्ताधारी गोरों पर दागना शुरू कर दो। तुम बंधन में बंधने के लिए नहीं बने हो। तुम्हें ४० करोड़ मानवों की आजादी के लिए नेता बनकर लड़ना है। गोरी सरकार से विद्रोह करना है। अपनी शक्ति एकत्रित करके, भारत पर से विदेशियों की लाशें दूर हटानी है। उठो। जागो....भागो !...."

कई महीने बीत गये, सुभाष बाबू न ठीक से खाते थे और न सोते थे। आजादी का प्रश्न उनके अन्तराल में विद्रोह भावना की सृष्टि करता रहता था। वे जानते थे कि ब्रिटिश सरकार के पैर डगमगा उठे हैं, जर्मनी के शेर ने उसकी नींद हराम कर दी है।

यदि आज वे बाहर होते तो उस शेर से जा मिलते, कहते—"भाई हिटलर ! आओ, हम कन्धे से कन्धा भिड़ाकर गोरों का नाश करें। दिखा दें कि उनके राज्य में सूर्य अस्त होने लगा है।"

विचारधाराएँ कहाँ से कहाँ तक दौड़ लगाती थीं और सुभाष बाबू हाथ मल-मलकर रह जाते थे। एक दिन उन्होंने अपने भाई से सुना—"जर्मनी और रूस में अनाक्रमण सन्धि हो गई है।"

"अनाक्रमण सन्धि !" खुशी से चिल्ला पड़े सुभाष—"जर्मनी और रूस में अनाक्रमण सन्धि ! अब अंग्रेजों का नाश होगा...."

उसी दिन से सुभाष बाबू का हृदय उत्साहपूर्ण हो उठा।

उनकी अन्तरात्मा चिल्ला-चिल्ला कर जैसे आदेश देने लगी—

"सुभाष ! ...विद्रोही ! भागो ! रूस जाकर स्टालिन से मिलो, जर्मनी जाकर हिटलर से मिलो। आजादी जर्मनी और रूस में तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है। वह भारत में आने को बेताब है।"

अब सुभाष बाबू में एक विचित्र परिवर्तन हो गया। वे घर के लोगों से भी बहुत कम मिलने लगे। एक एकान्त कमरे में बैठकर अपने आगामी कार्यक्रम पर विचार किया करते।

उन्होंने अपनी दाढ़ी बनवानी छोड़ दी। चश्मा लगाने की

आदत भी कम करने लगे। इसी प्रकार कई दिन-महीने बीत गये।

२६ जनवरी का दिन निकट आ गया। देश भर में 'स्वतंत्रता दिवस' मनाने की तैयारियाँ होने लगीं। कलकत्ते में बड़ी-बड़ी सभाएँ हुईं। जननायकों के उत्साहपूर्ण भाषण हुए।

जासूस जनरंजन राय को रात-दिन दौड़ते ही बीतता था। इन्सपेक्टर होने के कारण उसे तनिक भी अवकाश न मिलता था।

सन्ध्या से ही उसकी ड्यूटी सुभाष बाबू के मकान पर थी।

वह निश्चित समय से अपनी ड्यूटी पर पहुँच गया और सुभाष बाबू के मकान के समीप अपनी कुर्सी पर जा बैठा।

रात हो गई थी। जनरंजन दिन भर का थका था। कुर्सी पर बैठते ही उसे आलस्य मालूम हुई। वह मेज का ढासना लगा आराम से बैठ गया। थकावट ने उसकी झपकती आँखों में नींद ला दी और वह प्रगाढ़ निद्रा के वशीभूत हो गया।

आधी रात बीत चुकी थी जब किसी प्रकार का खटका सुनकर उसकी नींद उचट गई। वह हड़बड़ा कर उठ बैठा। अपनी पिस्तौल उसने टटोला जो यथास्थान थी। उसने अपने चारों ओर देखा, सड़क पर मन्थर गति से जाता हुआ एक मुगल दिखाई पड़ा। मुगल की चाल से जनरंजन चौंका। उसने उसे आवाज दी परन्तु वह रुका नहीं बल्कि जनरंजन की आवाज सुनकर उसने अपनी चाल और तेज कर दी।

जनरंजन का सन्देह बढ़ा। पिस्तौल निकालकर हाथ में ले ली और कड़ककर बोला—"ठहरो! नहीं तो गोली मार दूँगा।"

सहमकर मुगल रुक गया।

जनरंजन मुगल के पास चला गया। उसके हाथ में भरी-भराई पिस्तौल तैयार थी। उसने ध्यानपूर्वक उस मुगल को देखा।

मुगल काफी लम्बा-तगड़ा था। पंजाबी जूते, पंजाबी पायजामा, लम्बा कुरता तथा मुगलों जैसा साफा पहने था वह। मुँह पर आठ अंगुल की दाढ़ी तथा मूछें थीं। चेहरे पर रोब था।

"तुम इतनी रात को कहाँ से आ रहे हो जी?...."

"तुमसे मतलब ?....तुम कौन हो पूछने वाले ?" मुगल ने क्रोधित स्वर में कहा। उसे जनरंजन का व्यवहार अप्रिय लगा।

"देखो जी !...." जनरंजन बोला—"मैं जासूस पुलिस का इन्सपेक्टर हूं। अगर तुम मेरी बातों का साफ-साफ जवाब न दोगे तो मुझे मजबूर होकर तुम्हें रात भर के लिए रोक रखना पड़ेगा और सुबह तुम थाने भेज दिये जाओगे...."

"नहीं-नहीं जनाब !...." पठान बोला—"मैंने आपको पहचाना नहीं....मैं इस वक्त अपने घर से आ रहा हूं। मेरे बीवी की तबीयत एक-ब-एक खराब हो गई है, इसीलिए डाक्टर के यहां इस आधी रात के वक्त जाने की जरूरत आ पड़ी।"

जनरंजन ने एक बार पुनः उस पठान की ओर देखा, उसकी उर्दू जबान बता रही थी कि वह वास्तव में पठान है।

"अच्छा तुम जा सकते हो !...." जनरंजन ने कहा।

और वह पठान झुककर सलाम करने के बाद, लम्बे कदम बढ़ाता चला गया। कुछ दूर जाने के बाद उस पठान ने सशंक भाव से पीछे की ओर जरा-सा घूमकर देखा, कदाचित उसे अपना पीछा किए जाने का डर था। परन्तु यह देखकर उसका भय दूर हो गया कि कोई पीछा नहीं कर रहा था। अब वह निश्चिन्तता-पूर्वक आगे बढ़ा परन्तु रफ्तार पहले से कम हो गई थी।

पतली-सी सड़क पर, एक मकान के आगे आकर वह रुका और धीरे से दरवाजा खटखटाया।

दो-तीन बार दरवाजा खटखटाने पर तुरन्त खुल गया और एक दुबला-पतला नवयुवक वहां खड़ा दिखाई पड़ा।

"कौन है ?...." पहचान न सकने के कारण युवक ने पूछा।

"मैं हूं !...." धीरे से पठान ने कहा।

पठान की गम्भीर वाणी सुनकर युवक चौंक पड़ा।

और हड़बड़ाकर बोला—"अरे आप !....अन्दर आइए।"

युवक ने पठान को अन्दर करके दरवाजा बन्द कर लिया।

"देखो मित्र !...." अन्दर आकर पठान शुद्ध हिन्दी में बोला—

"मुझे अवकाश बहुत कम है। हो सकता है, थोड़ी ही देर में मेरे पीछे पुलिस और जासूस दौड़ पड़ें।"

"आप निकल आये, बड़े साहस का काम किया आपने.... आप पहचाने ही नहीं जाते ! मैं भी पहचान न सका।"

"रहने दो ये बातें !" पठान ने कहा—"यह बताओ मैंने जो सन्देशा भिजवाया था, वह प्रबन्ध तुमने कर रखा है?"

"जी हाँ ?....आपके नापके अनेक प्रकार के सिले कपड़े और भेष बदलने की आवश्यक वस्तुएँ—मूँछ, दाढ़ी इत्यादि एकत्रित करके एक सूटकेस में रख ली है मैंने।"

"और कार ?...." पूछा पठान ने।

"वह भी तैयार है...."

"तो बस, तुम भी तैयार हो जाओ !...." पठान के स्वर में आदेश-सा था।

"मुझे कहाँ चलना होगा ?...." पूछा युवक ने।

"सिर्फ बर्दवान तक...." पठान ने कहा—"वहाँ से मैं पंजाब मेल पर सवार होऊँगा और तुम अपनी कार लेकर लौट आओगे।"

"बहुत अच्छा !...." कहकर युवक तेजी के साथ कोठरी में गया और एक सूटकेस लाकर पठान के सामने रख दिया।

"आप इसमें की सब वस्तुएँ देख लें, तब तक मैं तैयार होकर आता हूँ...." बोला वह।

"बहुत जल्दी आना !...." पठान ने कहा।

"पाँच मिनट में !" कहता हुआ युवक पुनः अन्दर चला गया।

पाँच-सात मिनट में जब वह पुनः लौटा तो यह देखकर उसके आश्चर्य का पारावार न रहा कि वह पठान कमरे से गायब है और उसकी जगह पर एक मौलवी साहब बैठे हुए किताब पढ़ रहे हैं। मौलवी ने सर उठाया। युवक से बोले—"आओ मित्र ! घबड़ाओ नहीं। यह तुम्हारे सूटकेस की वस्तुओं का प्रभाव है...."

युवक हँस पड़ा—"आप भेष परिवर्तन में भी कमाल रखते हैं।"

इसके बाद युवक ने गैरेज से अपनी कार निकाली। मौलवी

और युवक दोनों कार में बैठे। युवक ने कार स्टार्ट करनी चाही।

"रुको!...." मौलवी साहब ने कहा—"तुम्हारे पास कार के नम्बर की कोई नकली तख्ती है न ?"

"हाँ, है तो!...."

"तो असली तख्ती निकालकर उसे लगा दो...." मौलवी साहब ने कहा—"हो सकता है हमारी कार का नम्बर नोट किया जाय...."

"अच्छी बात है!" युवक ने शीघ्र ही व्यवस्था कर ली।

और तब वह छोटी-सी कार उस युवक तथा संदिग्ध मौलवी साहब को लेकर पचास साठ मील की रफ्तार से भाग चली।

बर्दवान आकर मौलवी साहब पंजाब मेल पर सवार हुए और वह युवक अपनी कार लेकर लौट आया।

२७ जनवरी सन् १९४१ को सवेरे ही भारत भर में बिजली की तरह यह समाचार फैल गया कि स्वतन्त्रता-दिवस की रात्रि को सरकारी पहरेदारों की आँखों में धूल झोंककर, खुफिया विभाग को चुनौती देकर, सुभाष बाबू लापता हो गये।

उनके लुप्त होने से सारे देश में तहलका मच गया। सरकार दांत पीसने लगी। भारत का वह शेर, अब उसके शिकंजे से बाहर था और बाहर रहकर वह न जाने किस प्रलय की सृष्टि करे ?

सारे देश में सरकारी तार दौड़ गये। हर शहर की खुफिया पुलिस कमर कसकर उठ खड़ी हुई। परन्तु विद्रोही सुभाष को किसी की चिन्ता न थी। वे पंजाब मेल से दिल्ली में उतर पड़े। एक-दो दिन किसी गाँव में रहकर तब आगे जाने का इरादा था।

इस समय वे मौलवी के ही भेष में थे। जब वे कम्पार्टमेंट के बाहर निकलने लगे तो उन्होंने देखा टिकट चेकर के पास ही पुलिस इन्सपेक्टर और कई जासूस खड़े हैं तथा स्टेशन से बाहर निकलने वाले प्रत्येक व्यक्ति को ध्यानपूर्वक देख रहे हैं।

"ओ मौलबी साहब...." एक जासूस ने पुकारा।

और हमारे मौलवी साहब इस तरह घूम पड़े, जैसे वे उसके

पुकारने का ही इन्तजार कर रहे हों।

वे इतमीनान के साथ पुलिस इन्सपेक्टर के सामने आ खड़े हुए और बोले—"आदाब अर्ज है हजूर! इरशाद फरमाइए!...."

पुलिस इन्सपेक्टर समझ गया कि ऐसी उर्दू कोई बङ्गाली कभी नहीं बोल सकता।

"आप कहाँ से आ रहे हैं?...." एक जासूस ने पूछा।

"क्यों .." मौलवी साहब आश्चर्य से बोले—"आपके पूछने का मकसद क्या है?....अपने घर से आ रहा हूं और कहाँ से...."

पुलिस इन्सपेक्टर हँस पड़ा।

जासूस बोला—"जनाबमन, आपका घर कहाँ है?"

"वाह! कैसा बेलुत्फ सवाल पूछा आपने..." मौलवी साहब बोले—"कोई रिश्तेदारी करने की गरज हो तो यह सवाल कुछ मायने रख सकता है....वरना एकदम फजूल है यह।"

वे लोग समझ गये कि यह कोई आधा पागल मौलवी है। भारत का वह विद्रोही शेर नहीं हो सकता।

"अब आप जा सकते हैं...." पुलिस इन्सपेक्टर ने कहा।

"लाख-लाख शुक्रिया हजूर!...." मौलवी साहब बोले—"हजूर को मुझसे काम पड़े तो मुझे याद फरमायेंगे....मेरा दौलतखाना....न-न गरीबखाना शेरपुर इलाके में है...."

कहकर मौलवी साहब चलने लगे। शेर को पकड़ने का स्वप्न देखनेवाले वे मूर्ख व्यक्ति ताकते ही रह गये।

तीन दिन दिल्ली के एक गाँव में रहने के बाद सुभाष बाबू पेशावर जाने के लिए पुनः स्टेशन पर आये। फ्रांटियर मेल के एक डिब्बे में पाँव रखते ही वे चौंक पड़े। पास ही की बर्थ पर कलकत्ते का जासूस जनरंजन राय बैठा हुआ था।

कदाचित् सुभाष बाबू की खोज में वह भी परेशान था।

जनरंजन की दृष्टि सुभाष बाबू पर पड़ी—सुभाष बाबू डिब्बे के नीचे उतरने की कोशिश करने लगे। शायद जनरंजन को मौलवी साहब पर कुछ शक हुआ, अतः उसने कहा—"आइए

मौलाना साहब ! मैं आपको अपनी बगल में जगह दे दूँगा।"

सभ्यता के नाते सुभाष बाबू इनकार न कर सके। शायद इनकार करने पर जनरंजन का शक और बढ़ जाता।

वे ठाट के साथ आकर जनरंजन को बगल में बैठ गये।

"मिजाज मुबारक !...." मौलवी साहब ने पूछा।

"कृपा है ...आप क्या दिल्ली के ही रहने वाले हैं ?...."

"अजीब बेलुत्फ सवाल आजकल ट्रेनों में हो रहे हैं..." यौलवी साहब ने सहास्य कहा।

"क्यों, क्या बात है...."

"अरे जनाब ! अभी उस दिन जब मैं लाहौर जाता हुआ दिल्ली उतरा तो कई पुलिस वाले मिलकर बेहूदा सवालात करने लगे। आजकल का रवैया कुछ समझ में नहीं आता...."

"आपको इस सवाल से कुछ चिढ़ है क्या !"

"चिढ़ नहीं साहब ! शौक से पूछिए। मगर आप समझ सकते हैं कि एक ही सवाल जब सैकड़ों आदमी पूछते हैं तो खामखाह तबीयत परेशान हो उठती है... हाँ पूछिए, क्या पूछते हैं ? मेरा दौलतखाना शेरपुर इलाके में है। मेरा नाम मौलबी, मौलबी...."

"बस-बस !" रोका जनरंजन ने—"आप तो बुरा मान गये।

"वल्लाह ! मैं बुरा क्यों मानने लगा ?...." मौलबी साहब ने कहा—"अभी तो हमारा आपका साथ बहुत देर तक रहेगा..."

"कहाँ जाना है आपको ?...."

'लाहौर...." मौलबी साहब बोले।

"मैं भी लाहौर ही चल रहा हूँ ..." जनरंजन ने कहा।

"ठीक है, ठीक है....आप भी शायद दिल्ली में ही रहते हैं।"

"नहीं मैं कलकत्ता रहता हूँ...." जनरंजन बोला —"मैं वहाँ पर एक डाक्टर हूँ...."

"वाह, किबला !...." मौलवी साहब जोर से हँस पड़े—"मुझसे झूठ बोलने की क्या जरूरत आ पड़ी जनरंजन साहब !'

उनके मुख से अपना नाम सुन जनरंजन को विस्मय हुआ।

"मेरे मुँह से अपना इस्मशरीफ सुनकर आप बेहद घबरा उठे हैं...." मौलवी साहब बोले—"बात यह हुई कि अभी-अभी आपने अपना मनीबेग निकाला था तो उस पर मैंने साफ-साफ पढ़ा था—जनरंजन राय सी० आई० डी० इन्सपेक्टर!"

"क्षमा कीजिएगा...." जनरंजन ने कहा—"हम लोगों का काम ही ऐसा है कि अपने को छिपाना पड़ता है...."

"बजा फरमाते हैं आप!" कह मौलवी साहब चुप हो रहे।

जनरंजन रह-रहकर ध्यानपूर्वक मौलवी साहब की आकृति को देखने लग जाता। धीरे-धीरे उसका सन्देह निश्चय में परिणित हो रहा था। एक छोटे से स्टेशन पर उतरकर वह तारघर की ओर बढ़ा। मौलवी साहब सशंकित हो उठे। उन्होंने समझ लिया कि उसे उनके सुभाष होने का निश्चय हो गया है।

जनरंजन ने लाहौर के पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट को तार दिया—

"लाहौर स्टेशन पर सौ सशस्त्र पुलिस के साथ आप फ्रांटियर मेल की प्रतीक्षा करें।"

इसके बाद निश्चिन्त हो अपने डिब्बे में आकर वह बैठा। सोचा उसने कि अब उसका शिकार बचकर कहाँ जायगा।

इधर मौलवी साहब आँखें बन्द किए न जाने क्या सोच रहे थे। दो घण्टे बाद मुगलपुरा स्टेशन आ गया। अगला स्टेशन ही लाहौर था। जहाँ लगभग २०० सशस्त्र पुलिस सुभाष बाबू की प्रतीक्षा में तैयार खड़ी थी।

मुगलपुरा आते ही मौलवी साहब ने अपना सूटकेस उठाया और चलने लगे। जनरंजन ने चौंककर पूछा—"अरे, आप तो लाहौर उतरने वाले थे न!...."

"जी हाँ!...." मौलवी साहब ने कहा—"लाहौर तो अब आ ही गया। मुगलपुरा और लाहौर में फासला ही क्या है?"

जनरंजन कुछ न बोला। मौलवी के उतर जाने पर वह भी उतर पड़ा और उनका पीछा किया। मौलवी ने तिरछे देखकर

समझ लिया कि उनका पीछा किया जा रहा है। स्टेशन के बाहर आकर मौलवी साहब एक होटल में घुस गये।

कुछ देर तक तो जनरंजन बाहर खड़ा रहा, इसके बाद पास ही खड़े एक पुलिसमैन से पूछा—"थाना किधर है ?"

"वह सामने है।" पुलिसमैन ने कहा।

लपकता हुआ जनरंजन थाने में गया। वहाँ से सादी वर्दी में पचीस पुलिस लेकर होटल के दरवाजे पर आ खड़ा हुआ। जनरंजन अभी सोच ही रहा था कि होटल के भीतर से फ्रेंच दाढ़ी रखे कोई फ्रांसीसी साहब निकला। साहब के बदन पर बढ़िया रेशमी शूट था, हाथ में सोने की घड़ी, सर पर मूल्यवान नाइट कैप थी।

"ओ साहब !" जनरंजन ने रोका, क्योंकि उसका सन्देह इस साहब पर भी हो गया था।

"क्या है डैम ?...." साहब टूटी-फूटी हिन्दुस्तानी में घुड़ककर बोला—"तुम किस माफिक हमको रोकने सकता ?"

"आपका नाम ?...."

"डी० फारेस्टर...." साहब बोला—"मेरा नाम लेकर तुम क्या करने सकता है ? हम गोवा रहता है, हम फ्रांसीसी साहब है, हम तुम्हारा जान मारने सकता है....'

कहता हुआ वह साहब निकट ही खड़ी एक टैक्सी किराये पर लेकर आँखों से ओझल हो गया। जनरंजन को अपनी बुद्धि पर बड़ा भरोसा था मगर सुभाष बाबू ने हर बार उसे धोखा ही दिया मुगल के वेश में, मौलवी के वेश में और फ्रांसीसी साहब के वेश में सुभाष बाबू ने अंग्रेजी सरकार के नमकहलाल नौकर जनरंजन के मुँह पर कालिख पोत दी और चल दिये।

● ●

लाहौर में बहुत दिनों तक सुभाष बाबू की खोज करने के पश्चात् जनरंजन २५ जासूसों के साथ पेशावर की ओर बढ़ा।

वह सुभाष बाबू को गिरफ्तारी के लिए कटिबद्ध था। उसे सुभाष बाबू को प्राप्त करना था, चाहें जीवित या मृत।

उसके हेड क्वार्टर से तार आया था—"बागी को पकड़ो, चाहे जिन्दा हालत में या मुर्दा। अगर पकड़ सके तो काफी ईनाम मिलेगा और न पकड़ सके तो निकाल दिये जाओगे...."

यही कारण था कि वह घर-बार की सुध छोड़कर सुभाष बाबू की खोज में प्रयत्नशील था। पेशावर पहुँचकर कई दिनों तक असफल ही रहा। एक दिन जबकि वह अपने दल के साथ शहर में घूम रहा था, उसकी दृष्टि एक देहाती पठान पर पड़ी।

"वही है। वही!" जनरंजन ने अपने साथियों को इशारा किया, सब उस ओर बढ़े। जनरंजन ने अपनी पिस्तौल निकाल कर हाथ में ले ली—वह मरने-मारने को प्रस्तुत हो गया।

पठान भी कम चौकन्ना न था। जनरंजन तथा उसके दल को अपनी ओर आता देखकर वह गली में घुस गया।

जासूस लोग भी दौड़ पड़े।

"देखो, वह गली के उस पार भागा जा रहा है।" सब लोगों ने ललकारा। पठान और तेज भागा। जासूस लोग भी दौड़े। जनरंजन ने पिस्तौल भी दागी मगर वह पठान घायल न हुआ।

भागते-भागते मैदान आ पहुँचा। सड़क के दोनों ओर मकानों की संख्या बहुत कम थी, अतः उस पठान को छिपने की गुञ्जाइश नहीं रह गई थी। जनरंजन का उत्साह बढ़ चला।

उस पठान के सर पर से गोली भर्राती हुई निकल गई। पठान समझ गया कि अब उसकी खैर नहीं। भागते-भागते वह एक बाग के दरवाजे में घुस गया। बाग बहुत छोटा था। बीच में मिलिटरी के ढङ्ग का एक बँगला बना हुआ था।

वह पठान सबकी नजर बचाकर एक झुरमुट में छिप रहा।

पीछा करते-करते जनरंजन भी आ पहुँचा और तेजी के साथ बाग के फाटक में घुस पड़ा।

"वहीं ठहरो!...." किसी ने गरज कर कहा।

जनरंजन ने देखा, बँगले के बरामदे में मिलिटरी पोशाक पहने एक युवक खड़ा था। शरीर हृष्ट-पुष्ट था। कमर की पेटी से रिवाल्वर लटक रहा था। देखने में वह एयरफोर्स का अफसर लगता था। युवक पैर बढ़ाकर जनरंजन के समीप आ खड़ा हुआ।

तब दोनों ने नजदीक से एक दूसरे को देखा।

"तुम ?...." युवक को आश्चर्य हुआ मगर साथ ही घृणा भी—"तुम्हें यहाँ देखकर मुझे आश्चर्य होता है जनरंजन !...."

"इस समय बात करने का मौका नहीं है।" जनरञ्जन बोला—"हम लोग एक फरार असामी के पीछे पड़े हैं। वह तुम्हारे इस बाग में छिप गया है....हमें उसकी खोज करने दो।"

"एयर फोर्स आफिसर के बाग में एक फरार असामी !" हँस पड़ा युवक—"स्वप्न देखकर तो नहीं आ रहे हो जनरञ्जन !"

जनरञ्जन को ये सब बातें इस समय पसन्द न आईं।

वह क्रुद्ध स्वर में बोला—"देखो, मेरा रास्ता छोड़ दो वर्ना मुझे जबरदस्ती तुम्हारे बाग की तलाशी लेनी पड़ेगी...."

"जबरदस्ती !...." युवक की भवें तन गईं। उसका हाथ अपने रिवाल्वर पर जा पड़ा। बोला—"यह न भूलो जनरञ्जन कि तुम एयरफोर्स के एक फ्लाइङ्ग आफिसर के सामने खड़े हो.... मेरे सामने तुम्हारा कुछ भी मूल्य नहीं। सीधे चले जाओ यहाँ से, वर्ना तुममें से एक-एक को गोली मार दूँगा...."

और युवक ने अपना रिवाल्वर निकाल लिया।

जनरञ्जन और उसके साथी सर लटकाकर चलते बने।

अब उस युवक के मुख पर मुस्कान के चिन्ह परिलक्षित हुए।

वह उस स्थान पर आया, जहाँ वह पठान छिपा हुआ था।

"निकल आओ देवता !....अब आपका रास्ता साफ है।"

पठान का हृदय धड़क रहा था....वह चुप रहा।

"आपको छिपते हुए मैंने देख लिया था देवता ! बाहर आ जाओ....अब कोई डर नहीं...." युवक ने पुनः कहा।

पठान आश्चर्यचकित था, उस अपरिचित युवक के मुख से

अपने लिए देवता सम्बोध सुनकर।

"तुम मुझे पहचानते हो युवक...." पठान ने पूछा।

"भला अपने देवता को भी कोई भूल सकता है।" युवक हँसकर बोला—"तुम चाहे जहाँ, जिस वेश में रहो देवता। मगर मेरी आँखें तुम्हें जरूर पहचान लेंगी....तुमने बाढ़ से मेरे प्राण बचाये थे, वह उपकार कभी भूला नहीं जा सकता महापुरुष।"

अब सुभाष बाबू हँस पड़े, तो बसन्तकुमार ने उन्हें पहचान लिया। जिसे कोई न पहचान सका, उसे उसने जान लिया।

सुभाष बाबू और बसन्त कमरे में आये।

"आज तुमने मेरी जान बचा ली बसन्त...."

"आप तो स्वयं अपनी जान हथेली पर लिए फिरते हैं देवता!...." बोला बसन्त।

"तो तुम आजकल एयरफोर्स में हो?" पूछा सुभाष बाबू ने।

"जी हाँ...." बसन्त ने कहा—"उस जीवन से मैं ऊब गया था देवता! और जब स्वयं मेरी बहन ने तिरस्कार किया तो मैं सहन न कर सका। मैंने एयरफोर्स के कमीशन के लिए प्रार्थना-पत्र दिया और आज फ्लाइङ्ग आफिसर के पद पर हूँ।"

"ठीक है!...." सुभाष बाबू बोले—"मगर क्या तुमने कभी यह भी सोचा है कि आज तुम जिसकी गुलामी कर रहे हो, उसी ने तुम्हारे देश को गुलाम बना रखा है।"

"सोचा है देवता! बहुत बार सोचा है....सरकार की गुलामी करके हमने यह कला प्राप्त की है और अपने देश की गुलामी दूर करने के लिए यही कला सरकार के सीने पर बम वर्षा करेगी!"

"शाबास! शाबास!...."

सुभाष ने देखा, वह पहले का आवारा बसन्त नहीं रह गया है। उसके मुख पर गम्भीरता और विचारों में प्रौढ़ता आ गई है।

"हमने अपने देश की परिस्थितियों का अध्ययन किया है देवता!" बसन्त बोला—"हमारे विचार देश के नेताओं के विचारों से भिन्न हैं। मैं समझता हूँ कि भीख माँगने से आजादी

नहीं मिलती। आजादी मिलती है, शस्त्र-ग्रहण से। इस जमाने सरकार ने हमारे हथियार छीनकर हमें पंगु बना डाला है। सभी हथियारों पर लाइसेंस लगा दिया है—बहाना यह है कि हथियारों से शान्ति भङ्ग होती है। ये बुजदिल यह क्यों नहीं कहते कि इन्हें विद्रोह का डर है। ये समझते हैं कि हमारे हाथ में हथियार रहते हमें वश में नहीं कर सकते...."

"ठीक कहते हो तुम ?...."

"मेरे विचार से प्रत्येक भारतीय को फौज में भर्ती हो जाना चाहिए...." बसन्त ने कहा—"और जब वक्त आये, तो सरकार की संगीनों से उसी के सीने में गोली दाग देनी चाहिए...."

"तुम उग्र विचारों के हो...." सुभाष बाबू बोले—"तुम हमारे बहुत काम आओगे...."

"अब आपका कहाँ जाने का विचार है!...."

"मैं जल्द से जल्द हिन्दुस्तान की सीमा से बाहर हो जाना चाहता हूँ....क्या तुम कोई प्रबन्ध कर सकते हो ?...."

"हाँ!....कल एक काफिला काबुल जा रहा है। आप पठान के वेश में उसके साथ जा सकते हैं। मैं सब प्रबन्ध कर दूँगा...."

और शीघ्र ही सुभाष बाबू पठानों के उस काफिले के साथ काबुल जा पहुँचे। काबुल जाकर उन्होंने रूसी दूतावास से सम्पर्क स्थापित किया और रूस के अधिनायक मार्शल स्टालिन के पास सन्देशा भेजा कि वे उनसे मिलना स्वीकार करेंगे? स्वीकारात्मक उत्तर आते ही उन्होंने रूस जाने की तैयारी कर दी।

● ●

अपने पति के व्यवहार से नीरा मल्लिक असन्तुष्ट थी।

इधर कई महीनों से जनरंजन सुभाष बाबू की खोज में इधर-उधर मारा-मारा फिर रहा था। नीरा घर में नौकरानी के साथ अकेली ही रहती थी। उस दिन नौकरानी बाजार गई थी और

उसी समय दरवाजे पर किसी कार के रुकने की आहट लगी। दो सैकिण्ड बाद किसी ने दरवाजा खटखटाया।

नीरा उठ खड़ी हुई और नीचे जाकर उसने दरवाजे के किवाड़ खोल दिए। बाहर जिस व्यक्ति पर उसकी दृष्टि पड़ी, वह था सैनिक वेश धारण किए हुए एक रोबीला युवक।

पास ही मिलेटरी की एक कार खड़ी थी।

उस युवक को देखकर नीरा चौंक पड़ी—"आप....तुम!" हड़बड़ाहट में वह ठीक से न बोल सकी—"बसन्त भैया तुम!"

युवक धीरे से मुस्कराया, बोला—"हाँ मैं ही हूँ नीरा! परन्तु मुझे विश्वास न था कि तुम मुझे पहचान सकोगी....क्योंकि पिछली बार तुमने मेरी भर्त्सना की थी। मैं सोचा था, मुझे भूल जाने का प्रयत्न करोगी और अब तक शायद भूल भी गई होगी।"

"उस दिन के अपने व्यवहार पर मैं बाद को ग्लानि से मर गई थी बसन्त भाई! वास्तव में मुझसे महान त्रुटि हो गई थी।"

"चलो नीरा, अन्दर चलें...." बोला युवक।

दोनों कमरे में आये।

"तुम्हारी कोई त्रुटि नहीं थी नीरा!...." बसन्त ने कहा—"तुम्हारे वाक्यों ने ही मेरे मनुष्यत्व को जगाया और आज मैं क्या से क्या बन सका हूँ....तुम देख ही रही हो?...."

"तुमने अपनी फिर कोई खबर नहीं भेजी भैया!...."

"मैं समझता था कि एक आवारे भाई के लिए बहन के हृदय में स्थान न रह गया हो...." बसन्त बोला—"अब तो मैं सैनिक हूँ! सांसारिक बन्धनों से विचलित न होना ही मेरा कर्तव्य है।"

"तुम भी विचित्र स्वभाव के हो बसन्त भाई...." नीरा हँस कर बोली—"जो बहन अपने भाई को बाढ़ में डूबा देखकर स्वयं अपनी जान देना चाही हो, वह उसे कभी भूल सकती है?"

"वे बीती बातें हैं, उस समय बहन एक निरीह बालिका थी और आज वह सरकार के एक वफादार नौकर की पत्नी है।"

"मगर दोनों के मनोभावों में महान अन्तर है बसन्त भाई!"

"हो सकता है...." बसन्त ने कहा—"खैर, जाने दो बातों को, अब उनमें क्या है ? हाँ, जनरंजन तो घर में न होंगे।"

"वे कई महीनों से लापता हैं, कोई पत्र भी नहीं लिखा...."

"वे एक शेर को पकड़ने की चेष्टा कर रहे हैं नीरा...."

"शेर ?...." नीरा को आश्चर्य हुआ।

"हाँ, एक मानव शेर ?" बसन्त हँसकर बोला—"जनरंजन आजकल हमारे देवता के पीछे पड़े हुए हैं...."

"कौन देवता ? वही, जिन्होंने तुम्हारे प्राण बचाये थे ?"

"हाँ !...." बसन्त ने कहा।

"क्यों ? वे उनको क्यों पकड़ना चाहते हैं ?" नीरा पूछी।

"वह देवता देश का बहुत बड़ा क्रान्तिकारी है नीरा ! सरकार का सबसे बड़ा शत्रु है वह !...."

"ईश्वर उस देवता को बचावें...." कहकर नीरा उठी और भीतर जाकर भोजन का प्रबन्ध करने लगी।

रात को खाना खाकर दोनों भाई-बहन पास-पास बैठे।

नीरा ने पूछा—"तुम आजकल छुट्टी पर हो बसन्त भैया !"

"हाँ ! एक महीने की छुट्टी मिली है....छुट्टी के बाद हमें सिंगापुर जाना पड़ेगा। मेरा तबादला वहीं हुआ है।"

"मैं भी इस एकांकी जीवन से ऊब गई हूँ भैया ! मुझे भी कोई रास्ता बताओ...." नीरा ने कहा।

"क्यों ? तुम तो अंग्रेजी पढ़ रही थी न ? सुना था जनरंजन ने तुम्हारे लिए एक अध्यापिका रख दी थी।"

"वह पढ़ाई तो अब समाप्त हो गई और पर साल मैंने मैट्रिक की प्राइवेट परीक्षा भी दे दी....उत्तीर्ण भी हो गई मैं...."

"हूँ ?...." बोला बसन्त—"मैं जब कमीशन में भर्ती हुआ तो अंग्रेजी का अज्ञान मेरे मार्ग में सबसे बड़ा बाधक था। मैंने चार महीने तक दिन-रात परिश्रम करके अंग्रेजी बोलना-लिखना सीखा और तब मुझे एयरफोर्स का कमीशन मिल सका।"

"अच्छा !....मैं तो पढ़-लिख काफी गई हूँ....अब बेकार बैठे-

बैठे जी घबड़ा उठता है..." नीरा ने कहा—"कभी कभी जी में आता है कि यदि मैं पुरुष होती तो तुरन्त लड़ाई पर चली जाती।"

"तुम ! लड़ाई पर चलना चाहती हो नीरा !" हर्षित हो उठा बसन्त—"स्त्री होने पर भी तुम लड़ाई पर जा सकती हो।"

"कैसे भैया ?...."

"वीमेंस आक्जीलरी कोर में भर्ती होकर... यह जमात लड़ाई के मैदान में पुरुषों की सहायता करती है...."

"तो मैं प्रस्तुत हूँ। यहाँ घुल-घुल कर जीवन व्यतीत करने से तो लड़ाई के मैदान में मरना ज्यादा अच्छा है।" नीरा ने कहा।

"तुम्हारे विचार बहुत उच्च हैं नीरा ! मेरी बहन में अन्य भारतीय स्त्रियों की तरह पङ्गुता नहीं, कायरता नहीं है...."

"मगर मैं युद्ध-भूमि में तुम्हारे साथ ही रहना चाहूँगी।"

"उसका भी प्रबन्ध हो जायगा। चलो, कल तुम्हें यहाँ भर्ती करा दूँ। जब तक मैं छुट्टी पर हूँ तुम ट्रेनिंग ले लो, इसके बाद अपने कमांडिंग आफिसर से कहकर तुम्हारा तबादला भी सिंगापुर करा लूँगा। तब हम और तुम साथ-साथ रह सकेंगे...."

"बहुत अच्छा !" नीरा बोली। इस समय उसके मुख पर प्रसन्नता खिल उठी थी।

शीघ्र ही वह वीमेन्स आक्जीलरी कोर में भर्ती हो गई।

बसन्त कुमार ने अपनी छुट्टी, लिखा-पढ़ी करके एक महीने के लिए और बढ़वा ली। इस बीच नीरा अपनी ट्रेनिंग लेती रही।

उधर नीरा की ट्रेनिंग खत्म हुई, इधर बसन्त की छुट्टी। बसंत ने नीरा के तबादले के लिए पहले ही कोशिश कर रखी थी।

अन्त में दोनों भाई-बहन सिंगापुर भेज दिये गये।

नीरा ने अपने घर का भार बूढ़ी नौकरानी पर छोड़ दिया और उसे अपने पति के नाम एक पत्र लिखकर दे दिया।

जर्मनी तो ब्रिटिश सरकार का शत्रु था ही, जापान भी उसके खिलाफ खड्गहस्त हो गया। ७ दिसम्बर सन् १९४१ को जापान ने पर्ल हार्बर पर आक्रमण किया और पलक मारते उसने उस पर अधिकार कर लिया। १३ दिसम्बर को गुआम, २० को पेनांग, २२ को बेक और २५ दिसम्बर को हांगकांग पर जापान का अधिकार हो गया। २९ दिसम्बर को टिन-उद्योग का बहुत बड़ा केन्द्र ईपो भी जापान के हाथ में आ गया। ब्रिटिश सैनिक बेतहाशा भाग रहे थे। जापानी उनको पराजित करते जा रहे थे।

जापानी अत्याचार की कहानियाँ मलाया भर में फैलती जा रही थीं। मलाया के भारतीयों में आतङ्क-सा छा गया था। स्त्रियों ने अपने सतीत्व रक्षार्थ विष खरीद कर रख लिया था, ताकि समय आने पर अपनी जान दे सकें।

२ जनवरी सन् १९४२ को मनिला पर भी जापान का अधिकार हो गया। थाईलैण्ड से जापानी सीधे बर्मा में घुसे।

अंग्रेज अपने बीवी-बच्चों को लेकर भाग रहे थे। फिर भी उनका घमण्ड नहीं गया था। भारतीयों और मलाया निवासियों के साथ उनका बर्बर व्यवहार पूर्ववत् जारी था। भागते-भागते वे चिल्ला रहे थे—"जापानी सिंगापुर नहीं ले सकते। ब्रिटिश साम्राज्य का यह अजेय दुर्ग है सिंगापुर।"

परन्तु उनके चिल्लाने से क्या होता था।

जापान के विनाशकारी विस्फोटों ने सिङ्गापुर का अजेय दुर्ग क्षणमात्र में नष्ट कर दिया। २५ फरवरी सन् १९४२ को ३ करोड़ पौण्ड का सिंगापुर बन्दरगाह जापानियों के हाथ में आ गया। ५ हजार ब्रिटिश, ६३ हजार आस्ट्रेलियन तथा ३२ हजार भारतीय सैनिकों ने घुटने टेककर आत्मसमर्पण किया।

१७ फरवरी १६४२ को फैरेज पार्क में पराजित भारतीय सैनिकों की एक सभा मेजर फूजीबाड़ा की आज्ञानुसार हुई। उस सभा में कई जापानी आफिसर तथा ब्रिटिश आफिसर लेफ्टिनेएट हएट उपस्थित थे। सभा में खड़े होकर हएट ने कहा—

"ब्रिटिश सरकार के प्रतिनिधि की हैसियत से मैं आप सबको युद्धबन्दी के रूप में जापानी अधिकारियों को सौंपता हूँ... आप लोगों को जापान सरकार की आज्ञाओं का उसी तरह पालन करना चाहिए, जिस तरह ब्रिटिश सरकार की आज्ञाओं का करते थे। यदि आपने ऐसा न किया तो दण्ड के भागी होंगे...."

मेजर फूजीबाड़ा ने भी खड़े होकर कहा—"मैं जापान सरकार का प्रतिनिधि हूँ और आप सब लोग मेरे अधिकार में हैं। मैं आपको विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि मेरी सरकार आपको युद्धबन्दी स्वीकार नहीं करेगी—वह आपको आजाद समझकर आपके साथ सभ्यता का व्यवहार करेगी। मैं आपको कैप्टन मोहन सिंह के हवाले करूँगा। वे ही आपके अधिनायक होंगे...."

इसके बाद कैप्टन मोहन सिंह उठ खड़े हुए। उन्होंने कहा— "अंग्रेजों ने हमें जापानियों के हाथ सौंप दिया है और स्वयं अपनी जान बचाकर भाग गये हैं। ऐसी परिस्थिति में हमें अपने कर्तव्य का निर्णय खूब सोच-विचार कर करना चाहिए। मैं एक आजाद फौज का निर्माण करना चाहता हूँ। इस फौज का लक्ष्य भारत के लिए सैन्य संगठन द्वारा, पूर्ण स्वराज्य की प्राप्ति करना होगा। मैं पूछता हूँ, क्या आप लोग 'आजाद हिन्द फौज' में सम्मिलित होना स्वीकार करेंगे ?"

कैप्टन मोहन सिंह को यह वक्तृता सुनकर सैनिकों में उत्साह का सागर उमड़ पड़ा।

"हम तैयार हैं...." एक साथ हजारों कण्ठ-स्वर फूट पड़े।

८ मार्च १६४२ को जापान ने रंगून पर अधिकार कर लिया और गोरी चमड़ी वालों के मुख पर ऐसी कालिमा लगा दी, जो

तब तक नहीं मिट सकती, जबतक इतिहास का एक भी पृष्ठ है। ९ और १० मार्च को मलाया तथा थाईलैण्ड के भारतीयों का एक प्रतिनिधि सम्मेलन सिंगापुर में हुआ। श्री रासबिहारी बसु का एक पत्र पढ़कर सुनाया गया, जिसमें समग्र प्रतिनिधियों को टोकियो आने को आमन्त्रित किया गया था।

उक्त सम्मेलन में टोकियो जाने के लिए सद्भाव मिशन बना।

२३ मार्च १९४२ को अण्डमान टापू पर जापान का अधिकार हो गया। इस प्रकार प्रथम भारतीय प्रदेश जापान के अधीन हुआ। २८, २९ और ३० मार्च १९४२ को श्री रासबिहारी बसु की अध्यक्षता में टोकियो में जापान, चीन, मलाया और स्याम के भारतीयों का बृहत् सम्मेलन हुआ।

उसी समय टोकियो-रेडियो ने यह घोषणा की—"विमान दुर्घटना में श्री सुभाषचन्द्र बोस की मृत्यु हो गई।"

उक्त समाचार ने समग्र भारत में शोक की लहर फैला दी।

परन्तु शीघ्र ही जापान सरकार की ओर उक्त समाचार का खण्डन हुआ और कहा गया कि मृत्यु सुभाष बाबू की नहीं, सत्यानन्द पुरी की हुई। उक्त सम्मेलन में 'आजाद हिन्द संघ' की स्थापना हुई। आजाद हिन्द फौज बनाने का निश्चय किया गया।

२२ अप्रैल १९४२ को सिंगापुर में स्वातन्त्र्य संघ की मलाया शाखा का सम्मेलन हुआ। २३ और २५ अप्रैल को भी सम्मेलन का कार्य होता रहा। विभिन्न शाखाओं के नियन्त्रण, निरीक्षण और सामंजस्य के लिए एक केन्द्रीय समिति बनी। स्वास्थ्य, सामाजिक सुधार और राजनीतिक सङ्गठन विभाग खोले गये।

× × ×

उधर भारत की स्वतन्त्रता के लिए पागल सुभाष बाबू रूस जा पहुँचे। वहाँ जाकर उन्होंने मार्शल स्टालिन से भेंट की और अपने ध्येय की पूर्ति के लिए परामर्श किया। उन दिनों जर्मनी और रूस में तनातनी चल रही थी और आशा की जा रही थी

कि कुछ ही दिनों में उन लोगों को बाध्य होकर अपनी अनाक्रमण सन्धि तोड़ देनी होगी।

ऐसी स्थिति में रूस सुभाष बाबू की सहायता करके ब्रिटेन और अमेरिका को अपना शत्रु नहीं बनना चाहता था। अतः मार्शल स्टालिन ने सुभाष बाबू की सहायता करने में असमर्थता प्रकट की। अब सुभाष बाबू के लिए जर्मनी जाना अनिवार्य हो गया। उन दिनों लीबिया में भारतीय सेना का दसवाँ ब्रिगेड जर्मनी के विरुद्ध लड़ रहा था और एक दिन भारतीय सैनिकों ने देखा कि उनके ऊपर जर्मन वायुयान, बम गिराने के बदले कुछ परचे गिरा गये हैं।

उन परचों में लिखाथा—*"मैं जर्मनी पहुँच गया हूँ। आपसे मुझे एक लम्बी कहानी कहनी है। यह युद्ध हमारा युद्ध नहीं। ब्रिटेन और जर्मनी आपस में लड़ें, हमसे क्या मतलब ? कृपया आप लड़ाई बन्द कर दें ?"

—सुभाषचन्द्र बोस

उन परचों ने भारतीय सैनिकों में नवीन उत्साह एवं अगम जागृति फूँक दी। तुरन्त ही भारतीय सेना के ४५ हजार वीरों ने हथियार डाल दिए और सुभाष बाबू की छत्रछाया में आ खड़े हुए। सुभाष बाबू उन सैनिकों से ड्रेसडन में मिले।

उन्होंने सर्वप्रथम 'आजाद हिन्द सेना' की स्थापना की और ड्रेसडन को अपना कार्यालय घोषित किया। वे स्वयं उन सैनिकों का निरीक्षण करते थे। सुभाष बाबू के स्वर में जादू था। जब वे बोलने लगते तो भारतीय सैनिक आजादी की अगम भावना हृदय पर लादे झूम-झूम उठते थे।

एक दिन सुभाष बाबू ने कहा—

"ब्रिटेन हमारा और जर्मनी का शत्रु है। हमें इस समय जर्मनी की सहायता लेकर स्वातंत्र्य संग्राम की तैयारी करनी है।"

उस दिन सुभाष बाबू ने तिरंगा झण्डा लहराया। झंडे पर चरखा बना हुआ था। उन्होंने कहा—"हमने जो महत्व इस झंडे

*अभ्युदय—'नेताजी' अङ्क!

को दिया, उसे कभी कम न होने देना...."

जर्मन सरकार ने आजाद हिन्द फौज को पूर्ण स्वतन्त्रता दे रखी थी। उन्हें जर्मन लड़कियों से विवाह करने की अनुमति प्राप्त थी। आजाद हिन्द फौज का अपना रेडियो स्टेशन भी था।

सैनिक सुभाष बाबू को नेताजी कहा करते थे?

सैनिक सुभाष काला कोट, श्वेत पैण्ट और काली टोपी पहनते थे। इस वर्दी में वे भारत के बेताज के बादशाह से दिखाई पड़ते थे। उनके चमकते हुए मुखमण्डल पर भारत के स्वातन्त्र्य की छाया परिलक्षित होती थी।

जर्मन भी नेताजी का आदर करते थे। बड़े-बड़े जर्मन अधिकारी तथा स्वयं गोरिङ्ग और हिटलर भी उन्हें सम्मान प्रदर्शित करते थे। जर्मन लोग नेताजी को हिज एक्सलेंसी कहा करते थे।

हिटलर ने सुभाष बाबू को रहने के लिए एक महल दिया था।

नेताजी ने एक बार अपने सैनिकों में कहा—"यदि तुम समझते हो कि मैं अपने स्वार्थ के लिए कांग्रेस तथा गांधीजी से लड़कर विदेश आया हूं तो यह तुम्हारी भूल होगी....मेरा तो एक ही ध्येय है और वह है अभागे भारत को ब्रिटेन के चक्रव्यूह से बचाना। जब मैं इस कार्य में सफल हो जाऊंगा तो स्वतन्त्र भारत को वैसे का वैसा ही लाकर बापू के चरणों में रख दूंगा...."

जर्मनी के फिल्मडिवीजन ने सुभाष बाबू की फिल्में भी उतारी थी। एक दिन स्वयं हिटलर ने आजाद हिन्द सैनिकों के समक्ष कहा था—"महान भारत के निवासियों! आप और आपके नेताजी धन्य हैं। आपके नेताजी का दर्जा मुझसे बहुत ऊँचा है। मैं तो केवल आठ करोड़ जर्मनों का नेता हूं परन्तु वे ४० करोड़ भारतीयों के नेता हैं। वह प्रत्येक बात में मुझसे बड़े हैं। मैं और मेरे जर्मन सैनिक उन्हें प्रणाम करते हैं। मुझे पूर्ण बिश्वास है कि नेताजी के नेतृत्व में महान भारत अवश्य स्वतन्त्र होगा...."

२६ अप्रैल सन् १९४२ के दिन नेताजी सुभाष बर्लिन रेडियो पर गरज उठे—"आज भारत को अपनी विजय का पूरा निश्चय

है। हमारी भारत भूमि पर हमारा पूरा अधिकार है। हम अपने भाग्यविधाता स्वयं बनेंगे....इतने दिनों तक गुलाम रखकर भी कोई विदेशी ताकत हमारे इस अधिकार को छीन नहीं सकती और जब तक भारत भूमि पर एक भी जिन्दा व्यक्ति बाकी है, तब तक हमारा यह अधिकार अक्षुण्ण रहेगा। अपने अधिकार के भरोसे, दुनिया के सामने अपने आत्मविश्वास के बल पर यह घोषणा करते हैं कि हम पूर्णतया स्वतन्त्र हैं। अपनी जान पर खेलकर भारत की स्वतन्त्रता कायम रखेंगे और दुनिया में उसके नाम पर धब्बा नहीं लगने देंगे। जब तक हम अपने हथियारों के बल पर एक-एक विदेशी को चुन-चुन कर देश से बाहर न निकाल लेंगे, तब तक चैन नहीं लेंगे...."

मलाया तथा जापान के भारतीयों ने भारत के शेर की गर्जना सुनी। विद्रोह की एक लहर-सी दौड़ गई उनके रग-रग में।

उन्होंने कामना की कि सुभाष बाबू एक बार उनके बीच में आ खड़े हों तो वे उनके सामने अपने कलेजे का खून निकाल कर आजादी की कीमत चुका दें। १७ मई १९४२ तक मलाया में स्वातन्त्र्य संघ के ६५ हजार सदस्य बन चुके थे।

१५ से २३ जून तक बैङ्काक में पूर्वी एशिया के भारतीयों का एक बड़ा सम्मेलन हुआ। लगभग सौ प्रतिनिधि उपस्थित थे।

जावा, सुमात्रा, हिन्दचीन, बोर्नियो, मंचकुओ, हांगकांग, बर्मा मलाया और जापान के प्रतिनिधि भी उसमें सम्मिलित थे।

भारतीय युद्धबन्दियों के प्रतिनिधि भी उपस्थित थे।

आजाद हिन्द संघ का नियमपूर्वक निर्माण हुआ। उसका विधान बनाया गया। उसका ध्येय, 'बिश्वास-एकता बलिदान' घोषित किया गया। सङ्घ के झण्डे के नीचे समग्र भारतीय इकट्ठे हो रहे थे। सुभाष बाबू को भी पूर्वी एशिया में आने का आमंत्रण दिया गया। आजाद हिन्द फौज में भर्ती होने के लिए भारतीय युद्धबंदी, नागरिक और महिलायें भी लालायित हो गई।

यह निश्चय हुआ कि जब समग्र भारत में क्रान्तिकारी आन्दो-

लन प्रारम्भ हो जाय और ब्रिटिश सेना में खलबली मच जाय तभी सैनिक आक्रमण किया जाय। जापान से यह कहा गया कि वह वचन दे कि ब्रिटिश साम्राज्य से भारत के अलग होते ही उसकी सार्वभौमिकता स्वीकार कर लेगा—भारतीय शत्रु की प्रजा न समझे जायँ। सम्मेलन समाप्त हुआ। सुभाष बाबू के पूर्वीय एशिया में आने की प्रतीक्षा की जाने लगी और इधर जापान ने अपना रङ्ग-ढङ्ग बदलना शुरू कर दिया। वह भारतीयों के मामले में हद से ज्यादा हस्तक्षेप करने लगा।

जापानियों और भारतीयों का सम्बन्ध दूषित होने लगा।

और कुछ दिनों बाद ही 'आजाद हिन्द संघ' टूट गया।

कुछ दिनों तक तो यही हाल रहा। रासबिहारी बसु टोकियो जाकर तोजो से मिले। उन्हें मामूली-सा आश्वासन दिया गया।

१८ अप्रैल १९४३ को चांसलरी लेन में पूर्वी एशिया के भारतीयों का सम्मेलन हुआ, जिसमें घोषणा की गई कि सुभाष बाबू दो महीने के अन्दर योरोप से यहाँ आ जायँगे।

संघ और फौज का संघठन तीव्रता के साथ प्रारम्भ हो गया।

भारतीय आह्लादित हो उठे। उनका मन-मयूर सुभाष बाबू के आगमन की बात सुन नाच उठा। वे सुभाष बाबू के शीघ्र आने की प्रतीक्षा करने लगे। १ जून १९४३ को रासबिहारी बसु सुभाष बाबू का स्वागत करने के लिए टोकियो रवाना हुए। भारतीयों का उत्साह द्विगुणित हो रहा था।

मलाया के रबर के खेतों में नरकमय जीवन व्यतीत करनेवाले भारतीय मजदूर भी मातृभूमि की मुक्ति के लिए दृढ़-प्रतिज्ञ हो गये थे। वर्षा, आँधी और बिजली की चमक में भी वे स्वराज्य सन्देश सुनते थे। जर्मनी से प्रस्थान करते समय सुभाष बाबू ने अपने सैनिकों से कहा—"हमारा केवल एक उद्देश्य है, भारत की पूर्ण स्वतन्त्रता। इसी ध्येय की पूर्ति के लिए मुझे आज तुम सबको छोड़ना पड़ रहा है। मैं जानता हूँ कि तुम भी हमारे साथ चलने को उत्सुक होगे परन्तु इस समय यह असम्भव है। मैं तुम्हें विश्वास

दिलाता हूँ कि यदि यातायात की सुविधाएं प्राप्त हुईं तो मैं बहुत जल्द ही तुम सबको अपने पास बुला लूंगा....''

इसके बाद आजाद हिन्द सैनिकों ने 'जय हिन्द' के नारे लगा कर अपने बिछुड़ते हुए नेता जी का स्वागत किया। उसी दिन सुभाष बाबू कर्नल हसन अली के साथ हालैण्ड बन्दरगाह से एक पनडुब्बी पर सवार हुए। पनडुब्बी द्वारा सफर बहुत खतरनाक था और कई बार तो सुभाष बाबू शत्रुओं से बाल-बाल बचे।

• •

२० जून १६४३ ! सुभाष बाबू के टोकियो पहुँचते ही भारतीयों ने प्रबल हर्ष-ध्वनि की। उनका शाही स्वागत किया गया।

सुभाष बाबू ने एक वक्तव्य देते हुए कहा—"पिछले महायुद्ध में चालाक ब्रिटिश राजनीतिज्ञों ने हमारे नेताओं के साथ विश्वासघात किया। बीस साल पहले हमने शपथ खाई थी कि अब फिर ब्रिटेन के धोखे में नहीं आयेंगे।

आजादी की वह घड़ी आज बीस वर्षों के पश्चात् फिर आ गई है। सदियों तक ऐसा सुनहला अवसर शायद ही मिल सके। ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने सब ओर से भारत का विनाश किया है। हमारा कर्तव्य है, अपनी स्वाधीनता के लिए खून से उसका मूल्य चुकायें। हमारे त्याग और कष्ट से जो स्वाधीनता प्राप्त होगी, उसी कोहम अपने पौरुष से बनाए रख सकेंगे। शत्रु ने अपनी तलवार निकाल ली है। हमें भी तलवार से ही लड़ना पड़ेगा। सविनय अवज्ञा आन्दोलन के स्थान पर सशस्त्र संघर्ष करना पड़ेगा। अग्निवर्षा से ही पुनीत भारतीय जनता स्वराज्य पाने के योग्य हो सकती है।"

२१ जून १६४३ को टोकियो रेडियो स्टेशन से सुभाष बाबू ने भारतीयों को एक दिव्य सन्देश प्रेषित किया। जापान में सुभाष बाबू का वह पहला रेडियो वक्तव्य था। उन्होंने कहा था—

"हम भारत के बहुत निकट हैं, यह हमारा पहला लाभ है।

आज तक किसी ब्रिटिश जनरल के मस्तिष्क में यह बात आई ही नहीं थी कि कभी पूर्व की ओर से भी भारतवर्ष पर आक्रमण हो सकता है। सिङ्गापुर को लेकर वे मजे में आराम कर रहे थे। उनकी सारी तैयारी भारत के उत्तर-पश्चिम में होती रही। जनरल यामशिता और जनरल इशिडा ने ब्रिटिश राजनीति के ढोल की पोल खोल दी है।

केवल अब पूर्व में वे जोरदार तैयारी कर रहे हैं। परन्तु २० साल में तैयार हुए सिंगापुर के अड्डे से वे यदि एक सप्ताह में भागें तो इस तैयारी का क्या मतलब है। हमारे शासक समझते हैं कि साम्राज्य बनें और नष्ट हों परन्तु ब्रिटिश साम्राज्य तो सदैव अक्षुण्ण रहेगा। भारत के अन्दर क्या हो रहा है? बर्मा, सिंगापुर उनके हाथ से चले गये। इसकी उन्हें परवाह नहीं है। ब्रिटेन का सारा साम्राज्य भारत ही है। वह और सब छोड़ देगा परन्तु इसे नहीं छोड़ेगा। ब्रिटेन से यह कहना कि तुम भारत से चले जाओ निरी मूर्खता है। यदि हमें स्वराज्य चाहिये तो बिना खून से उसका मूल्य चुकाये, नहीं मिल सकता।"

२४ जून १६४३ को सुभाष बाबू को क्रान्ति-भरी आवाज पुनः रेडियो पर गरज उठी—"मेरे कुछ देश भाई अब भी सोचते हैं कि अन्तर्राष्ट्रीय संकट से बाध्य होकर ब्रिटेन भारत जैसे देश को स्वतन्त्र कर देगा—परन्तु वे भारी भ्रम में हैं। १६४० में गांधीजी ने सत्याग्रह छेड़ा, मुझे प्रसन्नता हुई और मैंने अनुभव किया कि भारतीय क्रान्ति को इससे भारी योजना बनाना अत्यन्त आवश्यक है। मैं आज घोषणा करता हूं कि मेरा उद्देश्य सफल हो गया। भारत के बाहर के सब भारतीय एक झण्डे के नीचे आ गये हैं। वे आपकी मदद के लिए अवसर की प्रतीक्षा में हैं। मित्रों! मैंने कुछ समय पहले वादा किया था कि जब वह शुभ घड़ी आ जायगी। मैं आपके साथ सुख-दुःख में सम्मिलित होने के लिए आ जाऊँगा। आज मैं अपनी उसी प्रतिज्ञा को पूरी कर रहा हूँ.... भारत स्वतन्त्र होगा—बहुत जल्द स्वतन्त्र होगा। स्वतन्त्र भारत

अपने यातनापूर्ण जेलों के फाटक खोल देगा ताकि हमारे वीर भाई जेल के अन्धकार से स्वतन्त्रता के प्रकाश में प्रवेश कर सकें।"

२६ जून १६४३ को सुभाष बाबू ने, भारतीय स्वाधीनता के लिए लड़ने हेतु, पूर्वीय एशिया के भारतीयों की एक फौज संगठित करने के कार्य में सहायता देने की प्रार्थना की।

उन्होंने कहा—"भारत को आजाद कराने का काम केवल हमारा है। उस भारी शत्रु के सामने सत्याग्रह, विध्वंसक कार्य तथा क्रान्तिकारी आतङ्क के कार्य व्यर्थ हैं। उसे भगाने के लिए तो केवल उसी के हथियार से लड़ना पड़ेगा....शत्रु ने म्यान से तलवार खींच ली है इसलिए हमें भी तलवार से ही मुकाबला करना है। हमें पूरी आशा है कि पूर्वीय एशिया के मित्रों की सहायता से मैं ऐसी फौज खड़ी कर सकता हूँ, जो भारत से ब्रिटिश सत्ता को हटा फेंके। वह शुभ घड़ी आ गई है। हर भारतीय को युद्ध-क्षेत्र पर जाना चाहिए। स्वाधीनता के लिए उत्सुक भारतीयों का रक्त जब भूमि पर गिरने लगेगा तभी भारत स्वाधीन होगा।"

२ जुलाई १६४३ को सुभाष बाबू सिंगापुर आये, जो जापानियों की भाषा में उस समय शोनान नाम से प्रसिद्ध हो रहा था।

उस दिन दीपावली थी। हर भारतीय परिवार उनके स्वागत के लिए आया था। गांधीजी की बड़ा-सी तस्वीर सजाई गई थी। भारत माता के हाथ में तिरङ्गा झण्डा सुशोभित हो रहा था।

मलायावासी चीनी तथा जापानियों की संख्या भी अधिक थी। नरमुन्डों का सागर लहरा रहा था।

धीरे-धीरे स्मित-मुख सुभाष ने सबके हृदयों पर अपना अधिकार जमा लिया था। उनकी मुस्कान सबको आकर्षित कर लेती थी। सुभाष बाबू ने उस जनसमूह के मध्य जापानियों के विषय में अपना वक्तव्य दिया—"हम अपने को जापानियों द्वारा मूर्ख प्रमाणित नहीं होने देंगे। हमारा संगठन सुदृढ़ रहेगा तो जापानी हमारा कुछ न कर सकेंगे। हमें केवल अपने दुश्मन ब्रिटिश साम्राज्यवाद या साम्राज्य लोलुप जापानियों से ही डरना नहीं

है, अपने ही कुछ भारतीयों से भी डरना है। अनुशासन, और लगन से ही हम विजयी होंगे।"

सुभाष बाबू 'आजाद हिन्द संघ' और फौज के कार्यकर्ताओं से मिले। आधुनिक युद्धनीति तथा मलाया के भूगोल का अपरिमित ज्ञान सुभाष बाबू के पास देखकर सभी आश्चर्यचकित हो उठे। ऐसी कोई बात वे कार्यकर्ता सुभाष बाबू को नहीं बता सके, जिसे वे पहले से न जानते रहे हों। सबको विश्वास हो गया कि सुभाष बाबू उनके 'नेताजी' होने योग्य हैं।

४ जुलाई १९४३ को सिंगापुर में भारतीय सम्मेलन का उद्घाटन हुआ। सुभाष बाबू ने अपने भाषण में कहा—

"मित्रों! स्वाधीनता हेतु तड़पते हुए भारतीयों के लिए कार्य करने की शुभ घड़ी आ गई है। इस संघर्षकाल में कर्तव्यपरायणता और अनुशासन की सबसे पहले आवश्यकता है। मैं पूर्वीय एशिया के सभी भारतीयों का इसके लिए आवाहन करता हूँ।

मैं कई बार कर चुका हूँ कि १९४१ में भारत से भारतीय जनता की इच्छा से चला। यद्यपि मैं बाहर हूँ परन्तु अपने देशवासियों से मेरा सम्पर्क बराबर बना है। हम जो कुछ भी करेंगे, केवल भारत की स्वाधीनता के लिए....अपनी सारी शक्ति एकत्र करने के लिए मैं आजाद हिन्द की एक अस्थायी सरकार बनाना चाहता हूँ। शत्रु बड़ा शक्तिशाली है अस्तु हमें कहीं कुछ पराजय भी सहन करनी पड़ेगी। स्वाधीनता के इस प्रयत्न में आपको भूख-प्यास, अन्न की कमी, सैकड़ों मील की दौड़ तथा मृत्यु सहन करनी पड़ेगी। इस में उत्तीर्ण होने पर ही स्वाधीनता मिलेगी।"

नेताजी सुभाष के सिंगापुर आते ही वहाँ के सारे आपसी-मतभेद तथा वैमनस्य नष्ट हो गये। भारतीयों का जोश उमड़ पड़ने को तड़फड़ाने लगा। ५ जुलाई को सुभाष बाबू ने अपने जीवन की अत्यन्त महत्वपूर्ण घोषणा की। आजाद हिन्द फौज का निर्माण हो गया। केवल भारतीयों की प्रथम सेना, ब्रिटिश साम्राज्य की सारी शक्ति से लोहा लेने को तैयार खड़ी थी। सुभाष बाबू ने

उसके रग-रग में अपने स्वर से क्रान्ति लहरा दी थी—

"आजाद फौज के आजाद सिपाहियों ! आज हमारी जिन्दगी का सबसे गौरवपूर्ण दिवस है ! आज ईश्वर की कृपा से हम संसार के समक्ष घोषणा कर सकते हैं कि आजाद हिन्द की एक आजाद फौज भी बन गई है। यह वह सेना है जो भारत की परतन्त्रता की बेड़ियाँ तोडेगी। हर भारतीय को इसका गर्व होना चाहिये कि केवल भारतीयों ने इसे सँवारा है और जिस दिन अवसर आयेगा, उसी दिन केवल भारतीयों के नेतृत्व में यह संग्राम करेगी।

आज एक बच्चा भी कह सकता है कि अंग्रेजी साम्राज्यशाही चल बसी और हम उसकी कब्र को पैरों से ठुकरा रहे हैं। साथियों! तुम्हारा नारा है दिल्ली चलो !....लालकिले की ओर बढ़ो....

हममें से कितने अपनी जीत देखने के लिए जीवित रह जायेंगे, यह मैं नहीं जानता—मगर मैं इतना जानता हूँ कि हम लोग जीतेंगे और अवश्य जीतेंगे। मेरी आत्मा को तो उस दिन सन्तोष होगा जिस दिन मेरे सिपाही ब्रिटिश साम्राज्य की दूसरी मजार दिल्ली के लालकिले पर झण्डा फहरायेंगे।

मैं बराबर यह महसूस करता रहा कि भारत को एक स्वतन्त्र सेना की आवश्यकता है। जार्ज वाशिंगटन ने अमेरिका को आजादी दिलाई क्योंकि उसके पास सैन्य-बल था। गैरी बाल्डी ने भी यही पथ अपनाया। यह तुम्हारा सौभाग्य है कि तुम भी उसी मार्ग पर अग्रसर हो रहे हो, जिस मार्ग पर चलकर कितने ही महापुरुषों ने सफलता प्राप्त की थी। साथियों ! आज तुम्हारे हाथ में भारत की शान है। तुम भारत की आशा के तारे हो ! तुम हमेशा ऐसा कार्य करो कि भारत हृदय से तुम्हें आशीर्वाद दे। मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि तुम्हारे साथ रहूँगा। हाँ, आज तुम्हें कुछ नहीं दे सकता, सिवा भूख, प्यास, पीड़ा, बेबसी और मौत...यदि इतने पर भी भारत आजाद हो जाय तो हमारा यह आत्मसमर्पण सफल हो जायगा। ईश्वर तुम्हारी रक्षा करें—विजय तुम्हारी होगी।"

चारों ओर गगन-भेदी नारे गूंज उठे—"आजाद हिन्द जिन्दा-

बाद। शेरे हिन्द जिन्दाबाद। विद्रोही सुभाष जिन्दाबाद। जिन्दाबाद!" नेताजी सुभाष का हृदय उन उल्लसित नारों को सुनकर गद्गद हो उठा। तभी उनकी दृष्टि अपने पैरों पर झुके हुए एक युवक और एक युवती पर पड़ी। चौंक पड़े सुभाष बाबू!.... लपककर उन्होंने युवक और युवती को उठाया।

"बसन्त कुमार! तुम और यहाँ?...." युवक को देखकर सुभाषबाबू आश्चर्यपूर्ण स्वर में बोले—"तुम यहाँ कैसे?"

"गद्दार अंग्रेज अपने गोरे साथियों को लेकर भाग गये और हमें जापानियों के हाथ युद्धबन्दी बना छोड़ गये देवता!...."

"क्या तुम सिङ्गापुर में ही थे?...." सुभाष बाबू ने पूछा।

"हाँ देवता! हमारा तबादला सिंगापुर को हो गया था।

"ठीक है!...." सुभाष बाबू ने कहा—"यह कौन है।"

सुभाष बाबू का इशारा युवती की ओर था।

"इसे पहचान नहीं सके शायद!...." बोला बसन्त—"यह नीरा है नेताजी!...मेरी बहन नीरा...जनरंजन की पत्नी!"

"अच्छा, बहुत दिन हुआ इन्हें देखे, इसलिए पहचान नहीं सका...." सुभाष बाबू ने कहा—"ये वोमेन्स आकजीलरी कोर में थीं शायद!"

"जी हाँ! मगर अब तो हम आपके चरणों में आ गये हैं देवता!....अब रात-दिन आपके पास बने रहेंगे हम लोग...."

"ठीक है! मुझे तुम जैसे युवक की आवश्यकता भी थी।"

"हम अपनी जान देकर भी आपकी रक्षा करेंगे देवता!.... नेताजी?...." बसन्त कुमार ने कहा।

६ जुलाई १९४३ का दिन अविस्मरणीय था। जनरल तोजो डेढ़ घण्टे तक आजाद हिन्द फौज के परेड की सलामी लेते रहे! नेताजी सुभाष खड़े थे। राष्ट्रीय झंडा उड़ रहा था।

९ जुलाई को पडाङ्ग म्युनिसिपल के सामने विशाल रैली हुई। एक लाख से भी अधिक जन-समुदाय एकत्रित था। नेताजी स्त्रियों और बच्चों के प्यारे हो गये थे। वे न जाने किस जादू से सबको

मोहित कर लेते थे। उन्होंने कहा—"ग्यारह बार मैं ब्रिटिश जेल में जा चुका हूँ। वहाँ बड़ा कड़ा बन्धन था—परन्तु संकट उठाकर मुझे कौन यहाँ खींच लाया? स्वराज्य प्राप्ति की उत्कट अभिलाषा।

१९२१ से मैं इसके लिए प्रयत्नशील हूँ। मुझे तीन लाख सिपाही और ३ करोड़ डालर चाहिये—१८५७ के प्रथम स्वाधीनता युद्ध में वीरांगना झाँसी की रानी ने अपनी तलवार का जो जौहर दिखाया था, वैसी वीरता दिखाने वाली शूरवीर मृत्यु का सामना करनेवाली महिलाओं का एक दल भी मैं चाहता हूँ।"

१२ जुलाई १९४३ को नेताजी ने महिलाओं की एक सभा में भाषण दिया। महिलायें दस-दस मील की दूरी से आई थीं। बहुत-सी स्त्रियों ने अपने जेवर नेताजी सुभाष को दे दिये। नेताजी ने कहा—

"हम एक नहीं, हजारों झाँसी की रानियाँ चाहते हैं!"

इसके बाद आजाद स्कूलों में सैनिकों और महिलाओं की ट्रेनिङ्ग शुरु हुई। मलाया में स्वातन्त्र्य संघ का काम भी तेजी से होने लगा। १ अगस्त १९४२ तक केवल मलाया में ६० शाखायें तथा एक लाख ७० हजार सदस्य हो गये थे। ९ अगस्त को पूर्वी एशिया के कोने-कोने में भारतीय क्रान्ति (जो ठीक ९ अगस्त १९४२ को प्रारम्भ हुई थी) की प्रथम वर्ष-गाँठ मनाने के लिए सैकड़ों सभायें हुईं। सिङ्गापुर में हुई सभा में गांधीजी, जवाहरलाल नेहरू, सरदार पटेल आदि नेताओं के फोटो रखे गये थे। १५ अगस्त को सिङ्गापुर के फैरेट पार्क में फिर विशाल रैली हुई। ३० हजार आदमी नेताजी का भाषण सुनने के लिए आये थे। 'आजाद हिन्द जिन्दाबाद' के नारों से आकाश गूँज उठा था।

इस सभा में मुसलमान भी बहुत बड़ी संख्या में आये थे और उन्होंने सुभाष बाबू को एक थैली भेंट की थी।

नेताजी ने घोषणा की थी कि शीघ्र ही 'आजाद हिन्द सरकार' का कार्यालय रंगून और फौज बर्मा जायगी।

२५ अगस्त १९४३ को नेताजी ने फौज का नेतृत्व अपने हाथ

में ले लिया। सैनिकों से उन्होंने कहा—"हमें 'दिल्ली वाइसराय' के भवन पर राष्ट्रीय झंडा फहराना है। जब हम भारत पर अपना अधिकार कर लेंगे तो गोरों की सारी बैरिकें अपने सैनिकों को और बदले में सारे जेल उन्हें दे देंगे।"

उस समय बङ्गाल में भीषण अकाल पड़ा था। छोकरियाँ एक-एक मुट्ठी चावल के लिए अपनी जवानियाँ बेच रही थीं। माताएँ अपने मृत बच्चों का मांस खाकर क्षुधा शांत करती थीं।

अकाल का वह समाचार सुभाष बाबू के कानों में पड़ा। उनकी आत्मा चीत्कार कर उठी। आजाद हिन्द सरकार के प्रधान की हैसियत से, सुभाष बाबू ने सिंगापुर रेडियो स्टेशन द्वारा ब्रिटिश सरकार के समक्ष यह प्रस्ताव रखा कि 'आजाद हिन्द सरकार' अपने देश के एक प्रान्त के भीषण अकाल से अत्यन्त दुखी है। वह एक लाख टन चावल भेज सकती है। यदि ब्रिटिश सरकार जहाज को सुरक्षित वापस कर देने का वचन दे तो यह चावल बर्मा के किसी भी बन्दरगाह से तुरन्त भेज दिया जायगा। परन्तु गोरी सरकार ने इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया और भूखे भारतीयों के करुण-क्रन्दन को सुनकर एक भीषण अट्टहास किया।

६ सितम्बर १९४३ को रंगून में बहादुरशाह के मकबरे पर स्वतन्त्र भारत के अन्तिम बादशाह की स्मृति में नेताजीने श्रद्धांजलि अर्पित की। २ अक्टूबर को गांधीजी की ७५ वीं वर्षगाँठ मनाई गई। राष्ट्रीय गान गाती हुई प्रभातफेरियाँ निकलीं। तमाम भारतीयों के मकानों पर राष्ट्रीय झंडे फहरा उठे।

नेताजी सुभाष ने अपने भाषण में कहा—"गाँधीजी का नाम स्वर्णाक्षरों में लिखा जायगा। उन्होंने १९२० में नागपुर कांग्रेस में कहा था कि यदि भारत के पास तलवार होती तो वह तलवार से लड़ता। आज हमारे पास तलवार है और हम उससे मातृभूमि को स्वाधीन करेंगे। * हम एक लम्बा रास्ता तय कर चुके हैं। हमें हृष्ट करने के लिए नौकरशाही ने क्या नहीं किया। हिन्दुस्तान

---

* अभ्युदय नेताजी अङ्क का सम्पादकीय।

की गुलाम धरती को फोड़कर सिर उठाने वाली कच्ची कलियों को जवानी के पहले ही कुचल दिया गया। निहत्थी जनता की निरपराध हड्डियों को गोलियों से तोड़कर माँ की छाती को जवान बेटों के खून से तर किया गया। हमारे देश को लूटा गया। कानूनी डाकेजनी, कानूनी हत्या, अमानुषिक काले कानून हम पर लादे गए—मगर हमने क्षण भर को भी अपना सर झुकने नहीं दिया।

जो झंडा हमने शान से फहराया था, जिसकी तिरङ्गी कोर तूफानों से टकराती रही। हमने अपनी मौत से भी खेलकर अपने उस झण्डे को नहीं झुकने दिया। वह तिरङ्गा झण्डा आज हमारी सभ्यता, हमारी संस्कृति, हमारा धर्म, हमारा साहित्य, हमारी जिन्दगी, हमारा सर्वस्व बन चुका है। हमें आजादी की भीख नहीं माँगनी है। अपने बल पर स्वतन्त्रता को स्थापित करना है। हम अंग्रेजों को हिन्दुस्तान से बाहर निकाल देने के लिए कटिबद्ध हैं।"

२१ अक्टूबर सन् १६४३ ई० का दिन भारतीय स्वातन्त्र्य-संग्राम के इतिहास में हमेशा अमिट रहेगा। उस दिन सिंगापुर में पूर्वीय एशिया के भारतीयों का सम्मेलन हुआ और नेताजी ने १।। घण्टे तक भाषण करके 'अरजी हुकूमते आजाद हिन्द' की स्थापना की घोषणा की। नेताजी ने खुद भारत के प्रति वफादारी की शपथ ली—"ईश्वर के नाम पर मैं, सुभाषचन्द्र बसु भारत और ४० करोड़ देशबन्धुओं को मुक्त कराने के लिए अपनी अन्तिम सांस तक स्वाधीनता का पवित्र युद्ध जारी रखूंगा। मैं भारत का सेवक बना रहूँगा और अपने ४० करोड़ भारतीयों की भलाई का ध्यान रखूंगा। यही मेरा सर्वोपरि कर्तव्य होगा। उसकी रक्षा हेतु रक्त की अन्तिम बुंद देने को हमेशा तैयार रहूँगा।"

इसके बाद अस्थाई सरकार के प्रत्येक सदस्य ने, सुभाष बाबू के प्रति भक्ति की शपथ ली। तदन्तर घोषणा पत्र सुनाया गया।

और तब सदस्यों के हस्ताक्षर हुए!

सरकार के प्रधान मन्त्री युद्ध मन्त्री और परराष्ट्र सचिव—

श्री सुभाषचन्द्र बोस। महिला सैन्य-दल—कैप्टन श्रीमती लक्ष्मी। प्रचार—एस० ए० अय्यर। अर्थ—लेफ्टिनेण्ट कर्नल ए० सी० चटर्जी। सेना के प्रतिनिधि—ले० क० अजीज अहमद, एन० एस० भगत, जे० के० भोंसले, गुलजार सिंह, एम० जेड किकानी, ए० डी० लोकनाथन, एहशान कादिर, शाहनवाज।

सेक्रेटरी—ए० एम० सहाय। प्रधान सलाहकार—रास बिहारी बसु। सलाहकार—करीम गनी, देवनाथ दास, डी० एम० खान, ए० पलप्पा, जे० थीवी, सरदार ईश्वर सिंह।

कानूनी सलाहकार—ए० एन० सरकार।

● ●

२२ अक्टूबर। झाँसी की रानी का जन्म दिन।

२२ अक्टूबर १६४३। झाँसी की रानी रेजिमेंट का जन्म दिन। राष्ट्रीय ध्वजा आकाश में फहरा रही थी। राइफलें लिए हुए वीर स्त्रियाँ प्रस्तर मूर्तियों की तरह खड़ी थी। उन्हें यह सिद्ध करना था कि आज की स्त्रियाँ भी हथियार चला सकती हैं।

नेताजी सुभाष ने महिलाओं के समक्ष रानी लक्ष्मी बाई का जीवन-चरित्र जोशीले स्वर में कह सुनाया, जिससे इन वीरांगनाओं के रग-रग लहू से भर उठे। २३ अक्टूबर १६४३ को जापान सरकार ने आजादहिन्द सरकार को मान लिया। २४ अक्टूबर, आधी रात को आजादहिन्द सरकार ने; ब्रिटेन और अमेरिका के विरुद्ध युद्ध-घोषणा की, इस घोषणा पर पंद्रह मिनट तक ५० हजार जनसमूह हर्षध्वनि करता रहा। नारों से दिशायें काँप उठीं।

२६ अक्टूबर को रिवेनट्राप ने अजादहिन्द सरकार को मान लिया। स्वतन्त्र बर्मा और फिलीपाइन ने भी उसे माना।

२४ अक्टूबर को नेताजी ने संसार के सभी देशों के पत्रकारों सम्मेलन में भाषण दिया। उन्होंने कहा—"मेरा पहला स्वप्न, फौज बनाने का पूरा हुआ। दूसरा स्वप्न, आजादहिन्द सरकार बनाने का भी पूरा हुआ। अब एक स्वप्न बाकी है स्वतन्त्रता प्राप्ति

और भारत से फिरंगियों का निष्कासन।"

८ नवम्बर १६४३ को आयरिश रिपब्लिकनों ने नेताजी को बधाई का तार भेजा। रोडेशिया, चीन, इटली और मंचुकूआ की सरकारों ने आजाद हिन्द सरकार को मान्यता दी। ६ नवम्बर को नेताजी सुभाष टोकियो गये। वहाँ बृहत्तर पूर्वीय एशिया के देशों का सम्मेलन था। उस सम्मेलन में नेताजी ने घोषणा की कि अण्डमान और निकोबार टापू आजादहिन्द सरकार के हवाले किए जा रहे हैं। नेताजी ने अण्डमान का नाम बदल कर 'शहीद' और निकोबार का 'स्वराज्य' रखने की घोषणा की।

२१ नबम्बर १६४३ को सुभाष बाबू शंघाई गये, जो उस समय जापान के अधिकार में था। उसी दिन उन्होंने ग्रेण्ड थियेटर में भाषण दिया और स्वतन्त्र सेना का संगठन किया। शंघाई के भारतीयों ने नेताजी के चरणों में अपनी समग्र सम्पत्ति समर्पित कर दी। ३० दिसम्बर १६४३ को नेता जी ने भारत की पहली मुक्त-भूमि शहीद टापू पर पैर रखा और पोर्ट-ब्लेयर पर राष्ट्रीय झंडा फहराया।

२६ जनवरी १६४४ को रंगून में स्वाधीनता-दिवस मनाया गया। ६० हजार आदमियों की सभा में नेताजी सुभाष ने भाषण दिया। जनवरी १६४४ में ही आजाद हिन्द फौज का दफ्तर बर्मा में आ गया। जब सुभाष बाबू हवाई जहाज द्वारा रंगून के हवाई अड्डे पर उतरे तो जापान, बर्मा तथा जर्मनी के दूतों ने आपका स्वागत किया। रंगून आते ही सुभाष बाबू सबसे पहले भारत के अन्तिम सम्राट जफर की मजार पर फूल चढ़ाने गये।

जब वे वहाँ पहुँचे और मजार को नष्ट प्राय: अवस्था में पाया तो उनकी आँखें आँसुओं से भर आईं।

कुछ दिनों बाद आजाद सरकार ने कर्नल लोकनाथन को शहीद टापू का चीफ कमिश्नर नियुक्त किया। ४ जनवरी १६४४ को आजाद हिन्द फौज ने अपना आक्रमण प्रारम्भ कर दिया। युद्ध क्षेत्र के पीछे मेयो अस्पताल में 'झाँसी की रानी' रेजीमेण्ड

को नायक कैप्टन लक्ष्मीबाई भी यहीं थी। वीरांगनायें केवल सेवा-कार्य ही नहीं वरन् पुरुषों की तरह युद्ध क्षेत्र में जाकर युद्ध करना चाहती थीं। अन्त में नेताजी के पास रेजिमेण्ट की सदस्याओं ने एक आवेदन पत्र अपने रक्त से हस्ताक्षर करके भेजा।

और नेताजी ने उनकी उत्कृष्ट अभिलाषाओं को दबाना अनुचित समझ, उन्हें रणक्षेत्र में जाने की आज्ञा दे दी।

● ●

उन दिनों आजाद हिन्द फौज वीरतापूर्वक अपने शत्रुओं पर प्रत्याक्रमण कर रही थी। उत्साह उनके साथ था और विजय उनके हाथ। नेताजी सुभाष युद्ध स्थिति का निरीक्षण करने के लिए मोर्चे पर आये हुए थे। उनके साथ अङ्गरक्षकों का एक दल था, जिसके नायक बसन्त कुमार मल्लिक और नीरा मल्लिक थे।

शाम हो चली थी! नेताजी सुभाष अपने खेमे में एकाकी बैठे हुए कुछ कागजात देख रहे थे। दरवाजे पर सशस्त्र प्रहरी तैनात थे। उस समय किसी को आने तथा नेताजी के कार्य में विघ्न डालने की आज्ञा नहीं थी। नेताजी के खेमें से कुछ दूर पर नीरा मल्लिक का खेमा था। वह जमीन पर बिस्तरा लगाकर लेटी कोई पुस्तक पढ़ रही थी। बसन्त कुमार उस समय कहीं बाहर गया था।

एकाएक कुछ खटका हुआ और नीरा ने अपना सर उठाया।

उसने देखा कि खेमे की पिछली दीवाल फाड़कर एक मनुष्याकृति अन्दर घुस आई है। खेमे में प्रकाश इतना तेज न था कि वह उस व्यक्ति को पहचान सकती, जो इस प्रकार चोरी-चोरी घुस आया था, पता नहीं किस इरादे से।

"कौन है?" कह नीरा ने अपनी टार्च उठाकर उस व्यक्ति की ओर देखा। तेज रोशनी में उसकी आकृति स्पष्ट हो उठी।

"कौन हो तुम?" खड़ी हो गई नीरा।

बायें हाथ में टार्च और दाहिने हाथ में रिवाल्वर था।

"रिवाल्वर नीचे कर लो नीरा !...." वह व्यक्ति बोला—"और ज्यादा जोर से बोलो मत !"

उस व्यक्ति का स्वर कुछ पहचाना-सा लगा, जिससे नीरा चौंक पड़ी। वह व्यक्ति आगे बढ़ने को हुआ तो गरज कर नीरा बोली—"वहीं ठहरो !...अपनी नकली दाढ़ी चेहरे पर से हटाओ....जल्दी करो नहीं तो गोली मार दूँगी...."

उस व्यक्ति ने बिना कुछ कहे अपनी नकली दाढ़ी अलग कर दी और तब चौंक पड़ी नीरा।

"आप !....आप यहाँ ?...." वह अस्त-व्यस्त स्वर में बोली।

वह था जनरंजन ! जासूस इन्सपेक्टर जनरंजन !

सुभाष बाबू की खोज में फिरनेवाला सरकारी कुत्ता !

"हाँ ! मैं ही हूँ नीरा !...." जनरंजन बोला—"मुझे यहाँ देखकर तुम्हें बहुत आश्चर्य हो रहा होगा...."

"जानते हैं कि आप इस समय कहाँ हैं ?" नीरा ने पूछा।

"जानता हूँ !....मैं 'आजाद हिन्द' फौज के शिविर में हूँ...."

"यहाँ आने का कारण !"

"अपनी अभिलाषाओं की पूर्ति ! अपने अपमान का प्रतिशोध !...."

"आपका मतलब क्या है ?"

"सुभाष बाबू मेरी आँखों में धूल झोंक कर भाग आये थे...." जनरंजन बोला—"उन्होंने मुझे सरकार की आँखों में गिरा दिया। यही मेरा अपमान है। मैं सुभाष बाबू को पकड़कर पुनः सरकार की आँखों का तारा बनना चाहता हूँ।"

"सुभाष जैसे शेर को पकड़ने का साहस है आप में !...." नीरा ने घृणापूर्वक स्वर में कहा।

"पकड़ने का साहस चाहे न हो...." जनरंजन बोला—"मगर छिपकर जान लेने की शक्ति है मुझमें नीरा !...."

"चुप रहिए !...." नीरा की आँखें लाल हो आई थीं।

इस समय उसके अन्तराल में भीषण संघर्ष हो रहा था। यह

जो उसके नेताजी के खून का प्यासा बन, छिपकर यहाँ आया है, स्वयं उसका पति है, उसकी माँग के सिन्दूर का सहारा है।

तो वह क्या करे ? क्या करे वह ?

"आप शत्रु के गुप्तचर हैं।..." नीरा विवशतापूर्ण स्वर में बोली—"तुरन्त यहाँ से चले जायँ...."

"नीरा !" जनरंजन एकदम पास आ रहा। उसने नीरा का कोमल हाथ अपने हाथों में ले लिया। नीरा ने प्रतिरोध न किया।

"मैं शत्रु का गुप्तचर अवश्य हूँ नीरा !...." जनरंजन धीरे से बोला—"परन्तु तुम्हारा पति भी हूँ। भारतीय नारी, अपने पति के दुर्व्यवहार से विद्रोहिणी भले ही बन जायँ परन्तु यह नहीं सहन कर सकती कि उसका पति उसी के सामने अपना प्राण त्याग करे और वह खड़ी-खड़ी उसका मरना देखा करे ?"

"चुप रहिये ! चुप रहिए आप !" सहमें स्वर में नीरा बोली। उसने आवेश से अपनी आँखों पर हथेलियाँ रख ली।

जनरंजन ने देखा तीर निशाने पर बैठा है। उसने एक स्त्री के कोमल हृदय को कर्तव्य की ठेस देकर, विचलित कर दिया था।

"आप चले जायँ ?....मैं आपके पैर पड़ती हूँ !...."

"नीरा !....मेरी नीरा !" जनरंजन ने नीरा के मर्मस्थान पर प्रेम की चोट मारी ! नीरा कटे वृक्ष की तरह जनरंजन की बाहों में गिर पड़ी। आज नीरा को न जाने क्या हो गया था।

"समय बहुत कम है नीरा !" जनरंजन बोला—"आधी रात को मैं नेताजी के खेमे की ओर जाऊँगा, तुम कोई ऐसा कार्य न करना जो मेरे प्राणों का ग्राहक बन जाय !"

"आप अनर्थ न कीजिए...." नीरा सिसकती हुई बोली— "वे देवता हैं, उनके प्राण लेकर आप क्या करेंगे ?"

"नीरा !...." जनरंजन ने कहा—"इस समय सुभाष बाबु के प्राण में ही मेरी इज्जत का सवाल रम रहा है....मैं यह कभी नहीं देख सकता कि मर-मर कर मैंने अपने लिए जो आदर इकट्ठा किया था, वह केवल एक विद्रोही के लिए नष्ट हो जाय ?"

"आप मुझे गोली मार दीजिए फिर चाहे जो कीजिए।"

"तुम्हें गोली मार दूँ...." जनरंजन धीरे से हँसा—"उसे गोली मार दूँ जिसे कीचड़ से निकाल कर सर पर रखा था। जिसे देवी समझ कर हृदय में बिठाया था ? यह नहीं होगा नीरा!"

"........" नीरा चुप रही, सिसकती रही।

"तुम मुझे छोड़कर चली आई, मैंने तुम्हें कुछ न कहा।" जनरंजन बोला—"क्योंकि मेरे हृदय में तुम्हारे लिए प्यार था। यह हो सकता है कि हमारे-तुम्हारे मनोभावों में अन्तर रहा हो परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि प्रेम की पराकाष्ठा, घृणा तक पहुँच गई. खैर जाने दो इन बातों को—मैं जा रहा हूँ। बसन्त भी अब आता ही होगा....और मैं उसके सामने पड़ना नहीं चाहता, क्योंकि वह मेरे मार्ग में बाधक बन सकता है।"

"........" नीरा आँसू और विवशता भरे नेत्रों से जनरंजन को देखती रही। वही आज रात को नेताजी के पहरे पर रहेगी।

जब नेताजी का खून होगा तो वह किस प्रकार यह सब देख सकेगी ? वह रोने लगी....रोती रही।

और जनरंजन पुनः नकली दाढ़ी लगाकर चुपके-से खेमे के बाहर चला गया। इस समय नीरा के हृदय में कर्तव्य और प्रेम का द्वन्द्व चल रहा था। जाने कब तक इसी अवस्था में सिसकती रही। क्या करे, क्या न करे, निश्चय नहीं कर पा रही थी।

नेताजी देश के प्राण थे—उनके मरने पर भारतभूमि के पैरों में परतन्त्रता की बेड़ियाँ पड़ी ही रह जातीं।

जनरंजन उसका पति था—उसके मरने पर सौभाग्य का सिन्दूर जीवन की सघन कालिमा में बदल जाता।

आज से पहले नीरा के हृदय में अपने पति के प्रति इतने आकर्षक एवं प्रेमपूर्ण भाव पैदा नहीं हुए थे—हाँ, शादी के प्रारम्भिक कुछ महीने अवश्य आनन्दकारी प्रतीत हुए थे।

तो आज इतने दिन के बाद नीरा के हृदय में जनरंजन के प्रति इतना अपनत्व क्यों व्याप्त हो उठा ? कदाचित् दीर्घकाल के

विछोह ने इस भावना की सृष्टि की हो ?

"नीरा !....क्या हो रहा है नीरा ?" बसन्त आ गया था और खेमे के दरवाजे पर से पुकार रहा था। नीरा ने चटपट अपनी आँखें पोंछ लीं। वह अपने भैया को आंसू नहीं दिखाना चाहती थी।

"आइए भैया !...." कहती हुई वह बसन्त के सामने जा खड़ी हुई।

'बड़ी उदास दीख रही है तू !....' बसन्त ने पूछा।

'नहीं तो भैया !'

नीरा ने अपनी व्यथा छिपाने की कोशिश की। बसन्त का भी मुख अत्यन्त गम्भीर था, न जाने क्यों ? उस दिन दोनों ने खाना नहीं खाया। बसन्त चुपचाप अपनी चारपाई पर जा लेटा और न जाने क्या-क्या सोचने लगा। वह अत्यन्त व्यग्र था। जनरंजन और नीरा, दोनों में से किसी को भी नहीं मालूम था कि बसन्त ने खेमे के दरवाजे के पास खड़े होकर उनकी प्रत्येक बात ध्यानपूर्वक सुनी है और इसी से चिन्तित है।

यदि नेताजी के प्राण-रक्षार्थ जनरंजन को गोली मारता है तो उसकी बहन विधवा हो जायगी और वह जीवन भर उसके आँसुओं को देख तड़पता रहेगा। अगर नेताजी का वध हो जाने देता है तो स्वतन्त्रता की देवी उसके इस कुकृत्य पर भीषण अभिशापों की वर्षा करेगी। तो क्या करे ? क्या करे बसन्त जिससे नेताजी की जान बच जाय और उसकी बहन को वैधव्य का दुख न भोगना पड़े।

एकाएक वह उठ खड़ा हुआ।

नीरा अब तक अपने भैया के मौन से घबड़ा उठी थी और उसे इस प्रकार अचानक उठते देखकर और भी चिन्तित हुई।

"कहीं जा रहे हो क्या भैया ?...." पूछा उसने।

"हाँ !....जरा नेताजी से भेंट करना था...." बसन्त ने कहा तुरन्त खेमे से बाहर हो गया।

बसन्त ने यह निश्चय किया कि वह नेताजी से भेंट करेगा और उन्हें वहाँ से किसी बहाने दूर जाने को बाध्य करेगा।

परन्तु उसकी यह आशा सफलीभूत न हुई।

वह कई बार नेताजी के खेमे के दरवाजे तक गया लेकिन हर बार उनको छोटी-सी मेज के पास बैठे कागजातों में व्यस्त देखा। शायद वे कोई आवश्यक स्कीम तैयार कर रहे थे।

चिन्तित हो उठा बसन्त! वह देवता, जिसने एक दिन उसके प्राण बचाये थे, आज स्वयं प्राण खोने वाला था।

और बसन्त कुछ कर नहीं पा रहा था। वह लौट आया अपने खेमे में। देखा तो नीरा सैनिक वस्त्र पहने, राइफल कन्धे से लटकाये कहीं जाने को प्रस्तुत थी।

"कहाँ नीरा!" बसन्त ने पुकारा।

"अब पहरा बदलने का समय आ पहुँचा भैया....आज दस बजे से ४ बजे तक नेताजी के शिविर में मेरा पहरा है...."

"अच्छा जाओ!" कह बसन्त अपने बिस्तर पर जा पड़ा।

नीरा चली गई। उस समय रात के दस बज रहे थे।

बसन्त सोच रहा था—नीरा आखिर स्त्री ही तो है। उसका हृदय उतना ही कोमल होगा, जितना कि अन्य स्त्रियों का। वह प्रेम के वशीभूत होकर कर्तव्य की बलि अवश्य ही दे देगी।

आज जनरंजन की बातों से वह इतनी बिचलित हुई थी। स्पष्ट था कि नीरा के विचार चाहे जनरंजन के प्रतिकूल हों परन्तु उसके हृदय में जनरंजन के लिये अगाध प्रेम अवश्य है।

और आज इस काली रात में, उसका यह प्रेम, प्रलय की सृष्टि न कर दे। परन्तु बसन्त भी तो अपनी बहन के प्रेम के वशीभूत होकर अपने कर्तव्य पथ से विमुख हुआ जा रहा था।

क्यों नहीं वह अपनी राइफल उठाकर नेताजी के खेमे के पास छिप रहता, ताकि छिपकर आते हुये जनरंजन को वह अपनी गोली का निशाना बना सके और परतन्त्र भारत को आजाद करने का बीड़ा उठाने वाले देवता की जान बचा सके।

बसन्त ने अपना हृदय टटोला। यह कार्य वह नहीं कर सकता था। जनरंजन के प्राण संकट में नहीं डाल सकता था। नीरा उसकी बहन थी—जनरंजन उसका बहनोई था।

ममत्व का भीषण रोर उठ खड़ा हुआ अन्तराल में। परन्तु सघन अंधकार के मध्य आशा की एक किरण चमकी। बसन्त ने निश्चय किया कि ज्योंही जनरंजन नेताजी को गोली मारेगा, पास खड़ा बसन्त भी स्वयं अपने को गोली मार लेगा।

लोग यही समझेंगे कि बसन्त ने ही नेताजी को गोली मारी।

और बसन्त भी मरते समय यह बात स्वीकार कर लेगा, ताकि उसके बहन-बहनोई पर कोई आपत्ति न आये।

दुनिया उस पर थूकेगी तो थूकने दे। वह यही करेगा। नेताजी की जान बचाना उसके बूते के बाहर की बात है—परन्तु अपनी बहन के लिये वह अपने बहनोई की जान अवश्य बचायेगा।

और उठ खड़ा हुआ बसन्त। राइफल ली और चल पड़ा।

उस समय रात के बारह बजे थे।

× × ×

आधी रात। जङ्गल की नीरवता बड़ी ही भयङ्कर लग रही थी। उसी के मध्य 'आजाद हिंद फौज' के नायक, नेताजी सुभाष का खेमा सर उठाये खड़ा था।

दरवाजे पर भरी-भराई राइफल लिये नीरा खड़ी थी।

अन्दर नेताजी अब भी अकेले मेज पर बैठे हुए, आजादी लेने के मार्ग का चिंतन कर रहे थे। एकाएक किसी की पदचाप सुन नीरा का हृदय धड़क उठा। जनरंजन ही होगा....उसने सोचा।

सचमुच वह जनरंजन ही था। वह दबे पाँव खेमे के पिछवाड़े आया। इस समय नीरा का बदन काँप रहा था, न जाने क्यों?

धीरे-धीरे नीरा खेमे के बगल में आई और वहीं से छिपकर जनरंजन की कारवाई देखने लगी। जनरंजन और नीरा दोनों में से किसी को यह मालूम न था कि खेमे के दूसरी ओर एक मनुष्या-

कृति खड़ी हुई जनरंजन का वह कार्य देख रही थी।

वह था बसन्तकुमार।

जनरंजन ने छूरी निकालकर धीरे से खेमे की दीवार में एक छेद बनाया। उसने उस छेद में आँख लगाकर अंदर की ओर झाँका।

धुँधली रोशनी हो रही थी और कोई व्यक्ति मेज के पास बैठा हुआ कुछ लिख रहा था। उसकी पीठ उस ओर थी।

जनरंजन को पक्का विश्वास हो गया कि वह व्यक्ति सुभाष बाबू ही हैं। उसका हृदय हर्ष से उछलने लगा।

आज इतने दिनों के बाद उसे यह सुअवसर प्राप्त हुआ था।

उसने सतर्कतापूर्वक अपने चारों ओर देखा—फिर एक भरी हुई पिस्तौल निकाली। छिपी हुई नीरा ने अपनी हथेलियाँ आँखों पर रख ली। जनरंजन उस छेद में आँख लगाकर न जाने क्या पुनः देखने लगा, शायद अपना लक्ष्य ठीक कर रहा था।

दूसरी ओर खड़े हुए बसन्त ने राइफल की नली अपने सीने की ओर कर ली। वह अभागा युवक अपने प्राण देना चाहता था।

जनरंजन को एकदम तैयार देखकर नीरा का हृदय हाहाकार कर उठा। उफ्! उसकी शिथिलता से, आज उसका नेता, उसका देवता, उसके देश का विद्रोही शेर—मृत्यु को प्राप्त हो रहा था और वह कुछ भी नहीं कर सकती थी।

उसकी अन्तरात्मा उसे धिक्कार उठी। उसके सामने चालीस करोड़ दुखियों की करुण चीत्कार, साकार होकर खड़ी हो गई।

उसने धीरे से, कन्धे पर से अपनी राइफल उतारी। वह भरी हुई राइफल अपने हाथ में लेकर खड़ी हो गई। जनरंजन भी उस समय तक पूर्ण तैयारी कर चुका था। उसने अपनी पिस्तौल की नली उस छेद में डाल दी। उसकी उँगली घोड़े पर जा पड़ी।

सन्निकट ही था कि उसकी पिस्तौल आजादी के दीवाने सुभाष को सदा के लिये सुला देती, उसी समय नीरा के हाथ की राइफल दिशाओं को प्रताड़ित करती हुई गरज उठी।

दुम्म की आवाज चारों ओर प्रताड़ित हो गई।

जनरंजन का तड़पता हुआ शरीर, कटी डाल की तरह, भूमि पर लहूलुहान हो गिर पड़ा। आज एक देवी ने, चालीस करोड़ भाइयों की स्वतन्त्रता के लिये, अपनी माँग के सिन्दूर में अपने हाथों आग लगा ली। आज एक भारतीय नारी ने अपने देश के लिये स्वयं अपने पति की हत्या की थी।

नीरा ने राइफल पुनः अपने कन्धे पर लटका ली। उसी समय किसी ने उसके कन्धे पर हाथ रख दिया। नीरा चौंक पड़ी। घूमकर देखा उसने—उसके सामने मन्द-मन्द मुस्कराते हुए, भारत के भाग्य विधाता स्वयं नेताजी खड़े थे।

"शाबास...." नेताजी हर्षित स्वर में बोले।

"नेताजी! देवता...." कहती हुई नीरा धड़ाम से नेताजी के चरणों पर गिर पड़ी। नेताजी ने उसका हाथ पकड़कर उठाया।

"उठो नीरा!...." उन्होंने कहा।

तब तक बसन्त आदि भी वहाँ आ पहुँचे थे।

सबने नेताजी को झुककर सम्मान-प्रदर्शन किया।

"देखो!....भारत की इस देवी को देखो!...." नेताजी ने कहा और नीरा की ओर संकेत किया।

"आजादी की इस प्रतिमा की ओर देखो....जिसने अपने नेता के लिए अपने अरमानों का खून किया है...."

"........" सब चुप खड़े थे।

"यह मेरी मृत्यु का षडयंत्र था...." नेताजी कहने लगे—"मेरे गुप्तचरों ने मुझे प्रत्येक बात विस्तारपूर्वक बताई। मैं सारी घटना से अवगत हो गया। मेरे खेमे में मेरे स्थान पर मेरा एक सहकारी बैठा था और मैं छिपकर इधर-उधर की खबरें लेने लगा।

"......."

"मुझे मालूम है...." नेताजी बोले—"सब कुछ मालूम है.... नीरा देवी और बसन्त कुमार के हृदय की बेचैनी का कारण भी मैं भली प्रकार जानता हूँ...."

"आप सर्वज्ञ हैं देवता!...." बसन्त ने कहा।

"मैं छिपा हुआ देख रहा था...." नेताजी कहते रहे—"यदि मैं चाहता तो नीरा को राइफल चलाने से रोक सकता था और जनरंजन को क्षमा कर सकता था, मगर मैंने ऐसा नहीं किया।"

"........" सबने प्रश्नसूचक दृष्टि से नेताजी की ओर देखा।

"मैं देखना चाहता था कि भारतीय देवियों में आत्म-बलिदान का साहस है या नहीं ?....मैं जानना चाहता था कि आज की नारी हृदय में अपनेदेश के लिए अधिक प्रेम है या अपने पति के लिए....मैं समझना चाहता था कि हमने जिन-जिन लोगों पर विश्वास किया है, वे वास्तव में विश्वसनीय हैं या नहीं....'

"........"

"मैं बहुत प्रसन्न हूं नीरा !...." नेताजी बोले—"तुमने अपने को नारियों में सर्वश्रेष्ठ प्रमाणित कर दिया है। तुम मेरी दृष्टि में आदरणीय हो। मैं तुम्हारा नमन करता हूं भारत की देवी। मैं तुम्हारे चरण छूता हूं...."

× × ×

लड़ाई भयंकर रूप से होती रही। आजाद हिन्द फौज की प्रगति दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती रही। स्वतन्त्रता के लिए मर मिटनेवाले वीर जान की बाजी लगाकर, रणभूमि में अपना खून बहा रहे थे। १८ मार्च सन् १६४४ को आजाद हिन्द फौज ने बर्मा को सीमा पार की तथा अपने देश की पवित्र भूमि में पैर रखा।

उस समय अपनी मातृभूमि का दर्शन करके सैनिक हर्षोत्फुल्ल हो उठे। उन्हें ऐसा लगा, जैसे वे स्वराज्य पा गये हों और अब उनका महान देश उन महान पुरुषों का ही हो। शीघ्र ही आजाद हिन्द फौज ने कोहिमा पर अधिकार कर लिया। नेताजी सुभाष ने यह सुना तो उनके हर्ष का पारावार न रहा। उन्होंने रणभूमि के संचालक मेजर जनरल शाहनवाज को बधाई दी और कहा कि हमने भारतभूमि में चरण रखा है, अब जल्द ही हम विजयी होंगे।

सुभाष बाबू कुछ दिनों तक रणक्षेत्र का निरीक्षण करके पुन।

रंगून चले आये। २० मार्च १६४४ को जापानी राजदूत मि० हाचिया नेताजी से भेंट करने आये। वे आजाद सरकार के वैदेशिक मन्त्री कर्नल चटर्जी तथा प्रकाशन मन्त्री मि० ऐय्यर से मिले और कहे कि नेताकी सुभाष से मिलना चाहते हैं।

जापानी नेताजी का कितना आदर करते थे, वह इसी बात से स्पष्ट है कि जब जापानी राजदूत मि० हाचिया, कर्नल चटर्जी के आफिस में घुसे तो सामने ही टँगी हुई नेताजी की फोटो देख तुरन्त रुक गये और अटेन्सन होकर सैल्यूट दिया. तब आगे बढ़े।

यही नहीं, जापान सरकार का आदेश था कि उच्च से उच्च जापानी अफिसर, सुभाष बाबू के अथवा उनके चित्र के सामने आते ही सैल्यूट देते। जापानी सरकार की दृष्टि में सुभाष बाबू उतने ही आदरणीय थे, जितने की स्वयं जापान सम्राट।

मि० हाचिया का आवेदनपत्र नेताजी के समक्ष रखा गया। राजदूत ने सुभाष बाबू से मिलने की प्रार्थना की थी।

नेताजी ने राजदूत से उनके राजदूत होने का प्रमाणपत्र माँगा परन्तु मि० हाचिया तो अपना प्रमाणपत्र टोकियो में ही भूल आये थे। अतः सुभाष बाबू ने अपने सहकारी द्वारा, मि० हाचिया से मिलने में असमर्थता प्रकट की और कहा कि वे अपना प्रमाणपत्र दिखलाने पर ही उनसे भेंट कर सकते हैं।

मि० हाचिया ने जापान सरकार को शीघ्र ही प्रमाणपत्र भेजने के लिए लिखा परन्तु यातायात के साधनों की गड़बड़ी से वह प्रमाणपत्र मि० हाचिया को शीघ्र न मिल सका। नेताजी सुभाष जापानी राजदूत से न मिले, उसका एक बहुत बड़ा कारण था। सुभाष बाबू यह भली प्रकार जानते थे कि आजकल ब्रिटिश गुप्तचर उनके खून के प्यासे होकर सर्वत्र घूम रहे हैं और उनमें से बहुत से उनकी सेना में भी प्रविष्ट हो चुके हैं।

नेताजी ने शीघ्र ही, कैप्टेन शाहनवाज, कैप्टेन सहगल तथा ढिल्लन के नाम एक आज्ञा-पत्र प्रेषित किया जिसमें उन्हें आज्ञा दी गई थी कि वे आजाद हिन्द फौज में से ऐसे व्यक्तियों की खोज

करें, जो गद्दार हों अथवा उनका शीघ्र ही कोई भयंकर कार्य करने का इरादा हो। तुरन्त ही आजाद-हिन्द फौज का निरीक्षण शुरू हुआ। कितने ही सन्दिग्ध व्यक्ति पकड़े गए।

उन व्यक्तियों में से कितने ही तो फौज के उच्च-पदस्थ अधिकारी थे, जिनका इरादा देश की आजादी के लिए लडती हुई उस फौज के साथ विश्वासघात करने का था। ऐसे व्यक्तियों में से कुछ को भयानक मौत की सजा दी गई, कुछ को कैद कर रखने का हुक्म हुआ और अधिकांश फौज में से निकाल दिये गये।

अब 'आजाद हिन्द फौज' विश्वासघाती तथा विद्रोही सैनिकों से खाली हो गई। शीघ्र ही फौज ने जबरदस्त लड़ाई छेड़ दी। एक के बाद एक सफलता उन्हें मिलती गई।

मार्च १९४४ में ही कैप्टेन शाहनवाज ने अपने वीर योद्धाओं के सहयोग से पोपा पहाड़ियों पर तिरङ्गा झण्डा लहरा दिया।

अप्रैल १९४४ में झाँसी रानी रेजीमेण्ट की वीरांगनायें जब मैदानेजङ्ग में पहुँची तो उनके पास अपूर्व साहस के अतिरिक्त कुछ नहीं था। खाना, कपड़ा, बारूद सब की कमी थी।

मोरचा घने जंगलों, पहाड़ों और घाटियों में बना था। वहाँ के निवासियों ने योद्धा तो देखे थे परन्तु सैनिक वेश में रमणियाँ नहीं देखी थी। झाँसी रानी रेजीमेण्ट की रमणियाँ वहाँ के निवासियों के लिए प्रदर्शनी की एक वस्तु हो गईं।

दूर-दूर से लोग उन वीरांगनाओं का दर्शन करने के लिए आये।

ब्रिटिश मोर्चे पर पुरुष नहीं, वरन स्त्रियाँ हैं।

एक दिन! रात के तीन बजे महिला सैन्य का एक दल छिपे-छिपे शत्रु का मर्दन करने के लिए आगे बढ़ा।

एक पहाड़ी पर पहुँच कर वह दल रुक गया। ब्रिटिश सेना अब केवल एक मील की दूरी पर रह गई थी।

जिस समय महिला सैन्य दल को फायर की आज्ञा मिली वे वीर नारियाँ अपना नारीत्व भूल कर रणचण्डी बन गईं।

धड़ाधड़ गोलियाँ बरसने लगीं। हुक्म पाते ही रमणियाँ अपनी

संगीनें लेकर शत्रु सेना की ओर दौड़ीं।

घाटी उतरने में कितनों के ही प्राण गये परन्तु वे देवियां आगे बढ़ती ही गईं। उन्हें अपनी संगीनों की नोंक के आगे शत्रु का वक्ष दृष्टिगोचर हो रहा था। वे पागल युवतियाँ चालीस करोड़ सिसकती हुई आत्माओं के लिए स्वातन्त्र्य भूमि में अपने प्राणों की आहुति देने कूद पड़ीं। 'जय हिन्द' के घोष से घाटी गूंज उठी।

शत्रु उन रणचण्डियों का वेग सँभाल न सका। उसने घुटने टेक दिए। पुरुषों के घमण्ड को नारी का वेग उड़ा ले गया।

× × ×

अप्रैल १९४४ में आजाद हिन्द बैङ्क की स्थापना की गई। कितने ही सेठ-साहूकारों ने अपनी अगम सम्पत्ति का दान कर उस बैङ्क को स्थायी बनाया। २ महीने तक फौज के मोरचों का निरीक्षण करके नेताजी सुभाष ४ जुलाई १९४४ को रंगून वापस लौटे।

एक साल पहले इसी दिन सिङ्गापुर में पूर्वी एशिया के ३० लाख भारतीयों ने स्वतन्त्रता की प्रतिज्ञा की थी।

रंगून का जुबिली हाल दर्शकों से भरा था। सड़कों पर भी लाउडस्पीकर लगाने पड़े थे। सैनिकों का उत्साह अपार था। सभा समाप्त होने पर लोगों को हटाने में डेढ़ घण्टा लगा। ५ जुलाई १९४४ को नेताजी ने ब्रिटिश सरकार के दिल्ली रेडियो का पर्दाफाश किया और अपने सैनिकों को 'सरदारे जङ्ग' और 'वीरे हिन्द' के तगमें दिए। उसी दिन सुभाष बाबू का तुलादान भी हुआ। नेताजी सोने, चाँदी और जवाहरातों से तौले गये।

आजादी के दीवाने नर-नारियों ने अपने नेता के लिए अपने उपभोग की सारी वस्तुयें प्रदान कर दी। गहने, चूड़ियाँ, हार, अँगूठियाँ चैन आदि तरह-तरह की स्वर्ण वस्तुओं से तराजू का पलड़ा भर गया। एक मुसलमान सज्जन ने आजाद हिन्द सरकार के लिए एक करोड़ रुपया दान किया।

६ जुलाई को नेताजी ने रेडियो पर गांधीजी को सम्बोधित

कर भाषण दिया—"ब्रिटेन की जनता और ब्रिटिश सरकार में भेद निकालना व्यर्थ है। दोनों कट्टर साम्राज्यवादी है। दुनिया में सबसे अधिक धोखेबाज अंग्रेज ही होते हैं। उनसे अब मैं लड़ रहा हूँ। नई दिल्ली के वायसराय भवन पर तिरङ्गा झंडा फहरा कर ही हम दम लेंगे राष्ट्रपिता पूज्य बापू! हमें आशीर्वाद दीजिए...."

१० जुलाई १६४४ को एक विशाल रैली में भाषण करते हुए नेताजी सुभाष ने कहा—'भारत की जनता का आन्दोलन तभी सफलीभूत हो सकता है, जब किसी बाहरी राष्ट्र की सहायता प्राप्त हो सके, इसीलिए हमने दूसरा मोर्चा खोला है। शत्रु शक्तिशाली है फिर भी हमारे पास विश्वास और बलिदान का हथियार है...."

११ जुलाई १६४४ को बहादुरशाह के मकबरे पर आजाद हिंद फौज ने परेड की। सुभाष बाबू ने कहा—"हमें १८५७ तथा बाद को हुए ब्रिटिश अत्याचारों का बदला लेना है। भारतीय अपने देश से प्रेम तो करते हैं परन्तु अपने शत्रु से घृणा करना उन्हें नहीं आता। हम उन्हें घृणा करना सिखायेंगे। शत्रुओं के रक्त से हम अपनी प्रतिशोधाग्नि प्रज्ज्वलित करेंगे। अपने खून से हम पुराने पाप को धो डालेंगे और आजादी का मूल्य चुकाकर शत्रु से बदला लेंगे।"

१ अगस्त १६४४ को तिलक-पुण्य तिथि मनाई गई। शाम को एक सहभोज हुआ, उसमें नेताजी ने कहा—

"यदि पूज्य बाबू का 'भारत छोड़ो' आन्दोलन सफल हुआ होता तो मैं अपनी यह लड़ाई बन्द कर देता। पर स्वार्थी गोरों ने महात्माजी का वह प्रस्ताव ठुकरा दिया है और अब उसका प्रतिकार करने के लिए केवल हमारा यत्न ही अवशेष है...."

३ अगस्त १६४४ को नेताजी सुभाष ने, आजाद हिन्द संघ के प्रमुख कार्यकर्त्ताओं के समक्ष वर्तमान युद्ध-स्थिति पर एक भाषण दिया—"हमने बहुत देर करके अपना युद्ध प्रारम्भ किया। हमारे रास्ते वर्षा ऋतु के कारण खराब हो गये हैं। नदियों की धारा से उल्टी दिशा को ओर हमें जाना पड़ता है।

हम इम्फल नहीं ले सकें। बरसात के पहले हमने अराकान में शत्रु को रोका, कलादान में उसको हराकर आगे बढ़े। टिडिडम, पालेल और कोहिमा.....सब पर हमने अपना अधिकार कर लिया।

हाका क्षेत्र में हमने शत्रु को रोक दिया। पानी बरसने पर शत्रु ने कोहिमा-इम्फल रोड पर अपना अधिकार कर लिया।

इन युद्धों ने हमारे सैनिकों में दृढ़ आत्मविश्वास भर दिया है। वे केवल संगीने लेकर शत्रु पर टूट पड़ते हैं। ब्रिटिश सेना के भारतीय हमारी ओर आने को तैयार हैं। जापानी भी जान गये हैं कि हम सफलतापूर्वक लड़ सकते हैं ...."

वर्षा ऋतु आरम्भ हो जाने के कारण सुप्रीम कमाण्डर नेताजी सुभाष ने, २१ अगस्त १६४५ को युद्ध की प्रगति स्थगित कर देने की घोषणा की और भावी आक्रमण के लिए तैयारी करने को कहा।

सितम्बर १६४४ तक शहीद तथा स्वराज्य टापुओं पर कर्नल लोकनाथ शासक बनकर रहे। सितम्बर के प्रथम सप्ताह में बर्मा के भारतीय-स्वातन्त्र्य संघ का सम्मेलन हुआ।

२२ सितम्बर १६४४ को रंगून में यतीन दास पुण्य तिथि एवं शहीद दिवस मनाया गया। जुबिली हाल ठसाठस भरा हुआ था। वक्ताओं ने आज तक शहीद हुए देशभक्त वीरों एवं वीरांगनाओं का अभिनन्दन किया। लाहौर जेल में अनशन कर, घुल-घुलकर मरने वाले यतीनदास की बलिदान कथा दुहराई गई।

श्रोताओं के नेत्रों में आँसू छलछला आये।

नेताजी सुभाष ने भाषण दिया—"हमारी मातृभूमि स्वाधीनता चाहती है। वह स्वतन्त्र हुए बिना नहीं रह सकती। परन्तु स्वतंत्रता बलिदान चाहती है—सर्वस्व का बलिदान चाहती है। क्रान्तिकारियों की तरह आपको भी अपना सर्वस्व निछावर करना होगा।

युद्ध क्षेत्र पर भेजने के लिए आपने अपने-अपने पुत्रों को दे दिया है परन्तु स्वतन्त्रता देवी की परितृप्ति नहीं हुई।

उसे तृप्त करने का रहस्य मैं बताता हूँ। आज वह केवल फौज के लिए योद्धा और सैनिक ही नहीं चाहती, वरन् वह चाहती है,

विद्रोही !...पुरुष विद्रोही और स्त्री विद्रोही....जो आत्मघाती दलों में शामिल होने को तैयार हों....जो अपने शरीर के बहते हुए खून की नदियों में शत्रु का साम्राज्य डुबो देने को तैयार हों....

तुम हमको खून दो ! मैं तुम्हें आजादी दूँगा ! आजादी की यही माँग है—तुम हमको खून दो ! मैं तुम्हें आजादी दूँगा !"

गम्भीर गर्जन सुनकर श्रोता स्तब्ध रह गए। सुभाष की जादूभरी वाणी ने सभी के अन्तस्थल में नवचैतन्य एवं स्फूर्ति भर दी।

"हम तैयार हैं....हम खून देंगे...." सब चिल्ला पड़े।

"सुनिए !...."नेताजी ने गम्भीर स्वर में कहा—"आवेश में कोई बात कह जाना न्यायोचित नहीं....पूर्णतया विचार कर लें।"

"हमने विचार कर लिया है...." लोग चिल्ला पड़े—"अपने नेताजी की अंजुलि, हममें से प्रत्येक अपने खून से भर देगा...."

"नहीं ! हम यह नहीं चाहते हम केवल यह चाहते हैं कि आप इस प्रतिज्ञापत्र पर अपने रक्त से हस्ताक्षर कर दें।"

उपस्थित जनता ध्यानपूर्वक नेताजी का वक्तव्य सुन रही थी।

"हस्ताक्षरकर्त्ता को अपने अस्त्र से अपना खून बहाना होगा .."

"हम रक्तदान को प्रस्तुत हैं....हम अपना खून देंगे...."

कहती हुई सारी जनता नेताजी की ओर दौड़ पड़ी।

नेताजी ने देखा—सबसे आगे बसन्तकुमार मल्लिक और नीरा मल्लिक थे। किसी ने चाकू से, किसी ने आलपीन से अपना रक्त निकाला। टप-टप करके रक्त-बिन्दुओं से एक प्याला भर गया।

आजादी के लिए तड़पते हुए शेरों ने खून से अपना हस्ताक्षर दिया। वह दृश्य अवर्णनीय था। भारत के स्वर्णिम युग की याद आ रही थी। ऐसे वीरों का राष्ट्र भला कभी परतन्त्र रह सकता है जो ब्रिटिश साम्राज्यवाद की कब्र खोदने को तैयार थे।

२ अक्टूबर १६४४ ! रंगून में गांधी-जयन्ती समारोहपूर्वक सम्पन्न हुई। हर भारतीय के घर पर तिरङ्गा झण्डा लहरा रहा था। सबेरे आजाद हिन्द फौज ने झण्डाभिवादन किया। भारतीयों

ने स्वाधीनता की प्रतिज्ञा दुहराई। हजारों भारतीयों ने स्वतन्त्रता के प्रतिज्ञापत्र पर हस्ताक्षर किए।

नेताजी सुभाष ने अपने भाषण में कहा—"गांधीजी मेरे गुरु हैं, मैं अपने गुरु की स्मृति को प्रणाम करता हूँ।

इस क्षितिज के पार, इन बलखाती हुई नदियों और लहराते हुए जंगलों के पार, हमारी स्वर्णभूमि है....हमारे सपनों का संसार। वह देश संसार का सबसे सुन्दर देश है। उसके आकाश में चाँद अजब रोशनी फेंकता है। उसके पेड़ों की डाल पर विहङ्ग अजब मिठास से बोलते हैं और उन पेड़ों की छाँव में बैठकर, वहाँ के ऋषियों ने अपने जीवन के विचित्र रहस्य हमें बताये हैं।

महात्मा गांधी जिनकी जयन्ती आज हम मना रहे हैं, जगत गुरु एवं आधुनिक ऋषि हैं। उनकी अहिंसा ही मानवता की एक-मात्र आशा है। लेकिन गुलाम देश की अहिंसा, अहिंसा नहीं कम-जोरी कहलाती है। इसलिए पहले हम शस्त्र द्वारा अपने देश को आजाद करायें। मौत की मंजिल पार करते हुए हमें दिल्ली पहुँचना है। जिस दिन लाल किले पर तिरङ्गा झण्डा लहरायेगा उस दिन मणि-मुक्ता-जड़ित सिंहासन पर हम अपने गुरु महात्मा गांधी को बिठायेंगे, गंगाजल से उनके चरण धोयेंगे और उनसे कहेंगे कि अब आप संसार का नेतृत्व अपने हाथ में ले लीजिये। अब आपके अहिंसा की आवश्यकता है मेरे गुरुदेव!"

उक्त वक्तव्य से यह स्पष्ट है कि आन्तरिक विचारों तथा कार्य-प्रणाली में विभिन्नता होते हुए भी, नेताजी सुभाष के हृदय में पूज्य बापू के लिए कितना आदर-भाव था। वे महात्मा गांधी को अपना गुरु मानते थे।

परन्तु अपने गुरु गांधीजी के अहिंसा सिद्धान्त को भारत जैसे परतन्त्र देश के लिए हानिकारक समझते थे। उनकी दृष्टि में, एक गुलाम देश का अहिंसा की रट लगाना, दूसरों की दृष्टि में अपनी शक्तिहीनता प्रदर्शित करना था।

यदि शक्ति एवं साधन के रहते हुए अहिंसा का व्रत धारण

किया जाय तो वह आदरणीय हो सकता है परन्तु अपनी विवशता एवं निर्बलता पर पर्दा डालने के लिए अहिंसा शस्त्र का उपयोग किया जाय, यह नेताजी सुभाष की दृष्टि में उचित नहीं था।

वे तो क्रान्ति चाहते थे। अपनी अपरिमित शक्ति द्वारा शत्रु के दर्प को चूर-चूर करना चाहते थे।

• •

अक्टूबर १९४४ के मध्य में नेताजी पुनः युद्ध-भूमि का निरीक्षण करने गए। वे मोरचे के हर सिपाही के पास आये और उससे सुख-दुख का समाचार पूछे। उन्होंने कहा—"यदि किसी सिपाही को मृत्यु से डर हो तो वह निर्भय होकर कह दे....मैं उसे पीछे भेज दूंगा...."

परन्तु एक भी सिपाही ऐसा न निकला, जिसने प्राण विसर्जन करने के बदले, पीछे जाकर प्राणों की रक्षा करनी चाही हो। नेताजी जब बसन्त कुमार मल्लिक के सामने आये तो उन्होंने देखा, कीचड़ में चलने के कारण उसके पैर मिट्टी से सने हुए हैं। वे हँस पड़े,—"बहुत भाग्यशाली हो बसन्त ?....तभी तो मातृभूमि की प्यारी-प्यारी मिट्टी तुम्हारे पैरों से चिपकी रहती है...."

"........" बसन्त कुछ नहीं बोला।

"लाओ...." नेताजी बोले—"मैं तुम्हारे पैर छूकर उस पवित्र मिट्टी का स्पर्श तो कर लूँ...." और नेताजी बसन्त का पैर पकड़ने को झुके तब तक बसन्त उनके पैरों पर लोट गया था।

नेताजी का वह प्रेम देखकर सभी गद्‌गद् हो उठे।

उनके प्रेम के ही कारण आजाद हिन्द फौज के वीर सिपाही प्यास और भूख को तिलांजलि देकर लड़ते रहते थे।

कभी-कभी उन्हें दो-दो चार-चार रोज तक पानी नहीं मिलता था। हफ्तों बिना खाये-पिए ही वे युद्ध करते थे।

जब नेताजी अपने खेमे में वापस लौटे तो नोरा ने एक पत्तल में उनके सामने भोजन ला रखा।

"बड़ा अच्छा भोजन बनाया है तुमने नीरा देवी ?...." नेताजी ने पत्तल की ओर देखकर कहा।

"........" नीरा चुप खड़ी रही।

नेताजी पत्तल में से कौर उठाकर खाने लगे।

आँसू आ गये नीरा की आँखों में, यह देखकर की देश का वह महान् नेता, आजादी के लिए, आज उबाली हुई घास खा रहा था–सो भी अत्यन्त हर्ष के साथ। मोरचे पर खाद्यान्न की कमी थी और आजकल तो अन्न का एक दाना भी दुर्लभ था।

सैनिक केवल घास-पत्तियों पर निर्वाह करते थे।

२१ अक्टूबर १६४४। नेताजी मिगलडन में प्रथम इनफैक्टरी ब्रिगेड के समक्ष भाषण दे रहे थे। जब वे भाषण दे चुके को बटालियन को आगे बढ़ने की आज्ञा हुई।

उसी समय तेजी से उड़नेवाले शत्रु के लड़ाकू विमान ऊपर दिखाई दिये। वे तुरन्त गोते लगा-लगाकर गोले बरसाने लगे। इधर ऐंएटी ऐयरक्रेफ्ट गन्स ने भी गोले उगलने शुरू कर दिए। शत्रु ने नेताजी को नष्ट करने का पूरा निश्चय कर कर लिया था। विमानों के दल के दल आते, गोते लगाते और बम वर्षा करके भाग खड़े होते। धुएँ का अम्बार आकाश पर छा गया था।

नेताजी उस समय सेना का सैल्यूट ले रहे थे। उनके साथ के अफिसरों ने उनसे प्रार्थना की कि वे तुरन्त खाईं में चले जायें। परन्तु नेताजी अपने स्थान से एक इंच न हटे। उन्होंने कहा— "आजादी पर जान देने वाले ये सैनिक, अपने चेहरों पर बिना किसी भय का चिन्ह अङ्कित किए यदि खड़े रह सकते हैं तो क्या मुझे ही अपने प्राणों के भय से भाग जाना उचित है ?"

इतने में एक गोला समीप ही गिरा, एक पेड़ से लगा और जोर से फटा। उस बिस्फोट से आजाद हिन्द सेना के थोड़े से सिपाही कालकवलित हुए। परन्तु मृत्यु भय से, वहाँ का एक भी सिपाही टस से मस न हुआ। अचल खड़े रहें वे सब, क्योंकि उनका नेता भी उन्हीं के सामने सीना ताने खड़ा था।

थोड़ी देर बाद शत्रु का एक विमान नेताजी के सर से २० फीट ऊपर से गोले बरसाता हुआ निकल गया। कुछ अफसरों ने नेताजी सुभाष को बलपूर्वक खींचकर खाई में ला बिठाया।

जनवरी १६४५ में फौज की दूसरी मुहिम प्रारम्भ हुई। उस दिन एक गरीब भारतीय ने अपनी एकमात्र सम्पत्ति, चाँदी का एक फूलदान नेताजी को समर्पित किया।

उस फूलदान का नीलाम १ लाख ५ हजार डालर में हुआ।

× × ×

इधर युद्ध की प्रगति अत्यन्त विलक्षण हो उठी थी।

मित्र राष्ट्रों की सेनाएँ बराबर बढ़ती आ रही थीं परन्तु आजाद हिन्द फौज के वीर सैनिक दृढ़तापूर्वक युद्ध कर रहे थे। युद्ध-क्षेत्र में उनके पास अन्न और जल की कमी तो थी ही, युद्ध-सामग्री का भी अभाव था। अब जापानी भी कुछ सहायता नहीं कर रहे थे, वे मित्र राष्ट्रों की प्रगति देखकर भयभीत हो उठे थे और अपनी रक्षा के लिए सुदृढ़ मोर्चा बनाने की फिक्र में थे। आजाद हिन्द फौज के उच्च आफिसर काफी चिन्तित हो उठे थे। उन्हें लगता था, स्वतन्त्रता प्राप्ति का उनका स्वप्न केवल स्वप्न ही रह जाएगा। २१ फरवरी १६४५ को कैप्टन शाहनवाज पोपा पहाड़ी से अग्रिम मोर्चे के लिए रवाना हुए। उसी दिन कोक पैडाङ्ग में पहुँच कर वे लेफ्टिनेण्ट ढिल्लन तथा कप्तान सहगल से मिले और उन्हें युद्धविषयक नये आदेश दिये। २३ फरवरी को नेताजी सुभाष, शान राज्य की राजधानी टङ्गी गये और गवर्नमेण्ट हाउस में ठहरे। उनके अंगरक्षक बसन्त कुमार मल्लिक तथा नीरा मल्लिक भी साथ थे।

उस दिन नेता जी दिन भर अपने कमरे में अकेले बैठकर कुछ आवश्यक कागजात देख रहे थे, बसन्त उनके पास आया।

"क्या है बसन्त !...." पूछा नेताजी सुभाष ने।

"कप्तान शाहनवाज का पत्र है देवता !" कहा बसन्त ने

और एक लिफाफा उनके समक्ष रख दिया।

नेताजी ने पत्र निकालकर पढ़ा। कप्तान शाहनवाज ने लिखा था—"मित्र राष्ट्रों की सेना के मुकाबले में हमारी बराबर पराजय हो रही है। हमें बाध्य होकर पीछे हटना पड़ रहा है। अन्न और जल के अभाव से हमारे कितने ही सैनिक मर चुके। शेष सैनिक भी घबड़ा उठे हैं। हमारी ओर के कितने ही गद्दार सैनिक तथा आफिसर ब्रिटिश सेना से जा मिले हैं। यह हमारे लिए अत्यन्त चिन्ता का विषय है। जो सैनिक हमारे साथ विश्वासघात करके इस प्रकार शत्रु से जा मिले हैं, वे हमारे लिए अत्यन्त भयङ्कर प्रमाणित होंगे। वे शत्रु को हमारे गुप्त भेद बतला देंगे।

ऐसी दशा में मेरी आपसे प्रार्थना है कि आप अपनी जान की फिक्र करें। क्योंकि ब्रिटिश गुप्तचर सदैव आपके पीछे हैं और सरकारी तोपें आप पर गोला फेंकने के लिए रात-दिन तैयार खड़ी रहती हैं। इधर मैंने घूम-घूमकर सब मोरचों का निरीक्षण किया है। कप्तान सहगल तथा लेफ्टिनेण्ट ढिल्लन से भी मिला। युद्ध अत्यन्त निराशपूर्ण ढंग से जारी है। सभी अधिकारी हताश से हो उठे हैं। स्वयं मेरा अपना विचार कोई आशाजनक प्रतीत नहीं होता। ऐसी स्थिति में क्या किया जाय—यह समझ में नहीं आता। आपके आज्ञा-पत्र की प्रतीक्षा में हैं। शाहनवाज

पढ़कर नेताजी सुभाष की मुखाकृति अत्यन्त गम्भीर हो उठी।

युद्ध की चिन्ताजनक परिस्थिति का समाचार उन्हें अत्यन्त खेद जनक हुआ। ऐसा लगा जैसे युग-युग के उनके अरमान मिट्टी में मिले जा रहे हों....जैसे उनकी लहलहाती आशाओं पर तुषारपात हो गया हो—जैसे जननी जन्मभूमि के पैरों में पड़ी हुई परतन्त्रता की बेड़ियाँ तीव्र रूप से झंकृत हो उठी हों—जैसे ४० करोड़ गुलामों की निरीह आँखें, करुण-भाव से देख रही हों।

नेताजी ने अपना सर उठाया तो देखा, बसन्त कुमार अब तक खड़ा था—"तुम और कुछ कहना चाहते हो क्या बसन्त।" पूछा नेताजी ने।

"क्या मोर्चे पर से कोई चिन्ताजनक समाचार आया देवता...."

"हाँ" नेताजी बोले—"परिस्थिति अत्यन्त जटिल हो रही है, कुछ समझ में नहीं आता कि क्या करें।"

"एक बात मैं कहना चाहता था देवता !"

"कहो !" नेताजी ने उत्सुक दृष्टि से देखा बसन्त की ओर।

"बात यह है देवता !" बसन्त कहने लगा—"कि ब्रिटिश गुप्तचर हमेशा आपका पीछा कर रहे हैं...."

"तुम्हारी इस आशंका का कारण ?...." नेताजी ने पूछा।

"बहुत बड़ा कारण है श्रीमान् !...." बसन्त बोला—"सारी बातें आपसे नीरा कहेगी...."

"कहाँ है नीरा ?" पूछा नेताजी सुभाष ने।

"वह द्वार पर उपस्थित है....आज्ञा हो तो अंदर बुला लूं।"

"बुलाओ ?...." गम्भीर स्वर में कहा नेताजी ने।

बसन्त ने द्वार पर जाकर नीरा को पुकारा।

नीरा नेताजी के समक्ष उपस्थित हुई।

"नीरा ! क्या तुम्हें किसी नई बात का पता लगा है ?...." पूछा सुभाष बाबू ने।

"हाँ देवता !...."

"सब बातें मुझे विस्तारपूर्वक बताओ...."

"आज दोपहर के समय मैं वेष बदल कर शहर में घूम रही थी कि...." कहने लगी नीरा—

× × ×

उस दिन दोपहर के समय नीरा वेष बदलकर शहर में घूम रही थी। उसका वह घूमना किसी महत्वपूर्ण कार्य से न था—वरन् वह यों ही दिल बहलाने शहर में चली गई थी।

एक होटल में जाकर उसने चाय पी। चाय पीते समय उसकी दृष्टि एकाएक कोने की मेज के पास बैठे हुए, एक मामूली आदमी

पर पड़ी। उस मनुष्य की वेष-भूषा सन्दिग्ध थी और वह ध्यान-पूर्वक नीरा की ओर देख रहा था।

उसकी भाव भंगिमा देखकर नीरा सतर्क हो गई।

जब उस व्यक्ति ने देखा कि नीरा भी उसकी ओर देख रही है तो जरा भी विचलित न हुआ। वह उठ खड़ा हुआ और इतमीनान के साथ नीरा की बगलवाली खाली कुर्सी पर जा बैठा।

बेयरे को बुलाकर उसने दो कप चाय लाने की आज्ञा दी।

"आप अकेले हैं, फिर भी आपने दो कप चाय का आर्डर क्यों दिया?" उत्सुकता न रोक सकने के कारण नीरा पूछ बैठी।

वह हंसा, बोला—"एक अपने लिए और एक आपके लिए।"

नीरा को विश्वास हो चला था कि यह व्यक्ति अवश्य ही कोई गुप्तचर है। उसने उसे उल्लू बनाने का दृढ़ संकल्प कर लिया।

"इतना अपनत्व क्यों महाशय! एक अपरिचित के साथ इतनी आत्मीयता क्यों प्रदर्शित कर रहे हैं आप?..." आँखों पर कटाक्ष का घातक तीर चढ़ाकर फेंका नीरा ने और उस कारी-तीर ने उस व्यक्ति के हृदय में पैठकर वहाँ हलचल मचा दी।

पुनः हँस पड़ा वह व्यक्ति—"एक भारतीय होने के नाते, आपके प्रति इस सम्मान-प्रदर्शन का आभारी हूँ मैं...." बोला वह—"यदि मैं भूल नहीं करता तो आप भी भारतीय हैं श्रीमती!"

"अवश्य भारतीय हूँ परन्तु मैं श्रीमता नहीं, कुमारी हूँ।"

नीरा की इस बात ने उस व्यक्ति के कलेजे में पैठकर गुदगुदी पैदा कर दी। नीरा और वह व्यक्ति दोनों अपनी-अपनी ताक में थे। नीरा समझती थी कि यह शत्रु का गुप्तचर है, अतः इससे किसी प्रकार कुछ भेद जान लेना चाहिए।

उधर उस व्यक्ति को नीरा पर सन्देह हो चला था। वह जान गया था कि यह युवती अवश्य ही 'आजाद हिन्द सरकार' की गुप्तचर है। अतः उसने सोचा इसे फांसकर, काम की बातें जान ले और अपने सदर दफ्तर को समाचार भेज दे। परन्तु नीरा के पास जो अनुपम एवं मादक सौन्दर्य था उसकी लपेट में आकर वह

व्यक्ति अपना ध्येय शायद भूलता जा रहा था।

"तो आप कुमारी हैं अब तक ? शुभ नाम क्या है आपका ?"

"कुमारी नीलम जोशी..."

नीरा की मुस्कान, आरक्त अधरों पर खिल उठी और उस व्यक्ति के हृदय पर वासना का साँप लोट गया।

"बड़ा सुन्दर नाम है आपका...." कहा उसने।

"और आपका नाम भी सुन्दर ही होगा महाशय !...." नीरा बोली— "क्या मैं जान सकती हूँ ?"

"नाम ?....मेरा नाम जानना चाहती हैं ? नाम है...."

वह व्यक्ति अस्त-व्यस्त स्वर में बोला। वह एकाएक घबड़ा उठा था, जैसे उसे किसी ऐसे प्रश्न की आशा न रही हो।

"बताने का कष्ट कीजिए अपना नाम !...." कहा नीरा ने।

"इसमें कष्ट की क्या बात है कुमारी नीलम !...." कुछ सोच कर बोला वह व्यक्ति—"मेरा नाम रसिकलाल मजूमदार है ..."

"तो आप बङ्गाली हैं ?...." पूछा नीरा ने।

"जी हाँ ?...." रसिकलाल ने कहा, यद्यपि वह बङ्गाली नहीं मालूम हो रहा था। उसने झूठ कहा था।

नीरा भी बंगाल की ही थी अतः वह उससे बंगला में बातें करने लगी। रसिकलाल बँगला तो समझता था ही नहीं, बीच-बीच में केवल हूँ-हाँ कर दिया करता था।

"क्या आप बँगला नहीं समझते ?...." पूछा नीरा ने।

"जी !....बात यह है...." वह कुछ घबराकर बोला—"मैं बङ्गाली हूँ अवश्य, मगर हमेशा अपने प्रान्त से बाहर रहा हूँ.... इसलिए बँगला भाषा समझ नहीं सकता "

"आश्चर्य है...." नीरा बोली —"आप बँगाली होकर भी बँगला नहीं जानते ! मुझे देखिए ! मैं युक्त प्रान्त की होते हुए भी बंगला, मराठी, पंजाबी, तेलगू आदि भाषाएं जानती हूँ...."

यह बात नीरा ने झूठ कही थी। बेचारा रसिकलाल अपने को बंगाली कहकर अजीब उलझन में पड़ गया था।

वह क्या जानता था कि नीरा बँगला भाषा जानती होगी।

तब तक बेयरा चाय के कप मेज पर रख गया था।

दोनों चाय पीने लगे चुपचाप। हाँ, बीच-बीच में दोनों नजरें उठाकर एक-दूसरे की ओर अवश्य देख लेते थे।

नीरा के नयनों में लहराते हुए हलाहल को देखकर रसिकलाल की वासना सजग हो उठी।

"आप यहाँ क्या करते हैं ?...." नीरा ने पूछा।

"मैं...." पुनः घबड़ा गया रसिक—"मैं....मैं तो यहाँ एक बैङ्क में क्लर्क हूँ....और आप ?...."

"मैं चांगलिग ब्रदर्स में टाइपिस्ट हूँ...."

बिना किसी हिचकिचाहट के नीरा ने उत्तर दिया।

"आशा है मेरा साथ पसन्द आया होगा...." बोला रसिक।

"ओह ! बहुत-बहुत !...." नीरा ने अपना हाथ रसिक के हाथ पर रख दिया। उस मूर्ख गुप्तचर का शरीर रोमांचित हो उठा—"मुझे आपका साथ बहुत पसन्द आया मि॰ रसिकलाल !"

"क्या आप मुझे अपना दोस्त समझेंगी कुमारी नीलम...."

"केवल दोस्त हो नहीं मिस्टर रसिकलाल !...." नीरा अँगड़ाई लेकर बोली—"मैं आपको अपने कलेजे में छिपा रखूँगी...."

"डार्लिङ्ग !" आवेशपूर्ण स्वर में बोला रसिक।

"डियर !...." धीरे से बोली नीरा।

यह स्पष्ट था कि रसिक अपना ध्येय भूलकर नीरा के मादक सौन्दर्य का शिकार हो चुका था—और नीरा ?

वह तो उस मूर्ख को बहलाकर कुछ पता लगाना चाहती थी।

"देखो !...." रसिकलाल बेयरा से बोला—"हम दोनों के लिए एक प्राइवेट रूम की व्यवस्था करो...."

"बहुत अच्छा हुजुर...." मुस्करा कर बोला बेयरा।

वह समझ गया कि इन दोनों दीवानों की जवानी कुलबुला उठी है और वासना की आग, प्राइवेट रूम में जाकर तृप्ति-वारि द्वारा बुझना चाहती है। शीघ्र ही दोनों प्राइवेट रूम में आ गये।

रसिकलाल ने नीरा के मादक सौन्दर्य की ओर लोलुप दृष्टि से देख उसे अपनी ओर खींचना चाहा तो नीरा ने उसे रोका।

“अभी नहीं! ...” वह बोली—“जरा ठहर जाओ! इन्तजार की तड़पन से दिल को और बेताब बनालो डियर....”

“नहीं नीलम....अब अधिक देर नहीं सही जायगी।”

“पहले कुछ और आने दो....” नीरा पहेली-सी बुझाई।

“और क्या ?....” पूछा रसिक ने।

“और कुछ !....”

“मुझे समझाकर कहो नीलम !....”

“और कुछ !....” नीरा बोली—“रम वगैरह !....”

“रम ?....ओह! मैं नहीं जानता था कि तुम पीती भी हो....मगर रम ठीक नहीं रहेगा....पोर्चुगल मँगाऊँ ?”

“जैसी तुम्हारी इच्छा !....”

शीघ्र ही बेयरा को एक बोतल ‘पोर्चुगल’ का आर्डर दिया गया। थोड़ी देर बाद पोर्चुगल सोड़ा तथा जाम आया।

नीरा ने जाम भरा और रसिक के होठों से लगाया।

“पहले तुम पीओ मिस नीलम !....” कहा रसिक ने।

“नहीं, पहले तुम मिस्टर रसिकलाल !....”

और रसिकलाल इनकार न कर सका।

कई जाम गले के नीचे उतरते ही रसिक के नेत्र लाल-लाल हो उठे। जबान पर लड़खड़ाहट आ गई। शरीर अवश हो गया।

“अरे! तुमने तो अभी तक एक बूँद भी नहीं पी ?....” आश्चर्यपूर्ण स्वर में बोला रसिकलाल।

“यह पूरी बोतल तुम पी लो, मैं तो अपने लिए रम ही मँगाऊँगी, मुझे पोर्चुगल पसन्द नहीं....” नीरा ने कहा।

“तुमने पहले क्यों नहीं बताया ! मैं रम ही मँगाता....”

“क्या हर्ज है ?....”

दो-तीन जाम और पीते ही बोतल खाली हो गई और रसिकलाल मदहोशी से झूमने लगा।

आज उसने अपनी शक्ति से बाहर मदिरा-पान किया था। सुन्दरी नीरा के जाम का तिरस्कार वह किस प्रकार करता?

नीरा ने देखा उसका शिकार अपने वश में नहीं है। वह रसिक की बगल में जा बैठी। उसने अपना दाहिना हाथ उसके गले में डाल दिया। रसिक उस मदहोशी में भी सिहर उठा।

"एक बात तो तुमने बताया ही नहीं डियर रसिकलाल!"

"कौन?....कौन-सी बात डार्लिङ्ग!...."

"यही कि तुम हो कौन?...."

"क्या मैंने तुमसे नहीं बताया?...." रसिकलाल के मुख से ठीक से शब्द नहीं निकल रहे थे—"बताया तो था...."

"कब बताया?"

"नहीं बताया?....मैं भी कैसा बेवकूफ हूँ कि अपनी डार्लिङ्ग से भी छिपा रहा हूँ....सुनो, मैं ब्रिटिश सरकार का जासूस हूँ।"

"जासूस!...." बनावटी आश्चर्य प्रदर्शित करती हुई बोली नीरा—"तुम जासूस हो?....अरे बाप रे...."

"क्यों? क्या हुआ कुमारी नीलम!...."

"मुझे तुमसे डर लग रहा है रसिकलाल!" नीरा बोली।

"देखो नीलम! इसीलिए तुमसे बताता नहीं था कि तुम जरूर डर जाओगी। मगर इसमें डरने की क्या बात है? मैं जासूस दूसरों के लिए हूँ, तुम्हारे लिए तो मोम का पुतला हूँ...."

हँस पड़ी नीरा, रसिकलाल की मूर्खतापूर्ण भंगिमा देखकर। बोली—"खैर! तुमने मेरा डर दूर कर दिया....हाँ यह तो बताओ, तुम यहाँ आये किसलिए हो?"

"मैं एक बहुत बड़े क्रान्तिकारी के पीछे लगा हूँ नीलम!"

"क्रान्तिकारी!"

"हाँ!...." रसिक ने कहा—"उसके डर से ब्रिटिश सरकार भी थरथराती है, वह अंग्रेजों का सबसे बड़ा शत्रु है...."

"क्या वह यहाँ है!...." पूछा नीरा ने।

"हाँ! वह आजकल यहीं है। मैंने बाजी मार ली है। अब

वह क्रान्तिकारी किसी भी प्रकार नहीं बच सकता।"

"क्या तुमने उसे कैद कर लिया है?..."

"बड़ी भोली हो तुम नीलम!..." हँसकर कहा रसिकलाल ने—"भला वह शेर कभी गिरफ्त में आ सकता है?"

"तब क्या किया तुमने?...."

"तुम इन बातों में बड़ी दिलचस्पी दिखा रही हो नीलम!.... ठीक है, औरतों में उत्सुकता की मात्रा विशेष होती है, तभी तो तो वे तिल का ताड़ बना सकती हैं....सुनो, मैंने उसका पता लगा कर अपने दफ्तर में वायरलेस से खबर भेज दी है। कुछ ही घण्टों में सरकार के लड़ाकू वायुयान सैकड़ों की संख्या में यहाँ आ जायेंगे और गवर्नमेंट हाउस पर बम गिराकर उसे ध्वस्त कर देंगे...."

"फिर क्या होगा?...."

"फिर वह विद्रोही उसी ध्वंसावशेष में तड़प-तड़प कर अपनी जान दे देगा....और तब मेरी पदोन्नति भी हो जायगी।"

"........" सब सुन रही थी नीरा शान्तिपूर्वक। उसने अपनी मुखाकृति पर तनिक भी भय का भाव नहीं आने दिया था।

"उस विद्रोही का क्या नाम है मिस्टर रसिकलाल!"

"सुभाषचन्द बोस है उसका नाम!...." रसिक ने कहा—"वह भारत का शेर है। हम धोखे से उसकी जान ले सकते हैं मगर उसे कैद कर सकने की शक्ति ब्रिटिश सरकार में भी नहीं है...."

एकाएक नीरा उठ खड़ी हुई।

बोली—"मैं अभी आई ...मेज पर अपना पर्स भूल आई हूँ...."

"रहने दो, पर्स की क्या आवश्यकता है?...."

"नहीं!...." नीरा बोली—"उसमें मेरे बहुत से रुपये हैं। तुम यहीं बैठो। मैं एक मिनट में आई!"

"तुम मत जाओ....मैं बेयरा से कहकर मँगा लूँगा अभी!...."

"बेयरा उसे चुरा लेगा....मैं स्वयं जाकर लिए आती हूँ।"

नीरा जो कुछ पता लगाना चाहती थी, वह जान चुकी थी। अतः एक क्षण भी वहाँ रुकना नहीं चाहती थी।

इस समय उसका एक-एक मिनट बहुमूल्य था। उसी की सूचना पर नेताजी सुभाष का जीवन निर्भर था। रसिकलाल को नीरा की उतावली देखकर शंका हो चली थी। वह भी उठ खड़ा हुआ।

उसकी भंगिया देखकर नीरा डर गई। वह समझ गई कि रसिक के हृदय में सन्देह का बीज अंकुरित हो उठा है।

रसिकलाल ने नीरा का हाथ मजबूती के साथ पकड़ लिया, बोला—"तुम नहीं जा सकती नीलम! मुझे तुम पर सन्देह है।"

"सन्देह?....किस बात का सन्देह!...."

"यही कि तुम शत्रु की गुप्तचर हो..." रसिकलाल बोला।

"आप व्यर्थ शंका करते हैं....मुझे जाने दीजिए..."

"तुम क्यों जाना चाहती हो, यह मैं जानता हूँ....यह न समझना कि एक बोतल शराब पीकर मैं सब कुछ भूल गया हूँ...."

"मुझे जाने दीजिए....मेरा बहुत बड़ा नुकसान हो जायगा...." नीरा ने अपना हाथ छुड़ाने का यत्न करते हुए कहा।

"तुम नहीं जा सकती नीलम!...."गरजकर बोला रसिकलाल।

"मैं जाऊंगी...." झटक कर नीरा ने अपना हाथ छुड़ा लिया और दरवाजे की ओर बढ़ी।

"ठहरो नीलम!....ठहरो! नहीं तो गोली मार दूँगा...."

"........" पीछे घूमकर देखा नीरा ने। रसिकलाल रिवाल्वर ताने खड़ा था। उसकी उँगली घोड़े पर थी।

काँप उठी वह, उसने तुरन्त ही अपने को संयत कर लिया।

"अरे!...." आश्चर्य से नीरा बोली—"मेरा पर्स तो जेब में ही था, मैं व्यर्थ परेशान हुई और आपको क्रोध दिलायी...."

कहकर नीरा ने जेब में से एक मनीबेग निकाला। परन्तु वह मनीबेग न था—वह था पर्स की शकल का एक आटोमैटिक पिस्तौल। रसिकलाल अभी उसी तरह खड़ा था।

नीरा ने पर्स खोलने के बहाने से पिस्तौल का घोड़ा दबा दिया।

हलकी सी आवाज हुई और तनिक-सा धुआँ निकला, दूसरे ही क्षण रसिकलाल का आहत शरीर जमीन पर पड़ा तड़प रहा था।

नीरा लपक कर बाहर आई। दरवाजा बन्द कर दिया उसने।

बेयरा से बोली—"साहब अभी अन्दर सोये हैं। उन्हें दो घण्टे बाद जगा दिया जाय ताकि वे अपने घर जा सकें।"

"जो आज्ञा !...." बेयरा ने कहा।

और नीरा ने उसके हाथ पर कुछ डालर रख दिए।

इसके बाद भागी-भागी नीरा नेताजी के पास आई....

× × ×

"यह बात इतनी भयानक थी कि आपको सूचना देना आवश्यक था....इसीलिए अभी-अभी मैं भागी चली आ रही हूँ...."

नेताजी सुभाष अब तक चुपचाप गम्भीरतापूर्वक नीरा की बातें सुन रहे थे। बसन्तकुमार भी मौन खड़ा था।

जब नीरा ने अपना अन्तिम वाक्य समाप्त किया, नेताजी ने अपना सर ऊपर उठाया—"तुमने बहुत अच्छा किया नीरा, जो मुझे इस बात की सूचना दे दी....मगर अभी तक मेरा यहाँ का कार्य समाप्त नहीं हुआ, मैं यहाँ से कहीं जा भी नहीं सकता...."

"नहीं देवता !...." बसन्त बोला—"इस समय एक-एक क्षण आपके जीवन के लिए खतरनाक है। आपका यहाँ रुकना ठीक नही। आप तुरन्त कलाव के लिए प्रस्थान कर दें...."

"यह नहीं हो सकता बसन्त !..." नेताजी दृढ़ स्वर में बोले—"मैं अपनी मृत्यु के भय से अपने कार्य की हानि नहीं कर सकता। इस समय कर्तव्य का विशाल पथ मेरे सामने है।"

"आप अपने लिए नहीं तो कम से कम अभागे भारत के लिए अपने जीवन की रक्षा कीजिए नेताजी !...." नीरा बोली—"आज तड़पते हुए भारतीयों की स्वतन्त्रता आपके जीवन पर निर्भर है।"

नेताजी निरुत्तर हो गये। शीघ्र ही वायुयान प्रस्तुत हुआ और नेताजी रातों-रात कलाव आये। चार घण्टे बाद ही ब्रिटिश वायुयान शान राज्य के गवर्नमेंट हाउस पर गड़गड़ा उठे।

भयङ्कर गोलाबारी की गई। भवन विध्वंस हो गया। परन्तु

जिस विद्रोही को निष्प्राण करने के लिए यह सब हुआ, वह उस समय बसन्त और नीरा के साथ कलाब पहुँचकर भोजन करने में व्यस्त था।

• •

अब महायुद्ध की प्रगति अनोखा रङ्ग लाने लगी थी। थोड़ी-सी शक्ति एकत्रित करके क्षुद्र नदी की तरह उमड़ने वाले राष्ट्र बुरी तरह पराजित हो रहे थे। मित्र राष्ट्रों की विजय होती जा रही थी। उधर पश्चिम में महाबलशाली जर्मनी, रणभूमि में मुँह के बल आ गिरा था—और इधर पूर्व में जापानियों की बुरी अवस्था आ गई थी। वे सब जगह से खदेड़े जा रहे थे।

उस समय तो जापानी एकदम घबड़ा उठे, जब मार्च १९४५ में ब्रिटिश वायुयानों ने टोकियो पर लगातार ९ घण्टे तक बम-वर्षा की। यद्यपि 'आजाद हिन्द फौज' प्राणपण से, मित्र राष्ट्रों की सेना को बर्मा में आने से रोक रही थीं परन्तु जापानियों से तनिक भी सहायता न मिलने तथा पास में वायुयान, टैङ्क आदि आवश्यक सामान न रहने के कारण वे असमर्थ थे। मित्र सेनाएँ बराबर विजय पाती बर्मा की ओर बढ़ी आ रही थीं।

अपनी सेना की पराजय से नेताजी सुभाष अत्यन्त विक्षुब्ध थे।

उनका अधिकांश समय चिन्ता में ही व्यतीत होता था।

वे न तो ठीक से भोजन करते और न रात को सो सकते थे।

सेना के कितने ही उच्च अफसरों ने अपने नेताजी को, चिन्ताकुल अवस्था में, रात-रात भर कमरे में टहलते देखा था—और उनके लिए चिन्तित थे—परन्तु क्या कर सकते थे वे।

भरपूर प्रयत्न करने पर भी विजय उनसे दूर होती जा रही थी। सतत् चिन्तन तथा भोजन एवं निद्रा में व्यतिक्रम होने के कारण नेताजी का स्वास्थ्य गिरने लगा। उनके मुख पर असफलता द्वारा उत्पादित कालिमा की स्पष्ट आप दृष्टिगोचर होती थी।

परिस्थिति अत्यन्त जटिलता धारण किए बैठी थी।

अब तक आजाद हिन्द सरकार का सदर दफ्तर रंगून में ही था---परन्तु आने वाले संकट का ख्याल कर १६४५ में बैंकाक भेज दिया गया। सदर दफ्तर के बैंकाक चले जाने पर अफसरों ने नेताजी से भी वहाँ जाने का अनुरोध किया।

परन्तु नेताजी ने अस्वीकार करते हुए कहा --"मैं अपने वीर साथियों के साथ रणभूमि में रहना चाहता हूँ। मैं यह पसन्द नहीं करूँगा कि मेरी अनुपस्थिति से सहयोगी शिथिलता का अनुभव करें..."

"देवता!...." बसन्त कुमार ने कहा—"आप भारत की स्वतन्त्रता के नाम पर अपने जीवन को खतरे में न डालें। हम लोगों के लिए आपका जीवन अमूल्य है और उसी से हमें उत्साह प्राप्त होता है। आप हमें प्रोत्साहन देने के लिए अपने को सुरक्षित रखें।"

"तुम लोग हमारे जीवन के लिए अत्यन्त चिन्तित हो...." नेताजी ने कहा—'परन्तु मेरी दृष्टि में एक सिपाही के जीवन का ध्येय यही है कि वह रणभूमि में उत्सर्ग हो....और मैं भी अपने को एक सिपाही समझता हूँ। मेरे जीवन का उतना ही मूल्य है, जितना तुम्हारे अथवा आजादहिन्द फौज के किसी भी सैनिक के जीवन का...."

"आपके विचार यथार्थ हैं नेताजी!...." नीरा ने कहा— "आपके जीवन का मूल्य हमारे जीवन से अधिक भले ही न हो परन्तु आपकी दूरदर्शिता, अनुभव तथा मस्तिष्क अवश्य अमूल्य है और हमें आपकी इन वस्तुओं की महान आवश्यकता है.... इसके लिए आपको अपना जीवन सुरक्षित रखना पड़ेगा!...."

बहुत अनुनय विनय करने पर नेताजी बैङ्काक चले जाने को तैयार हुए। वे २४ अप्रैल १६४५ को बसन्तकुमार मल्लिक तथा नीरा मल्लिक के साथ रंगून से रवाना हुए।

विदा होते समय नेताजी के नेत्र अश्रुपूर्ण हो उठे। मुखाकृति वेदनाच्छन्न हो गई थी। अपने बहादुर सैनिकों को रणभूमि में

छोड़, स्वयं प्राण बचाकर भागते हुए उनके हृदय में व्यथा का सागर हल्लोलित हो रहा था। विदाई के लिए आये हुए अफसरों एवं सैनिकों के समक्ष नेताजी ने भरे हुए गले से कहा—

"आजाद हिन्द फौज के बहादुर सैनिकों एवं अफसरों !

मैं बहुत दुखित हृदय से तुम्हारा साथ छोड़ रहा हूँ। बर्मा छोड़ते हुए मेरा कलेजा टुकड़े-टुकड़े हुआ जा रहा है....यह बर्मा—जहाँ हमने अपनी आजादी के लिए कितनी लड़ाइयाँ लड़ी है, जहाँ की भूमि पर हमारे वीर सैनिकों ने खून की नदियाँ बहाई हैं, जहाँ के स्निग्ध वातावरण ने हमारे पौरुष में नवीन उत्साह भरा है। स्वाधीनता का जो युद्ध हम लड़ रहे हैं, उसमें इम्फल और बर्मा के मोरचे पर हमारी पराजय हुई है परन्तु इतने से ही हमें हतोत्साह न होना चाहिए। हमें अब भी विजय की आशा है। हम अब भी आजादी का स्वप्न देखा करते हैं।

अभी हमें इस प्रकार की कितनी और लड़ाइयाँ लड़नी पड़ेंगी और न जाने कितनी बार पराजित होना पड़ेगा—फिर भी हमारा साथ देने के लिए आशा हमारे साथ रहेगी। मैं जन्म से ही आशा-वादी हूँ। मुझे किसी भी दशा में अपनी पराजय स्वीकार नहीं है। अपनी पराजय को भी विजय के रूप में देखने का अभ्यासी हूँ।

अन्त में आप लोगों की वीरता के लिए कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। आपने इम्फल की घाटियों, आराकान के पहाड़ों तथा बर्मा के मैदानों में अपना जो शौर्य प्रदर्शित किया है, वह स्वातन्त्र्य संग्राम का एक अभूतपूर्व एवं अनुपम इतिहास होगा—"

नेताजी के बैङ्काक चले जाने पर मेजर जनरल लोकनाथन की अध्यक्षता में तीन हजार सैनिक बर्मा में रह गये। उन दिनों 'आजाद हिन्द फौज की दशा अत्यन्त चिन्ताजनक हो रही थी।

बहुत-सी टुकड़ियाँ जङ्गलों में लापता हो गई थीं। बहुत से वीर युद्धभूमि में वीरगति को प्राप्त हुए थे।

कैप्टन सहगल ने लगभग ५-६ सौ सैनिकों के साथ २८ अप्रैल १९४५ को ब्रिटिश सेना के हाथ आत्म-समर्पण कर दिया।

आत्मसमर्पण के अतिरिक्त उनके पास उपाय ही क्या था ?

३ मई १९४५ को रंगून पर ब्रिटिश सरकार का अधिकार हो गया। 'आजाद हिन्द फौज' के सभी सैनिक बन्दी बना लिए लिये। उनमें कितने बड़े-बड़े अफसर भी थे।

'आजाज हिन्द बैंक्क का कार्य पूर्ववत चालू था।

रंगून के रक्षक तथा चौदहवीं इण्डियन इन्फैक्ट्री के कमाण्डर ब्रिगेडियर लाडेर ने बैंक्क पर अपना अधिकार करना ठीक नहीं समझा, क्योंकि बैंक्क का क्षेत्र तो सामाजिक सेवा है।

परन्तु १९ मई को ब्रिगेडियर लाडेर का अंग्रेजी खून पुनः उबल पड़ा। वह बैंक्क पर टूट पड़ा। ३५ लाख रुपया उस समय बैंक्क में था—सब लाडेर ने जब्त कर लिया। उन्हीं दिनों शाहनवाज भी सितापिनजिक्स नामक स्थान पर गिरफ्तार हुए और तेगू जेल भेज दिये गये। इस प्रकार युद्ध की प्रगति मित्र-राष्ट्रों के अनुकूल चलती रही और विजय सदा उनका साथ देती रही।

अनेक प्रकार के कष्ट उठाने पर भी 'आजाद हिन्द फौज' के वीर सैनिकों को केवल पराजय ही हाथ लगी। जापानी भी एकदम घबड़ा उठे थे और लगातार पीछे भाग रहे थे।

उन दिनों अमेरिकन वैज्ञानिकों ने परमाणु बम जैसे भयानक संहारक का आविष्कार किया।

५ अगस्त १९४५ को पहला परमाणु बम (Atomic Bomb) अमेरिकन विमान द्वारा हिरोशिमा पर गिराया गया।

जापानियों में हाहाकार मच गया। इस नये प्रलयकारी बम का संहार देखकर समग्र संसार भयभीत हो उठा।

८ अगस्त को दूसरा परमाणु बम नागासाकी नामक स्थान पर गिराया गया, जिससे जापान के दाँत खट्टे हो गये।

जापानियों ने समझ लिया कि अब युद्ध जारी रखने से सिवा जन-संहार के और कुछ न होगा।

९ अगस्त सन् १९४५ के दिन, संसार के कोने-कोने में जापान के आत्मसमर्पण का समाचार प्रसारित हो उठा।

जापान सरकार के इस आकस्मिक आत्मसमर्पण से मित्रराष्ट्रों की प्रसन्नता का पारावार न रहा परन्तु अपनी जान पर मर मिटने वाले कितने ही जापानी अफसर एवं सैनिकों ने अपनी इस पराजय से विक्षुब्ध होकर हाराकीरी (आत्म-हत्या) कर ली।

जापान के आत्मसमर्पण से सुभाष बाबू की चिन्ता और बढ़ी।

वे उस समय सिंगापुर में थे। उन्हें अब तक उस समाचार पर विश्वास नहीं हो रहा था। क्योंकि उन्हें यह आशा न थी कि जापान इतनी जल्दी घुटने टेक देगा। परन्तु अन्त में उन्हें उक्त समाचार पर विश्वास करना ही पड़ा।

उस समय उनकी स्थिति अत्यन्त चिन्ताजनक हो रही थी। वे अपने कमरे में व्याकुलतापूर्ण भंगिमा धारण किए हुए इधर से उधर टहल रहे थे। कभी-कभी रुककर आवेशपूर्ण ढंग से मेज पर अपना हाथ पटक देते थे—"जापान ने आत्मसमर्पण कर दिया।" उत्तेजित स्वर में बोले नेताजी—"कायर कहीं का।"

"नेताजी!" बसन्त बोला—"अब आपके लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि अपना कार्यक्रम तुरन्त निर्धारित कर लें—क्योंकि जापान की पराजय के बाद, सरकार की सारी शक्ति आपको बन्दी बनाने के लिए कटिबद्ध है....इस समय एक-एक चरण आपके जीवन के लिए भयङ्कर प्रमाणित हो सकता है...."

"सरकार के कितने ही बमबर्षक वायुयान तथा जासूस आपके प्राणों के भूखे होकर इधर आ रहे होंगे देवता!...." नीरा ने कहा—"आप शीघ्र ही निर्णय कर लें।"

"निर्णय कर लिया है...." टहलते-टहलते रुक गये नेताजी और गम्भीर स्वर में बोले—"हमें इसी समय बैङ्काक जाना होगा।"

"मगर..." बसन्त कुछ कह न सका।

"बैङ्काक जाना खतरे से खाली नहीं है देवता!" नीरा बोली।

"चाहे जो हो...." नेताजी दृढ़ स्वर में बोले—"हमारा वहाँ जाना अत्यन्त आवश्यक है। वहाँ हमारा सदर दफ्तर है। मैं अपने

प्राणों की रक्षा करके अपने सहयोगियों को अंधेरे में नहीं छोड़ सकता।"

"आप उनके लिए एक आज्ञा पत्र दे जायँ नेताजी" बसन्त ने कहा—"मैं वहाँ जाकर वह आज्ञापत्र उन्हें दे दूँगा। आप इस समय कहीं दूर चले जायँ; बहुत दूर, जहाँ कुछ दिनों तक शांति के साथ रहकर आप पुनः हमारे लिए स्वातन्त्र्य प्राप्ति का प्रयत्न करें।"

"तुम ठीक कहते हो बसन्त!" नेताजी सुभाष उस विकट परिस्थिति में भी धीरे से मुस्करा उठे—"परन्तु तुम यह नहीं सोचते कि मेरे एकाएक भाग जाने से मेरे सैनिक क्या सोचेंगे?"

"......." चुप रहे बसन्त और नीरा।

"क्या वे यह नहीं सोचेंगे कि उनका नेता कायर है और उसने उन्हें मौत के मुंह में छोड़कर अपनी जान बचाई है। नहीं-नहीं मैं अपने प्राणों के मोह से अपने पद का अपमान नहीं कर सकता...." नेताजी बोले—"तुरन्त वायुयान प्रस्तुत करो और नीरा देवी! तुम भी हमारे साथ चलोगी...."

उसी दिन नेताजी, नीरा और बसन्त के साथ बैङ्काक आये। वहाँ पर "आजाद हिन्द सेना" के अफसरों की एक सभा हुई, जिसमें अत्मसमर्पण पर विचार हुआ।

अधिकांश अफसर आत्म समर्पण करने के विपक्ष में थे। उनका कहना था कि आत्मसमर्पण जापान ने किया है, हमने नहीं। हम शरीर में अन्तिम साँस रहने तक युद्ध जारी रखेंगे।

परन्तु नेताजी ने उन्हें समझाया, कहा—"वीरों आज परिस्थिति ऐसी आ गयी है कि हमें आत्मसमर्पण की आज्ञा देनी पड़ रही है। यदि हमने युद्ध करते-करते अपने को कष्ट कर डाला तो आजादी पाने की हमारी लालसा का यहीं अन्त हो जायगा.... हम जीवित रहे तो पुनः अपने को शक्तिशाली बनाकर शत्रु से मोर्चा ले सकेंगे....मेरा अनुरोध है कि प्रतिकूल समय का ध्यान कर आप अपनी पराजय स्वीकार करें और आत्म समर्पण कर दें। याद रखिये! यह बाह्य पराजय है—आपका वीर अन्तःकरण

कभी पराजित नहीं हो सकता और आप पुनः संगठित होकर शत्रु से संघर्ष कर सकेंगे। हमारी जवान धमनियों का खून एक बार फिर पृथ्वी पर लाल होकर तैरेगा और हम अपने खून से ही आजादी की कीमत चुकायेंगे।

हमारे शहीदों के खून से—उनकी बहादुरी और मर्दानगी से ही हिन्दुस्तान आजाद होगा। वीरों! एक दिन वह भी आयेगा जब अपने ऊपर जुल्म और सितम ढाने वाले इन सुफेद शैशानों से हम खून का बदला खून से लेंगे।"

सारी जनता ने चिन्तित हृदय से अपने नेताजी की वह वक्तृता सुनी और मस्तक झुका लिया। उन्हें अपने नेताजी की आज्ञा बाध्य होकर स्वीकार करनी पड़ रही थी।

नेताजी ने पुनः कहा—"बहादुरों! तुमने अनेक दुखों का सामना करते हुए हमारा जो साथ दिया, उसके लिए मैं अत्यन्त कृतज्ञ हूँ। तुम्हारी इस वीरता की दाद सारा हिन्दुस्तान देगा। सरकार बहुत खुश है क्योंकि उसने जर्मनों को पराजित किया, जापान को पराजित किया और हिन्दुस्तान की आजादी के लिए लड़नेवाले वीरों को पराजित किया। उसे अपनी इस विजय पर गर्व है।

परन्तु क्या यह उसकी वास्तविक विजय है?....नहीं!

वह हमें पराजित कर सकती है? हमारे शरीरों को बन्दी बना सकती है....परन्तु हमारी आत्मायें हमेशा विद्रोह करती रहेंगी। हमारा अन्तस्थल सदैव पुकारता रहेगा—अंग्रेजों का नाश हो.... अंग्रेजों! भारत छोड़ दो—तुम्हें यह जानकर और भी दुःख होगा कि मैं, जिसे तुम लोगों ने अपने नेता का पवित्र पद प्रदान किया था, तुम्हें छोड़ किसी अज्ञात स्थान को जा रहा हूँ।

तुम मुझे कायर न समझना। मेरी तपस्या पर अविश्वास मत करना....मेरे जाने का रहस्य केवल यही है कि अपने शरीर को प्राणों की भूखी सरकार के हाथ नहीं सौंपना चाहता, इसलिए कि दुनियाँ के किसी कोने में छिपकर पुनः विद्रोहाग्नि की सृष्टि

करूं। मुझे यह दृढ़ बिश्वास है कि इस बार यह विद्रोहाग्नि, अंग्रेजों के सफेद चमड़े को जलाकर राख कर देगी और तब हमारी आजादी हमसे ज्यादा दूर नहीं रह जायगी— तुम लोग प्रसन्नता-पूर्वक मुझे विदा दो यह मेरी प्रार्थना है। ईश्वर ने चाहा तो मैं जल्द तुम लोगों से मिलूंगा।

मेरा अन्तिम आदेश यही है कि अपने हृदय में आजादी की आग हमेशा दहकाये रखना और मार्ग में आये दुःखों को देखकर मायूस न होना। बस, विदा! जयहिन्द!"

नेताजी चुप हो गये तो सारे सैनिक चिल्ला उठे—

"नेताजी सुभाष, जिन्दाबाद! मादरे हिन्द, जिन्दाबाद!...."

सभा समाप्त होते ही नेताजी अपने कमरे में आये।

उस समय सन्ध्या हो चुकी थी। कमरे में आते ही वे आराम कुर्सी पर बैठे और चिन्ता में निमग्न हो गये। इस समय वे अपना भविष्य निर्धारित कर रहे थे। कहाँ जायँ .. क्या करें?

नेताजी सुभाष यह अच्छी तरह जानते थे कि यदि सरकार उन्हें जीवित पकड़ सकी तो तुरन्त ही तोप के आगे करके उनकी जीवनलीला समाप्त कर देगी और भारतवासी उनकी मृत्यु के विषय में जान भी न सकेंगे। वे नहीं चाहते थे कि अपनी जान को सरकार के हाथ सौंपकर मौत का तमाशा देखें। वे यह नहीं चाहते थे कि उनके मृत शरीर पर ब्रिटिश सरकार के कुत्तों को भौंकने का मौका मिले। वे ऐसा नहीं चाहते थे कि स्वतन्त्रता प्राप्ति का स्वप्न अधूरा छोड़कर अपना जीवन समाप्त कर दें।

वे चाहते थे एक अद्भुत रीति से गुप्त हो जाना। चाहते थे कि सरकार को उनका पता भी न मिले और वे दुनिया के किसी कोने में छिपकर आजादी पाने का पुनः स्वप्न देखें।

वे चाहते थे कि अज्ञातवास कर पुनः क्रांति का सृजन और अपने गुलाम देशवासियों के लिए स्वतन्त्रता का आह्वान करे।

परन्तु यह कैसे सम्भव था! इस समय जापान के आत्मसमर्पण कर देने से परिस्थिति अत्यन्त भयङ्कर हो उठी थी?

सरकारी दस्ते चारों ओर नेताजी को जीवित अथवा मृत पकड़ने के लिए प्रयत्नशील थे, वे सब ताक लगाये घूम रहे थे।

यदि उन्हें मालूम हो जाय कि नेताजी इस समय कहाँ हैं तो वे उन्हें पाने के लिए जमीन-आसमान एक कर दें!

नेताजी जानते थे कि कुछ ही घण्टों में सरकारी दस्ते अवश्य उस स्थान को घेर लेंगे और तब उनका पलायन करना सर्वथा असम्भव हो जायगा। अतः उन्हें शीघ्र ही कोई निर्णय करना था।

परन्तु उनका मस्तिष्क चिन्ताओं के भार से इतना दब गया था कि वे कुछ सोच ही नहीं पा रहे थे।

● ●

बहुत देर तक सोचते रहे सुभाष।

अन्त में उन्होंने टोकियो जाकर जापान के सम्राट हिरोहितो से भेंट करने ता निश्चय किया। ऐसा करना सुविधाजनक एवं खतरे से खाली नहीं था फिर भी कुछ ऐसी बातें थीं जिनका निराकरण केवल जापान सम्राट ही कर सकते थे।

नेताजी ने एक लम्बी साँस खींची और धीरे से ताली बजाई।

उस समय-द्वार पर नीरा राइफल किए पहरा दे रही थी। ताली की आवाज सुनकर वह भीतर आई।

"क्या आज्ञा है?...." उसने पूछा।

"देखो, कर्नल हवीबुर्रहमान को यहाँ आने का सन्देश दो, अभी, इसी समय!...." नेताजी ने कहा!

तेजी के साथ नीरा कमरे से बाहर चली गई।

दो मिनट बाद ही कर्नल हबीबुर्रहमान ने वहाँ प्रवेश किया।

"देखो, कर्नल!...." नेताली बोले—"इस समय मेरे लिए जापान सम्राट से मिलना आवश्यक हो गया है!...."

"कारण?..."

"कुछ ऐसी बातें हैं, जिनके विषय में उनसे स्पष्टीकरण चाहता हूँ और उन बातों पर ही मेरा भविष्य निर्भर है।"

"मेरे लिए क्या हुक्म है ?...." कर्नल ने पूछा।

"मैं इसी समय टोकियो प्रस्थान करूंगा...." नेताजी बोले—"और तुम भी मेरे साथ रहोगे...."

"जो आज्ञा ?...." कर्नल ने इतना ही कहा था कि बसन्त घबराया हुआ कमरे में घुस आया।

बोला—"गजब होना चाहता है देवता !.... आप शीघ्र ही यहाँ से भागने का प्रबन्ध कीजिए...."

"क्या बात है बसन्त !...." संयत स्वर में पूछा नेताजी ने। विपत्ति में भी वे घबराना नहीं जानते थे।

"थोड़ी ही देर में सैकड़ों सरकारी वायुयान यहाँ पहुँच रहे हैं और इस स्थान को गोलाबारी करके ध्वस्त कर देंगे...." बसन्त ने कहा—"शायद उन्हें आपके यहाँ होने का पता लग गया है...."

"यह कोई असम्भव बात नहीं है बसन्त !..."

"और पैदल दस्ते भी जल्द यहाँ आकर इस स्थान को चारों ओर से घेर लेंगे...." बसन्त बोला, उसका मुख नेताजी की चिन्ता से पीला पड़ गया था।

"तुम बहुत घबरा गये हो मित्र !...." हँसकर बोले नेताजी।

"आप हँस रहे हैं देवता !....परन्तु यह हँसने का समय नहीं है...." बसन्त बोला—"आप अभी यहाँ से हवाई अड्डे की ओर निकल चलिए। मैंने आपके जाने का पूरा प्रबन्ध कर रखा है। यहाँ से हवाई अड्डे तक जाने के लिए तीन घोड़े मौजूद हैं देवता !"

"ठीक है...तुमने बहुत अच्छा किया, जो समय पर मुझे खबर कर दी....तुम और नीरा भी जल्द तैयार हो जाओ...."

दौड़ता हुआ बसन्त बाहर चला गया।

जब नेताजी, कर्नल हबीबुर्रहमान के साथ बाहर आये तो दूर से आते हुए कितने ही वायुयानों की गड़गड़ाहट उन्हें सुनाई दी।

बाहर बसन्त तथा नीरा तीन घोड़ों के साथ खड़े थे, नेताजी की प्रतीक्षा में। अर्धरात्रि हो चुकी थी—

एक घोड़े पर नेताजी, दूसरे पर कर्नल तथा तीसरे पर बसन्त और नीरा चढ़कर हवाई अड्डे की ओर तेजी से रवाना हुए। हवाई जहाजों की गड़गड़ाहट नजदीक सुनाई पड़ने लगी थी। यह आवश्यक था कि उन हवाई जहाजों के पहुँचने के पहले ही नेताजी हवाई अड्डे पर पहुँच जायँ और किसी हवाई जहाज पर चढ़कर निकल भागें।

उबड़-खाबड़ रास्ता तय करते हुए तीनों घोड़े सरपट दौड़े जा रहे थे, जैसे आने वाली विपत्ति का उन्हें भी ज्ञान हो गया हो।

हवाई अड्डा आ गया। सब घोड़ों पर से उतर पड़े। एक द्रुतगामी हवाई जहाज पर दौड़कर नेताजी बैठ गये-चालक के स्थान पर। कर्नल हबीबुर्रहमान भी जा चढ़े। परन्तु जब नीरा और बसन्त चढ़ने लगे तो नेताजी ने उन्हें रोक दिया।

"मित्र!" भर्राई हुई आवाज में बोले वे—"तुम लोग हमारे साथ नहीं जा सकोगे। हम कभी तुम्हें भूल नहीं सकेंगे। हो सका तो फिर मिलेंगे, विदा!"

कुछ बोल न सके नीरा और बसन्त। दोनों के नेत्रों में आँसू भर आये, अपने देवता से बिछुड़ने का ध्यान कर।

नेताजी सुभाष ने मशीन स्टार्ट कर दी।

"जय हिन्द मित्रों!...." नेताजी ने कहा।

"जय हिन्द...." रो पड़े वे दोनों।

उसी क्षण भारत के उस महान नेता को लिए वह हवाई जहाज आकाश में उड़ गया।

वह भयानक विद्रोही इस बार भी सरकार के हाथ से निकल भागा। हवाई जहाज उड़ा जा रहा था, तेजी के साथ।

नेताजी और कर्नल दोनों चुप थे।

"नेताजी!...." धीरे से बोला कर्नल।

"क्या है कर्नल?...."

"मेरे विचार से आपका टोकियो जाना भी खतरनाक होगा।"

"तुम्हारी इस धारणा का कारण?...." पूछा नेताजी ने।

"अब हमारा विश्वास जापान पर से जाता रहा...." कर्नल ने कहा—"हो सकता है जापान आपको बन्दी बनाकर ब्रिटेन के हाथों सौंप दे, इस प्रकार ब्रिटेन की मैत्री पाने का प्रयत्न करे...."

सोच में पड़ गये नेताजी ! कर्नल की बातें युक्तिसंगत थीं।

"क्या सोच रहे हैं आप नेताजी !...." पूछा कर्नल ने।

"यही कि तुम्हारी बातों में पर्याप्त तर्क है...." नेताजी बोले—"मुझे भी कुछ ऐसा ही विश्वास हो चला है...."

"तो फिर जान-बूझकर अपने को विपत्ति में डालना कहाँ तक उचित है नेताजी !" कर्नल ने कहा।

"मैं तुम्हारी बातों पर विचार कर रहा हूँ...." कहकर नेताजी चुप हो रहे।

पुनः निस्तब्धता छा गई। घन्टों तक दोनों चुप रहे।

"हैं ! यह क्या ?" चौंककर कहा कर्नल ने।

"क्या है कर्नल ?...." पूछा नेताजी ने।

"क्या आप पीछे आते हुए किसी वायुयान की घर्राहट नहीं सुन रहे हैं नेताजी !...." कर्नल ने कहा।

नेताजी ने सुना। अवश्य ही कोई वायुयान उनके वायुयान का पीछा कर रहा था....मगर वह बहुत पीछे था तथा उसकी आवाज केवल अभ्यस्त कान ही सुन सकते थे।

"वायुयान ही तो है....जरा तुम दूरबीन से देखो तो...."

कर्नल ने दूरबीन निकाली। वह ऐसी दूरबीन थी, जो घने अंधेरे में भी दूर की चीजें देख सकती थी।

कर्नल दूरबीन आँखों से लगाकर देर तक देखता रहा।

"क्या है कर्नल !...." पूछा नेताजी ने।

"शत्रु का वायुयान है नेताजी !...." कर्नल ने कहा—"हमारा पीछा कर रहा है....लाइट बुझा रखी है उसने, जिससे उसके शत्रु होने में कोई सन्देह नहीं...."

"ठीक है...." गम्भीर हो उठा था नेताजी का मुखमंडल—

"हम सफलतापूर्वक भाग नहीं सके। शत्रु हमारा सुराग पा ही गया।

"हमें सन्देह है नेताजी...." कर्नल ने कहा—"इस वायुयान ने बेतार द्वारा अपने साथियों को खबर दे दी हो। ऐसी दशा में हम अधिक दूर तक नहीं जा सकेंगे और निरापद भी नहीं रह सकेंगे।"

"तम दूरबीन आँख पर रखो ! मैं स्पीड तेज करता हूँ..."

और छोटा सा वायुयान आँधी की तरह आगे की ओर दौड़ा।

"मुझे अपनी फिक्र नहीं केवल आपकी चिन्ता है नेताजी !...."

"घबराओ नहीं, मेरे पास रिवाल्वर है, जो समय पर मेरी खोपडी चूर कर देगा और शत्रु मेरा मृत शरीर ही पा सकेंगे..."

"परन्तु हमें तो अपने नेताजी को जीवित रखना है...." कर्नल दूरबीन आँखों पर लगाये बोला—"खैर कोई बात नहीं.... वह वायुयान पीछे छूटता जा रहा है... हमारी स्पीड बहुत तेज है... परन्तु उसने भी अपनी स्पीड बढ़ा दी.... और अब...."

"क्या है कर्नल ?...."

"वह भी बहुत द्रुतगामी वायुयाय प्रतीत होता है नेताजी ! मेरी आँखे धोखा नहीं देतीं तो उस पर एयरगन्स भी लगे है...."

"हूँ..." विपत्ति में भी नेताजी स्थिर थे—"कर्नल !"

"आज्ञा नेताजी !...."

"मैं वायुयान को गोता खिलाता हूँ....तुम सावधान रहना...." नेताजी ने कहा—'मैं उसे धोखा देना चाहता हूँ....'

कोई पुरजा दबा दिया उन्होंने और वायुयान कलाबाजियाँ खाता नीचे गिरने लगा। देखनेवाला यह विश्वास नहीं कर सकता था कि गिरते हुए विमान के कल-पुरजे ठीक हैं और यह उसके चालक का कौशल है ! विमान भूमि से २५ फुट ऊपर रह गया तो एक झटके के साथ उसका गिरना और कलाबाजियाँ खाता रुका और वह सीधा चलने लगा। लगभग १५ मिनट तक वह

इसी प्रकार रहा। इसके बाद एकाएक ऊपर उठने लगा और पुनः अपनी ऊँचाई पर आकर उड़ने लगा।

कर्नल ने देखा—अब भी पीछा करने वाला विमान पूर्ववत पीछा कर रहा था। अब तो वह और नजदीक आ गया था।

"उसने हमारा पीछा नहीं छोड़ा नेताजी!" कर्नल बोला।

"हूँ!...." नेताजी ने कहा फिर चुप हो रहे।

एकाएक नेताजी के विमान की एक मशीन बन्द होती जान पड़ी। वे चौंक पड़े—"कर्नल!"

"जी..."

"हमारे विमान की एक मशीन खराब हो गई....मुझे ऐसा लगता है कि अब हम भाग नहीं सकेंगे...."

उसी समय उनके विमान की गति धीमी होती जान पड़ी।

"मुझे केवल आपकी चिन्ता है नेताजी!...." कर्नल ने कहा।

"देखो?...." नेताजी ने आज्ञा भरे स्वर में बोले—"तुम रिवाल्वर हाथ में ले लो, मौका आते ही मुझे सुट कर देना...."

कर्नल का हृदय हाहाकार कर उठा—"यह मुझसे नहीं होगा नेताजी!..." कहा उसने।

"कर्नल!...." कठोर स्वर में बोले नेताजी—"समय कम है ....शत्रु सिर पर है....जल्दी करो....रिवाल्वर हाथ में ले लो...."

बिवश होकर कर्नल ने अपना रिवाल्बर निकाला।

उसी समय वायरलेस की घण्टी बज उठी।

"कोई कुछ कहना चाहता है कर्नल!...." नेताजी ने कहा और वायरलेस का चोंगा उठाकर कान से लगा लिया।

सुनाई पड़ा—"बी एन० ३२४...."

नेताजी चौंक पड़े, बोले—"यस!....नं० वन, हाई कमांड!"

"मैं आपके विमान से ठीक ऊपर उड़ते हुए एक दूसरे विमान से बोल रहा हूँ देवता!.. हमारे विमान में साईलेन्सर लगा है और यह बहुत ऊपर तक उड़ सकता है...."

"शत्रु का एक वायुयान हमारा पीछा कर रहा है....क्या तुमने उसको देखा है ?...." नेताजी ने पूछा ।

"देखा है....हमारा वायुयान, उस वायुयान के ऊपर से ही आया है परन्तु साइलेन्सर के कारण वे हमें देख न सके...."

"तुम्हारे आने का कारण ?...."

"जब आप विमान पर उड़े, उसी समय शत्रु के इस विमान को हमने आपका पीछा करते देखा....आशंका हुई कि कहीं आप असावधान न हों....और भी एक कारण था...."

"क्या ?...." सुभाष ने पूछा ।

"हमें पता लगा है कि जापान सरकार आपको ब्रिटिश-अधिकारियों के हाथ सौंप देना चाहती है...."

"तुम्हारी इस धारणा का कारण ?...."

"केवल कुछ अफवाहों के बल पर ऐसा कह रहा हूँ, जिन्हें मैंने हवाई अड्डे पर सुनी थी....इस बात की खबर देनी अत्यन्त आवश्यक थी, अतः मैंने दूसरा वायुयान लेकर आना ही उचित समझा....मैं आपका पीछा किए जाते हुए भी देख चुका था।"

"नीरा को वहीं छोड़ आये...." नेताजी ने पूछा ।

"नहीं देवता !....वह भी मेरे साथ इसी विमान पर है....आपका पीछा करने वाले विमान ने वायरलेस से अपने साथियों को खबर दे दी है और जहाँ तक मेरा अनुमान है, ताइहोकू पर ब्रिटिश दस्ते तथा विमान आपकी प्रतीक्षा करते रहेंगे...."

सुनकर चौंक पड़े नेताजी । चोंगे से मुँह हटाकर कर्नल से बोले—"कर्नल ! ताइहोकू कितनी दूर होगा ?..."

"पचास मील और नेताजी !...." कर्नल ने कहा ।

"ओह ! .." नेताजी के मस्तक पर पसीने की बूँदें उभर आईं । मौत उनके चारों ओर मुँह बाये खड़ी थी ।

उन्होंने चोंगा पुनः कान से लगा लिया ।

आवाज आई—"देवता !...."

"ओह ! नीरा तुम....तुम भी हो बसन्त के साथ ?"

"हाँ !....अपने देवता के ऊपर आने वाली विपत्ति की सम्भावना देखकर मैं कैसे पीछे रह सकती थी ?...."

"अब तो कोई उपाय नहीं नीरा !...." नेताजी हताश स्वर में बोले—"शत्रु का वायुयान नजदीक है....हमारी एक मशीन खराब हो चुकी है...ताइहोकू पर सरकारी विमान एवं दस्ते मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं। जापान मुझे बन्दी बनाकर शत्रु को सौंप देना चाहता है। अब तो कोई मार्ग नहीं रहा....सिवा इसके कि कर्नल मेरे साथ हैं और उनके रिवाल्वर की नली मेरे मस्तक की ओर है, जो विपत्ति की सूचना पाते ही मुझे दुनिया से उठा देगी...."

"नहीं देवता ! अभी उपाय है...." नीरा बोली।

"क्या उपाय है...." नेताजी ने पूछा।

"हमारे विमान में एयरगन्स फिट है....हम उनसे आपका पीछा करने वाले इस विमान को धराशायी कर देंगे...."

"उसके बाद ?...." नेताजी ने कहा।

उसी समय आकाश में जोरों की एक चमक और धड़ाका हुआ। नेताजी के विमान के पास ही से एक गोला सर्राता हुआ आगे चला गया....शत्रु की एयरगन ने गोले उगलना आरम्भ कर दिया था। खैर हुई कि वह गोला नेताजी के विमान से न लगा।

"आप अपने विमान को तेजी के साथ गोता देकर नीचे ले जाइये, हम देख लेंगे इसका...." आवाज आई वायरलेस से।

नेताजी ने वैसा ही किया। पुनः गड़गड़ाहट हुई। नेताजी के ऊपर उड़ने वाले वसन्त के विमान से गोला छूटा और शत्रु के विमान के पास से निकल गया। दोनों ओर से गोलाबारी प्रारम्भ हो गई।

वसन्त का विमान बहुत ऊपर था, अतः उसने शत्रु पर विजय पाई। शत्रु का विमान धू-धू कर जलता हुआ सौ फीट नीचे जमीन पर गिरा। नेताजी ने अपना विमान पुनः ठीक किया।

"देवता !....' वायरलेस से नीरा की आवाज आई।

"कहो नीरा !...." नेताजी ने कहा।

"हमारा कहना मानें तो एक प्रार्थना ..."

"कहो !...."

"समग्र देश के लिए आपका जीवन बहुमूल्य है देवता !.... उसकी रक्षा करना हमारा परम कर्तव्य है....इस समय शत्रु आपके चारों ओर उपस्थित हैं....अब केवल एक ही उपाय है... सरकार तथा अन्य लोगों को किसी प्रकार यह विश्वास हो जाय कि आप मर चुके तो आपका पीछा करना छोड़ देंगे ...."

"यह किस प्रकार हो सकता है ? ..." नेताजी ने पूछा ।

"हम आपके सेवक हैं....आपने उस समय हमारे भैया की जान बचाई थी, जिस समय स्वयं आपके लिए मृत्यु की आशंका थी । हमारे ये प्राण आपके हैं.... आप कृपा करके हमारे वायुयान पर चले आइये... और हम दोनों आपके विमान पर आ जायेंगे....आप अपनी कुल पोशाक बसन्त भैया को पहना देंगे और स्वयं वसन्त भैया की पोशाक पहन कर भाग जायेंगे...ताइहोकू के पास पहुँच कर हम अपने विमान में आग लगा लेंगे और भैया का शरीर इतना जल जायगा कि कोई पहचान भी न सकेगा कि वह व्यक्ति आप नहीं हैं...."

"ओह !...." कहकर नेताजी चुप हो रहे ।

"बोलिए नेताजी ! जल्दी बोलिये...." नीरा की आवाज थी ।

"यह नहीं हो सकता नीरा !... " नेताजी ने कहा—"मैं यह नहीं चाहता कि जिस बसन्त के प्राणों की रक्षा एक दिन मैंने की थी, उसे ही पुनः मौत के मुख में डालूँ....नहीं, यह नहीं होगा मुझसे...."

"देवता !....आपको अपने देश की शपथ अपनी पवित्र मातृभूमि की शपथ....अपने ध्येय की शपथ....हमें निराश न करें हमारी अवहेलना न करें देवता !... हम अपने विमान को और नीचे उतार कर आपके सीध में आते हैं...."

वसन्त का वायुयान, नेताजी के विमान के बगल में आ गया । दोनों विमान समानान्तर उड़ने लगे । दोनों के पख आपस में सटे-

से थे। उस विमान पर से, खिड़की की राह कूदकर नीरा पङ्ख पर आई और वहाँ से नेताजी वाले बिमान के पंख पर कूद पड़ी।

दूसरे ही क्षण वह विमान के अन्दर थी।

"उठिये नेताजी ! और उस विमान पर जाइये...." नीरा ने कहा।

"देवी नीरा...." नेताजी कम्पित स्वर में बोले—"तुम नारी रत्न हो....माता हो भारत माता हो...."

कर्नल चालक के स्थान पर आ रहे। नेताजी पङ्खों पर होकर दूसरे दिमान पर सकुशल पहुँच गये। नेताजी ने अपने कपड़े, घड़ी चश्मा आदि उतार दिए और मामूली वस्त्र पहनकर चालक के स्थान पर जा बैठे। बसन्त ने नेताजी की सब वस्तुएँ मस्तक से लगाकर धारण कर ली। उस समय नेताजी भी देखकर आश्चर्यं-चकित हो उठे। वह पूर्णरूपेण उनका प्रतिरूप हो रहा था।

बसन्त ने नेताजी के चरण छुये। नेताजी की आंखें बरस पड़ीं।

"जाओ वीर !...." बोले वे—'तुमने जो त्याग किया उसका बदला मैं क्या सैकड़ों सुभाष नहीं दे सकते...."

बसन्त उल्लसित हृदय लिए हुए उस विमान पर से दूसरे विमान पर आया। नीरा और कर्नल उसे देखकर चकित हो उठे।

वायरलेस से नेताजी का स्वर आया—'बन्धुओं ! अन्तिम विदा !...जयहिन्द !...."

नीरा, बसन्त, कर्नल—तीनों रो पड़े।

भरे हुए गले से उन्होंने कहा—"जयहिन्द !"

इसके बाद नेताजी का विमान अज्ञात दिशा की ओर उड़ चला। बसन्त का विमान चलता रहा। नीरा चुपचाप बैठी रही, कर्नल वायुयान चलाता रहा।

"ताइहोकू कितनी दूर होगा कर्नल। ..." बसन्त ने पूछा।

"पाँच मील और नेताजी !...." कर्नल ने कहा।

नेताजी की पोषाक पहने रहने के काण कर्नल ने बसन्त को भी नेताजी ही कहा, नहीं तो नेताजी की वर्दी का अपमान होता।

"नीरा!...."

"........"

"नीरा बहन !...." बसन्त ने जोर से पुकारा। नीरा के नेत्रों में आँसू छलछला आये थे।

"रोती है...." बसन्त ने कहा—"पगली कहीं की, देश के लिए मरते हुए अपने तुच्छ भैया के लिऐ रोती है तू...."

"भैया!"

"नीरा!" बसन्त दृढ़ स्वर में बोला—"अब समय नहीं है, दियासलाई निकालकर मेरे कपड़ों में आग लगा दे ताकि ताइहोकू पहुँचते-पहुँचते इतना जल जाऊँ कि कोई पहचान न सके...."

"भैया !...." रो पड़ी जोरों से नीरा। इस समय उसका सोया महत्व जाग उठा था।

"जल्दी कर नीरा।"

एकाएक नीरा ने अपने नेत्र पोंछ लिए। दोनों भाई-बहन अंतिम बार एक-दूसरे के गले मिले। फिर नीरा ने काँपते हाथों दियासलाई निकाली। बसन्त ने थोड़ा-सा कागज फाड़कर अपने पैरों के पास रख लिया और नीरा ने उस कागज में आग लगा दी।

जिस वीर रमणी ने एक दिन अपने सिन्दूर में आग लगाई, वही आज अपने भाई के शरीर में आग की लपटें लपेटी।

कागज जल उठा। बसन्त के कपड़ों में आग लग गयी परन्तु वह वीर निश्चल बैठा रहा। कर्नल गर्व के साथ उस शहीद का जलना देख रहा था।

बसन्त के सारे बदन से लपटें निकलने लगीं।

नीरा चिल्ला उठी—"भैया!..."

"नीरा।" बसन्त शिथिल स्वर में बोला—"धैर्य रखो नीरा।"

"भैया !..." कहकर नीरा भी बसन्त के शरीर से जा लगी।

उसके शरीर में भी आग लग गई। आग की लपटों से वायुयान के पेट्रोल की टंकी भी जल उठी। वायुयान जोरों से लड़खड़ाया।

और ताईहोकू हवाई अड्डे के समीप आकर वह भूमि पर जलता हुआ गिर पड़ा...."

× × ×

२३ अगस्त १९४५ को टोकियो रेडियो का यह समाचार संसार भर में प्रसारित हो उठा—

"आजाद हिन्द की अस्थाई सरकार के सर्वोच्च अधिकारी श्री सुभाषचन्द बसु, कर्नल हबीबुर्रहमान के साथ बैङ्काक से टोकियो आ रहे थे। फारमोसा के समीप ताइहोकु नामक स्थान पर उनका विमान दुर्घटनाग्रस्त हो गया....उसमें आग लग गई फलतः वे मृत्यु को प्राप्त हुए...."

मसलहत का है तकाजा,
वक्त को आवाज है।
राहे आजादी में मरने,
का यही अन्दाज है॥
ऐ अजीजाने वतन!
तू अस्ल में जाने वतन।
शान है तेरी वतन से,
और तू शाने वतन॥

—: बस :—



देश के यशस्वी साहित्यकार भी यह स्वीकार करते हैं कि हिन्दी में आज स्व० कुशवाहा कान्त के पाठकों की संख्या सबसे अधिक है। उन्होंने हिन्दी को नई शैली, नया मोड़ तो दिया ही, पाठकों को सस्ते दामों में उपन्यास उपलब्ध होते रहें, इस दिशा में पहला कदम भी उन्होंने ही उठाया था।

कितने ही अहिन्दी भाषियों ने केवल कुशवाहा कान्त की पुस्तकें पढ़ने के लिए हिन्दी सीखी। उनकी प्रत्येक पुस्तकों की लाखों प्रतियाँ छप-बिक चुकीं।

लेकिन...

फिर भी उनकी माँग दिनों-दिन बढ़ती जा रही है !